भारत के राष्ट्र निर्माता

बदरुद्दीन तैयबजी

लेखक
ए० जी० नूरानी

अनुवादक
मुकुट बिहारी वर्मा

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
भारत सरकार

समर्पण

प्रिय चाचा-चाची

श्री और श्रीमती चूनावाला

को

जिनकी मधुर स्मृति ही अब शेष रह गई है।

प्रस्तुत पुस्तक माला

इस ग्रन्थमाला का उद्देश्य भारत के उन प्रसिद्ध सपूतो के, जीवन चरित्र प्रकाशित करना है जिन्होने राष्ट्रीय पुनरुत्थान और देश के स्वतन्त्रता सग्राम मे विशिष्ट भूमिका अदा की।

वतमान तथा आने वाली पीढिया के लिए इनके विषय मे जानना आवश्यक है। लेकिन कुछ को छोड कर, बाकी के प्रामाणिक जीवन चरित्र उपलब्ध नही हैं। यह ग्रन्थमाला इस कमी को दूर करेगी। इसके अन्तगत योग्य पुरुषो द्वारा लिखित हमारे नेताओ के छोटे और सरल जीवन चरित्र प्रकाशित किए जाएगे।

श्री आर० आर० दिवाकर इस ग्रन्थमाला के सम्पादक है।

भूमिका

संसार के इतिहास में अनगिनत युगों में कभी-कभी ही ऐसे अवसर आते हैं जब कोई महापुरुष केवल अपने चरित्र और बुद्धिबल से सब के ऊपर छा जाए। ऐसा महापुरुष परिस्थिति को यथार्थ रूप में समझ कर अपनी दूरदर्शिता के कारण ऐसा मार्ग प्रदर्शन करता है जिस पर चल कर लोग अपना लक्ष्य प्राप्त कर सकें। उसके दिखाए मार्ग की उपयोगिता में समय और परिस्थितियों के बदल जाने पर भी कभी कोई कमी नहीं होती।

बदरुद्दीन तैयबजी ऐसे ही महापुरुष थे। ६३ वर्ष पूर्व उन्होंने अपने नश्वर शरीर का त्याग किया था और जिन बातों ने उन्हें प्रसिद्धि दी वे अब अतीत की घटनायें मात्र मालूम पड़ती हैं, परन्तु तैयबजी ने जो मार्ग दिखाया वह अभी भी महत्वपूर्ण है। उनके जमाने से अब तक न जाने कितने विस्फोटक परिवर्तन हो चुके हैं फिर भी अपने अकाट्य तर्क और अपनी मर्मस्पर्शी वाक्पटुता से उन्होंने जो मार्ग दिखाया वह इतने समय बाद भी भारत के निर्माण का निस्सन्देह एकमात्र शाश्वत सत्य मार्ग है। जिन दिनों राजनीति की शब्दावली में धर्म निरपेक्ष शब्द का समावेश तक नहीं हुआ था, उन्होंने पूरी सूक्ष्मता से और सम्पूर्ण लक्षणार्थों के साथ उसका प्रतिपादन किया और आजीवन उस पर दृढ़ता से कायम रहे।

मुख्यतः तो उन्होंने इस बात पर ध्यान दिया कि निकट अतीत में मुसलमानों का जो अधःपतन हो गया है उससे उनको उबार कर राष्ट्रीय विचारधारा में एकरस हो जाने के लिए उनका मार्ग दर्शन करें, जिससे वे सच्चे मुसलमान होने के साथ साथ उत्साही भारतीय बनें और भारत के अभ्युत्थान में अपने देशवासियों का साथ दें। इस दृष्टिकोण में समझौते की बात नहीं थी, बल्कि यह एक ऐसे व्यक्ति की सगत और समग्र दृष्टि थी जिसकी ईमानदारी असंदिग्ध थी। ऐसे व्यक्ति निस्सन्देह दोनों ही ओर के उग्रपंथियों की

गलतफहमियों के शिकार होते हैं जैसा बदरुद्दीन के साथ भी हुआ, परन्तु यह भी मानना होगा कि ऐसे व्यक्ति ही सब बाधाओं से ऊपर होते हैं और उन्हें सफलता मिलती है।

बदरुद्दीन तैयबजी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। राजनीति के रूप में वह लोगों के मान्य नेता थे, निष्ठावान समाज-सुधारक और शिक्षाशास्त्री थे, असाधारण योग्यता वाले वकील थे जिनकी गिनती वकालत पेशा वर्ग के नेताओं में थी, और बाद में उन्हें महान न्यायाधीश के रूप में ख्याति प्राप्त हुई। हर क्षेत्र में उन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया और अनेक लोगों के जीवन को प्रभावित किया। हमारे भूतपूर्व राष्ट्रपति स्वर्गीय जाकिर हुसैन ने उनके बारे में ठीक ही कहा था, 'बदरुद्दीन तैयबजी से व्यक्तिगत परिचय का सौभाग्य तो मुझे नहीं मिला, परन्तु जब मैं स्कूल में पढ़ता था तब एक भले हैड मास्टर से मुझे उनकी महान सेवाओं का परिचय मिला और मैंने उनके बारे में ऐसी बहुत सी बातें पढ़ीं जिन्हें उस समय शायद मैं अच्छी तरह समझ नहीं सकता था फिर भी जिन्होंने उस छोटी उम्र में ही मुझे प्रभावित करना शुरू कर दिया था। उन्होंने मेरे जीवन को ऐसी दिशा दी, जिसमें अनेक विपरीतताओं के बावजूद मैं समझता हूं कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ है। निस्सन्देह महान पुरुषों का प्रभाव फिर वह चाहे किसी के माध्यम से ही क्यों न पड़े सबक सीखने के लिए बहुत कारगर होता है। स्वर्गीय बदरुद्दीन का ऐसा ही प्रभाव मेरे ऊपर पड़ा।

ऐसी बहुमुखी प्रतिभा वाले महापुरुष की जीवनी लिखना आसान काम नहीं है और मुझसे जरूर भूलचूक हुई होगी। इसे सम्पूर्ण तो किसी हालत में नहीं कह सकते। बदरुद्दीन की विस्तृत जीवन कथा तो श्री हुसैन बी० तैयबजी की लिखी हुई जीवनी "बदरुद्दीन तैयबजी ए बायग्राफी" में ही मिल सकती है जो बहुत परिश्रम और निष्ठा से लिखी गई है। उन्होंने अपनी सारी सामग्री के उपयोग की मुझे सुविधा प्रदान की इसके लिये मैं उनका बड़ा आभारी हूं। बदरुद्दीन के पौत्र श्री मौहसिन तैयबजी का भी मैं बहुत ऋणी हूं, जिन्होंने परिवार सम्बन्धी सभी कागजात को, जो उनके पास थे मुझे

5 अमीर अली द्वारा 5 जनवरी 1888 को अपनी सस्था की ओर से बदरुद्दीन तैयबजी को भेजा गया पत्र ।

6 काग्रेस सभापति की हैसियत से अमीर अली को भेजा गया 13 जनवरी, 1888 का बदरुद्दीन का पत्र ।

7 अमीर अली को बदरुद्दीन का निजी पत्र 13 जनवरी, 1888 ।

8 बदरुद्दीन तयबजी को सर सैयद अहमद खा का पत्र 24 जनवरी 1888 ।

9 सर सैयद अहमद खा को बदरुद्दीन तैयबजी का पत्र । (18 2 1888) ।

10 सेंट्रल मोहम्मेडन एसोसिएशन की एलोर शाखा के मन्त्री के पत्र (9 सितम्बर, 1888) के उत्तर मे भेजा गया बदरुद्दीन का पत्र (22 9 1888) ।

11 ए० ओ० ह्यूम को बदरुद्दीन का पत्र (27-10 1888) ।

12 डा० मुकुन्दराव जयकर के सस्मरण (जो 21 फरवरी, 1944 को उन्होंने हुसेन तैयबजी के लिए लेखबद्ध किए) ।

'सदभ ग्रथ ।

1

परिवार, जन्म और शिक्षा

आधुनिक भारत के इतिहास मे सन 1857 के विद्रोह का बडा महत्व है क्योंकि उसने इतिहास की धारा ही मोड दी। उससे पहले भारत पर ब्रिटिश सरकार से प्राप्त अधिकार पत्र के अतगत ईस्ट इडिया कम्पनी शासन करती थी। उसके बाद भी एक वर्ष तक यही स्थिति रही, परन्तु विद्रोह के फल स्वरूप 1858 मे ब्रिटिश पार्लियामेंट ने भारत पर शासन के लिए गवनमेट आफ इण्डिया एक्ट (भारतीय शासन विधान) बना कर देश का शासन सीधे ब्रिटिश सरकार के अधीन कर दिया।

गवनमेट आफ इण्डिया एक्ट के पार्लियामेंट म स्वीकृत होकर कानून का रूप लेने के बाद तुरत 1 नवम्बर 1858 को महारानी विक्टोरिया की सुप्रसिद्ध घोषणा हुई। विद्रोह को कुचलने मे की गई सख्ती के जख्म को भरने के लिए महारानी ने हत्या के अपराधियो के सिवा सभी अपराधियो को आम माफी की ही घोषणा नही की बल्कि यह भी कहा 'हमारे सभी प्रजाजनो को—फिर उनका धम या उनकी जाति कुछ भी क्या न हो—हमारे अधीन सभी पदो पर जहा तक हो सके उनकी शिक्षा, योग्यता और चालचलन को ध्यान म रखते हुए बिना किसी रुकावट के निष्पक्षता के साथ स्थान दिया जाए, ऐसी हमारी इच्छा है।'

घोषणा मे धार्मिक स्वतन्त्रता की गारटी भी दी गई। लेकिन जिस बात ने भारतीय लोकमन को सबसे अधिक आकृष्ट किया वह थी, सभी को

"कानून का समान और निष्पक्ष संरक्षण"। इस रूप में भारतीयों को समानता का आश्वासन मिला जिसकी पिछले साल की उथल-पुथल के बाद उन्हें सर्वाधिक आवश्यकता थी।

बदरुद्दीन तयबजी उस समय चौदह वर्ष के बालक थे, परन्तु वे बड़े समझदार और भावुक। उज्जवल भविष्य के सभी लक्षण उनमें मौजूद थे और भविष्य ने यह भली भांति सिद्ध कर दिया कि उस समय किसी ने जितनी कल्पना भी नहीं की होगी उतने वह चमके।

बदरुद्दीन ने अपने पिता का पेशा नहीं अपनाया। उनके पिता तैयब अली अपने चरित्रबल और अपनी व्यापार कुशलता से गरीब से धनी व्यापारी बने थे। इसके विपरीत बदरुद्दीन ने जो प्रसिद्धि पाई वह महारानी द्वारा घोषित समानता के संकल्प की पूर्ति में यत्नशील होकर। उस संकल्प को मूर्त रूप देने के लिए उन्होंने भारतीय प्रजाजनों को भी वैसा ही स्वशासन देने की मांग की जैसा कि महारानी के प्रजाजनों को प्राप्त था। निस्सन्देह इसमें अनेक समस्याएं सामने आईं और यह बात निश्चित रूप से उनके मन में बैठ गई कि महारानी विक्टोरिया की घोषणा पर अमल कराने के लिए भारतीयों में एकता आवश्यक है।

पिता तैयब अली और पुत्र बदरुद्दीन अनेक बातों में एक-दूसरे से भिन्न थे परन्तु चरित्रबल और उदार दृष्टिकोण में दोनों में अद्भुत समानता थी।

बदरुद्दीन के बाबा (पितामह) भाई मियां मूलतः खम्भात में रहते थे जो पश्चिम भारत में एक बन्दरगाह है। खम्भात से वह बम्बई चले आये थे। बम्बई में उन्होंने समृद्धि भी प्राप्त की परन्तु 1803 में वहां एक बड़ा अग्निकाण्ड हुआ और उसमें उनकी सारी सम्पत्ति नष्ट हो गई। इस तरह सम्पत्तिहीन हो कर वह खम्भात ही लौट गये। वहीं 20 सितम्बर 1803 को उनके पुत्र तयब अली का जन्म हुआ। बाल्यावस्था से ही तयब अली में

असाधारण गुण झलकने लगे। उनके बाबा हाजीभाई उनकी देखभाल करते लेकिन तयब अली आठ वर्ष के थे तभी हाजीभाई का देहान्त हो गया। परिवार के सामने मसीबत ही मसीबत थी, परन्तु जैसा श्री आसफ ए० ए० फजी ने लिखा है "तयब अली का जीवन सचमुच एक तरह का चमत्कार ही रहा। उनके बाप एक मामूली सौदागर थे। निजी का जीवन शुरु करके तैयबजी ने तरह-तरह के काम किये। छातों की मरम्मत से लेकर प्याज बेचने पुराने सामान की फेरी लगाने खिलौने तथा ऐसी ही अन्य चीजें बेचने तक के काम उन्होंने किये। यह सब होने पर भी 1863 में जब उनकी मृत्यु हुई तो वह लखपति व्यापारी थे और ५ लाख की सम्पत्ति उन्होंने छोडी। वह चरित्रवान और कार्य कुशल व्यक्ति थे। अपने व्यस्त जीवन में भी समय निकाल कर उन्होंने अरबी फारसी हिन्दुस्तानी और गुजराती का कुछ ज्ञान प्राप्त कर लिया था। सम्पत्ति तथा बम्बई के व्यापारी समाज में उच्च स्थान प्राप्त कर लेने के बाद उन्होंने अपने पुत्र को विदेशी शिक्षा प्राप्त करने के लिए इंगलैण्ड भी भेजा लेकिन उदार दृष्टिकोण तथा आधुनिक विचारों का होने पर भी वह पक्के धार्मिक थे। यूरोप यात्रा की तो वापसी में हज भी हो आये। मुल्ला तो वह थे ही, कुछ समय के लिए बम्बई के आमिल (बड़े मुल्ला के डिपुटी) भी रहे।

हाजीभाइ के मरने पर भाई मियां अपने पुत्र तयब अली को बम्बई ले आये थे। पर कुछ ही दिनों में भाई मियां भी मर गये और तयब अली बेसहारे हो गये। श्री हसन भाई तयबजी बताते हैं कि तयब अली के भाग्य ने पहला पलटा तब खाया जब वाडिया नाम के किसी व्यक्ति से उन्हें व्यापार के लिए 5000 रुपये का कर्ज मिला और दूसरी बार भाग्योदय तब हुआ जब एक समृद्ध व्यापारी मुल्ला मेहर अली ने अपनी लडकी तयब अली को

1 आटोबायग्राफी आफ तयबजी भाई मियां (तैयब अली) सम्पादक आसफ ए० ए० फजी दि जर्नल आफ दि एशियाटिक सोसायटी आफ बाम्बे, जिल्द 36 37 परिशिष्ट 1961 62 अप्रैल 1964 में प्रकाशित।

ब्याह दी। इस तरह एक मात्र अपने परिश्रम और चरित्रबल से तयब अली निर्धन से धनी व्यापारी बन। यद्यपि वह मुल्ला, लेकिन उनका दृष्टिकोण उदार था और उनका मित्र मण्डल व्यापक। तयब अली ने अपनी आत्मकथा लिखी। इसके अलावा किताब ए अखबार तयाबी (तयब घराने सम्बन्धी विवरण) भी शुरू किया, जिसमें उन्होंने कल्पना की थी कि वह तथा उनके वंशज अपने सभी महत्व पूर्ण कारनामों को अंकित करेंगे।

सुलेमानी बोहरा जाति के तैयब अली एक स्तम्भ ही थे। बोहरा शब्द का अर्थ ही व्यापारी है। ये लोग अधिकतर पश्चिम भारत में बसे हुए हैं और व्यापार में समृद्धिशाली हैं। 11वीं सदी में यमन से भारत आये अरब मिशनरियों ने जिन्हें मुसलमान बनाया था इनमें से अधिकांश उन्हीं के वंशज हैं। 1588 में बोहरा के बड़े मुल्ला जी के मर जाने पर जो यमन से आए थे, यह जाति दो भागों में बट गई। गुजराती बोहरा ने सैयदना दाऊद को अपना बड़ा मुल्ला बनाया, जबकि दूसरे यमन से अधिकार - प्राप्त सैयदना सुलेमान नामक अरब के भक्त बने। इस प्रकार यह जाति दाऊदी बोहरा (मुल्लाजी साहब के नाम से प्रख्यात भारतीय मुल्ला के अनुयायी) और सुलेमानी बोहरा में विभक्त हो गई। इसमें अधिक संख्या दाऊदी बोहरों की ही है जबकि सुलेमानी बहुत कम हैं—1880 में उनकी संख्या बम्बई में केवल एक सौ थी।

बदरुद्दीन के पिता तैयब अली सुलेमानी बोहरों में प्रतिष्ठित व्यक्ति थे और जाति के वरिष्ठ नेताओं में उनकी गिनती थी। बदरुद्दीन उनके पांचवें पुत्र थे और 10 अक्टूबर 1844 को पैदा हुए थे। परम्परानुसार पहले उन्हें कुरान पढ़ाई गई और फिर दादा मकबा मदरसे में उन्होंने हिंदुस्तानी फारसी, गुजराती और गणित का अध्ययन किया। इसके बाद एलफिंस्टन इंस्टीट्यूशन

---

2 बदरुद्दीन तयबजी लेखक हुसेन बी० तयबजी, प्रकाशक जकर एंड क० लि०, बम्बई, 1952 पृष्ठ 4।

में उनकी पढाई शुरू हुई। उनके दो भाई और वह, यही तीन, वहा पढनेवाले सबसे पहले मुस्लिम विद्यार्थी थे। बदरुद्दीन पढाई में मन लगानेवाले और अध्ययनशील विद्यार्थी थे। बाल्यावस्था से ही उनके उज्ज्वल भविष्य का आभास मिलने लगा था।

तैयब अली अनुशासन के बडे पाबन्द थे और परिवार के सभी लोग उनसे भयभीत रहते थे। लेकिन उनके उदार दृष्टिकोण की दाद देनी होगी कि अपने बच्चो की, यहा तक कि लडकियो की भी, पढाई मे उन्होने बडी दिलचस्पी ली और सभी लडको को पढने के लिए इंग्लैंड भेजा। उनके तीसरे पुत्र कमरुद्दीन पन्द्रह वर्ष की ही उम्र मे इंग्लैंड भेज दिये गये थे जिन्होंने वहा शिक्षा प्राप्त कर सर्वप्रथम भारतीय सालिसिटर होने का गौरव प्राप्त किया। सालिसिटर बनने पर उनके लिए शपथ लेने की समस्या पैदा हुई, क्योंकि पक्के मुसलमान होने के कारण ईसाई धर्मानुसार शपथ नही ले सकते थे। क्वीस बेंच की फुल बेंच ने इस पर विचार किया जिसमे लार्ड जस्टिस कम्पबेल, जस्टिस वाईटमन और जस्टिस एरले शामिल थे। सब बातों पर विचार कर उसने उन्हें केवल राजभक्ति की शपथ लेने की इजाजत दे दी। राजभक्ति की शपथ कुरान हाथ में लेकर ली गई। 'पंच'[3] ने इस पर टिप्पणी करते हुए लिखा था 'यह हर्ष की बात है कि लार्ड कम्पबेल और उनके साथियो ने उस असंगति को दूर कर दिया है जिसके अन्तर्गत किसी भी एटर्नी का ईसाई होना जरूरी था।'' उसके बाद 1858 में कमरुद्दीन भारत लौटे और उसी साल बम्बई मे उन्होने सालिसिटर की प्रैक्टिस शुरू कर दी।

बदरुद्दीन ने अपने भाई का अनुसरण कर इंग्लैंड मे बरिस्टरी की शिक्षा प्राप्त करने का निश्चय किया। लेकिन उनके यूरोप जाने से पहले तैयब अली ने उनकी सगाई कर दी थी। जाने से पहले 21 अप्रैल 1860 को बदरुद्दीन ने इकरारनामा भी किया। वह इस प्रकार था

---

3 4 दिसम्बर, 1858।

"मैं यानी अलहज नगीप तैयब अली का पुत्र बदरुद्दीन बालिग यानी पन्द्रह साल की उमर का हो जाने पर अपने पूरे होश हवास में, इंग्लैंड जाने से पहले, अपने मित्रों और रिश्तेदारों के प्रति बिना किसी के दबाव के स्वेच्छा से यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि अपने धर्म का जैसा आज मैं पक्का हूँ वैसा ही इंग्लैंड से लौटने पर भी पक्का बना रहूँगा—उसमें किसी तरह का कोई फर्क नहीं पड़ेगा। अगर ऐसा न हो और मैं इस इकरार से पीछे हटूँ तो मैं खुद मंजूर करता हूँ कि उस हालत में दुनिया के झूठे पाखंडियों में मेरी गिनती होगी और मैं बैरिस्टरों के लिए भी अयोग्य माना जाऊंगा।

'उस हालत में मैं न केवल अपने माता पिता परिवार और मित्रों के प्रति विश्वासघात का अपराधी होऊंगा बल्कि खुदा के प्रति भी गुनहगार बनूंगा।'

(ह०) बदरुद्दीन तयबजी
27 अप्रैल 1860
हिजरी सन 1276 शव्वाल महीना

बदरुद्दीन के बड़े भाई शमसुद्दीन को इस पर बड़ा आश्चर्य हुआ और ऐसे इकरारनामे पर हस्ताक्षर करने की बदरुद्दीन की जल्दबाजी की आलोचना करते हुए उन्होंने कहा—रोजे और नमाज़ द्वारा इंग्लैंड में इस्लाम के आदेशों का पूरी तरह पालन करने की बेचारा अपने तई पूरी कोशिश कर रहा है यह मैं जानता हूँ लेकिन मुझे यकीन है कि यूरोप में शिक्षा पाकर जब उसका मनोविकास होगा तो इन बातों को अब से कहीं अच्छी तरह समझने लगेगा। तब उसके विश्वासों में कमी-बेशी हुई तो उसके विश्वास में कोई फर्क न पड़ने के उसके वादे का क्या होगा?

साढ़े पन्द्रह साल की उम्र में बदरुद्दीन इंग्लैंड गये थे। उस वक्त तक तयब अली के मित्रों का क्षेत्र इतना व्यापक हो चुका था कि बदरुद्दीन अपने साथ बहुत से परिचय पत्र ले गये थे। 1860 के मध्य में हाईबरी न्यूपार्क

कालेज मे वह भर्ती हुए जहा शीघ्र ही उन्हाने अपनी योग्यता से लोगो को प्रभावित किय'। अगले ही साल "बारह महीनो मे ही फ्रेंच भाषा का पूण नान प्राप्त कर लेन और क्लैसिक्स (लैटिन और ग्रीक उच्च साहित्य) तथा गणित मे काफी प्रगति करन के लिये उन्हे विशेष सम्मानपत्र (स्पेशल सर्टिफिकेट ग्राफ ग्रानर) मिला। पुरस्कार—वितरण के समय सभापण प्रतियोगिता हुई। हुसनभाई तयबजी के लेखनानुसार 'चार नाटकीय प्रदशन हुए—एक लेटिन म प्लाउटस का, एक फ्रेंच मे मोलियर का, एक दु खात नाटक अग्रेजी मे शेक्सपियर का जूलियस सीजर, और अन्तिम, अग्रेजी का एक सुखान्त नाटक। इन सभी मे बदरुद्दीन ने प्रमुख भाग लिया। जूलियस सीजर मे उन्हान एथोनी का अभिनय किया था। आठ प्रमुख व्यक्तियो की निर्णायक समिति ने जिसमे सर फिटजराय केली, क्यू० सी० (क्वीस कासल) एम० पी० (मेम्बर पार्लियामेट) भी थे, उत्तम अभिनय के लिये प्रथम पुरस्कार बदरुद्दीन को दिया। 'मार्निंग पोस्ट' ने इस सम्बन्ध म लिखत हुए बदरुद्दीन की सवतामुखी प्रतिभा की सरहाना की और लिखा डढ साल पहले जब वह इग्लड आये तब अग्रेजी के अल्प ज्ञान के अलावा लेटिन या फ्रेंच बिल्कुल नही जानते थ, फिर भी हर नाटक मे उन्हान प्रमुख पात्र का अभिनय किया। अभिनेताओ के गुणावगुण पर विचार के लिये जा समिति बनाई गई थी उसके सदस्या क मता की गणना करन पर पता चला कि प्रथम स्थान इन हिंदुस्तानी महाशय को प्राप्त हुआ है।" तयब अली को इसस निस्सदह प्रसन्नता हुई। बदरुद्दीन ने यही नही किया बल्कि लखनऊ के मीर औलाद अली की मदद से जा सयोगवश उस समय वही थे, उर्दू म कुशलता प्राप्त की। बाद म ता वह अपन देश की भाषा स अनभिज्ञ भारतीयो के प्रति सम्मान का भाव नही रखत थे। उनका कहना था 'हमारे बच्च अपनी मातभाषा तथा हमार प्राचीन ग्रन्था स अपरिचित रह यह सहन नही किया जा सकता।

उन्हाने व्यापक रूप से अध्ययन मनन किया, परन्तु दुभाग्यवश उनकी आखो म कोई खराबी हो गई और उन्हे कम दीखन लगा। इस स पढाई म

रुकावट पडी और 1864 के दिसम्बर मे वह बम्बई लौट आये । उनके पिता तैयब अली इससे एक साल पहले ही मर चुके थे ।

16 जनवरी 1865 को बदरुद्दीन का विवाह सम्पन्न हुआ । विवाह शुरू से ही सफल रहा और बदरुद्दीन को जीवन पर्यन्त उससे बहुत बल मिला । उनकी पत्नी का नाम मोती था जिसे बदल कर उन्होंने राहत उननफ्स[4] (आत्मशांति) रखा ।

बदरुद्दीन के घरवालो ने उनके इग्लैड जाने से पहले उर्दू को अपनी बोलचाल की भाषा बना लिया था परन्तु यह आश्चर्य की बात है कि विदेश मे रहने पर भी वही उर्दू मे सबसे दक्ष साबित हुए । हुसैन के लेखानुसार इग्लैड से लौटने के कुछ ही महीने बाद बदरुद्दीन ने अखबार-पुस्तिका मे एक लम्बा लेख लिखा । शुद्ध उर्दू मे लिखा यह लेख दस फुलस्केप पर पृष्ठो मे था । इसमे बदरुद्दीन ने मत व्यक्त किया था कि सारे हिन्दुस्तान और उसमे रहने वाले सभी लोगो के लिये किसी एक भाषा का होना जरूरी है और चूकि हिन्दुस्तानी आमतौर से देश मे सबसे ज्यादा बोली जाती है इसलिये यही यहा की सामान्य भाषा है । इस भाषा को हमे अपनाना और समृद्ध करना चाहिये । उन्होने यह भी लिखा कि हमारे घर वाले जिस रूप मे इस भाषा का प्रयोग करते है वह ठीक नही है, व्याकरण और मुहावरे दोनो हो दृष्टियो से वह अशुद्ध है । दिल्ली और लखनऊ की जानदार उर्दू को अपनाने का उन्होने जोरदार प्रतिपादन किया । इसके बाद आठ भागो मे उन्होने घर वालो की बोलचाल मे होने वाली गलतियो का उल्लेख कर उनमे व्याकरण और मुहावरे की त्रुटिया बताई जिन खास प्रयोगो को उन्हे बिलकुल छोड

4 हुसैन बी० तयबजी ने बदरुद्दीन तयबजी की जो जीवनी लिखी उसमे (पृष्ठ 322) राहत उननफस का अर्थ आत्मा की शान्ति (पीस आफ दी सोल) किया है परन्तु राहत का शाब्दिक अर्थ सुगध या प्रसन्नता होता है अत आत्मा की सुगध या आत्मा को प्रसन्नता देने वाली अर्थ अधिक उपयुक्त होगा ।

देना चाहिए यह बताया और यह भी कि किस प्रचलित व मुहावरेदार भाषा का उन्हें इस्तेमाल करना चाहिए।[5]

उनकी माता का भी शीघ्र ही देहान्त हो गया। उनकी मृत्यु के कुछ समय बाद अपनी पढ़ाई फिर से शुरू करने के लिए 30 सितम्बर 1865 को बदरुद्दीन दुबारा इंग्लैंड चले गये। इंग्लैंड की यह दूसरी यात्रा उनके लिये खास तौर से लाभप्रद रही। इसी समय दादा भाई नौरोजी फिरोजशाह मेहता व्योमेशचंद्र बनर्जी और हार्मुसजी वाडिया से उनकी मुलाकात हुई जो उनके जीवन पर्यन्त मित्र बने रहे। अप्रैल 1867 में वह पढ़ाई पूरी करके बैरिस्टर बन गये।

---

5 हुसेन बी० तयबजी लिखित बदरुद्दीन की जीवनी, पृष्ठ 22।

हूँ । पत्र ने लिखा है कि आपने अपने मुवक्किल की सफाई में जो दलीलें
दी वे असंगत और मूर्खतापूर्ण थीं । यह आलोचना न केवल अनुचित है
बल्कि इससे एक तरुण बैरिस्टर को हानि भी पहुँच सकती है इसलिए यह
कहना मैं अपना फर्ज समझता हूँ कि मेरी राय में यह आलोचना सर्वथा
निराधार है । मेरा तो ऐसा खयाल है कि मुकदमे की आपने बहुत योग्यता
पूर्वक पैरवी की और जूरी को लक्ष्य कर आपने जिस योग्यता एवं चतुराई
से भाषण किया बहुत करके उसी के कारण अभियुक्त बरी छूट गया ।
बार एसोसियेशन (बम्बई) की कार्यवाही पुस्तक से इस बात का पता चलता
है कि वकालत के पेशे संबंधी मामलों में वह कितनी गहरी दिलचस्पी लेते
थे । सर एच० पी० मोदी ने सर फीरोजशाह मेहता की जीवनी में बताया है
कि बाद में उनकी वकालत दिनों दिन इतनी बढ़ती गई कि वह मुकदमों की
तैयारी में ही डूबे रहते थे ।

वस्तुत महान वकील बनने के लिए उन्हें कितनी मेहनत करनी पड़ी
इसका पता अपने पुत्र हुसेन को लिखे उनके पत्रों से चलता है । वकालत
में आगे बढ़ने की महत्वाकांक्षा रखने वालों के लिए निस्सन्देह यह पत्र बड़े
मार्गदर्शक सिद्ध होंगे । 30 अक्तूबर 1891 को उन्होंने हुसेन को लिखा
तुम्हारे पत्रों से पता लगता है कि सालिसिटर के धंधे से बैरिस्टरी की ओर
तुम्हारा अधिक झुकाव है । तुम बैरिस्टर बनना चाहते हो तो क्यों न बनो इसका
कोई कारण मैं नहीं देखता । यह ऐसा मामला है जिसमें निर्णय प्रतिष्ठा और
गौरव गरिमा की झूठी धारणा के बजाय जिसका तुम्हारे मन पर काफी असर
मालूम पड़ता है ठोस युक्तियुक्त और व्यावहारिक आधार पर ही किया जाना
चाहिए । मैं स्वयं बैरिस्टर हूँ मैं इस संसार का शायद सर्वश्रेष्ठ काम समझता
हूँ । फिर भी मुझे तुमको बताना होगा कि मनुष्य की प्रतिष्ठा इस बात में
नहीं कि वह कौनसा धंधा करता है बल्कि इसमें है कि अपना काम वह किस

---

2 बदरुद्दीन तयबजी लेखक जी० ए० नटेसन जी० ए० नटेसन एंड कम्पनी
मद्रास । हुसेनभाई तयबजी ने भी यह उद्धरण दिया है ।

तरह करता है। अपना काम याग्यता और सुचारुता से करने वाला कोई भी सालिसिटर किसी बरिस्टर से तो कम प्रतिष्ठित नही होता और उन सकडो बैरिस्टरो से तो निश्चय ही वह कही प्रतिष्ठावान होता है जो इस श्रेष्ठ धधे मे रहकर भी इस पर कलक लगाते है। सफल सालिसिटर की कमाई भी सामान्य रूप से सफल माने जाने वाले बैरिस्टरो से किसी तरह कम नही होती। बैरिस्टरी की श्रेष्ठता तो तभी सामने आती है जब कोई अपने धधे मे शीर्ष-स्थान पर पहुच जाता है। लेकिन यह स्पष्ट है कि तुम बरिस्टर बनना चाहते हो, इसलिए इस बारे म मुझे ज्यादा कुछ कहने की जरूरत नही।

इसके एक वर्ष बाद (3 अक्तूबर 1892 को) उन्होने पूछा 'कानून के वास्तविक सिद्धान्तो और उसकी बुनियादी बातो को क्या तुम समझने लगे हो? यह सचमुच बहुत जरूरी है। कानून की जरूरत क्या है यह समझना ही वस्तुत (जैसा कि लाड बेकन ने कहा है) कानून की आत्मा को जान लेना है।[3] सच तो यह है कि जो इस बात को नही जानता वह जल्दी ही अपनी उस पढाई को भूल जाएगा जो केवल सतही है।

हुसैन की प्रगति से उन्हे प्रसन्नता हुई यह स्पष्ट है। 16 नवम्बर 1894 को लिखे पत्र मे उन्होने उसे लिखा 'कानून की अपनी पढाई मे तुम बराबर प्रगति कर रहे हो इस बात की मुझे खुशी है। वकालत का धधा सिवा उनके जो उसमे पूर्ण निष्णात है बहुत उत्साहवर्द्धक नही है। बम्बई म कोई चालीस ऐसे तरुण भारतीय बरिस्टर मौजूद है जो अमली तौर पर कुछ करते धरते नही। मुझे तो ताज्जुब होता है कि वे निर्वाह कैसे करते है। लेकिन दोष सारा उनका ही है। करने को काम तो बहुतेरा है बशर्ते कि उसे करने की क्षमता हो। इसलिए ऊपर मैने तुम्हे जोर दिया है कि जब तक इस पेशे की सैद्धान्तिक और व्यावहारिक सभी बातो का पूरी तरह ज्ञान हासिल न कर लो तब तक

---

3 मूल उद्धरण इस प्रकार है "दि रीजन आफ दि ला इज लाइफ देयर आफ।'

भारत लौटने की जल्दी न करना। योग्य आदमियों के लिए क्षेत्र खुला पड़ा है।

अपने पुत्र को बदरुद्दीन ने सलाह दी कि कम से कम छह महीने तक अपना नाम रखने वाले किसी सॉलिसिटर के दफ्तर में काम सीखा करो और उसके बाद छह महीने इक्विटी और कनवेयंसिंग (न्यायप्रणाली और संपत्ति हस्तान्तरण) के किसी वकील के साथ। यह बदरुद्दीन की ही योजना थी कि बैरिस्टरी की अंतिम परीक्षा तथा कानून की डिग्री (आनर्स) में उत्तीर्ण होने पर हुसैन को बधाई देते हुए भी उन्होंने इस बात पर फिर जोर दिया। तुम्हें अदालतों में जाकर देखना चाहिए कि गवाहों की जाँच पड़ताल कैसे की जाती है। इस प्रशिक्षण से तुम्हें कानून के सैद्धान्तिक पक्ष के साथ-साथ, जो तुम यूनिवर्सिटी में पढ़ते हो, कानून की व्यावहारिक शिक्षा भी मिलेगी।

इसके कुछ दिन बाद 10 जुलाई 1896 को बदरुद्दीन ने लिखा : दर असल इकरारनामे का एक मसविदा बनाने में ही इन दस्तावेजों के सम्बन्ध में कहीं ज्यादा शिक्षा तुम्हें मिलेगी जितनी किताबों में पचास पृष्ठ पढ़ने पर भी मिलना मुश्किल है। यही बात बैरिस्टरों के चैम्बरों में आने वाले मुकदमों की है। इसलिए मुझे आशा है कि भारत लौटने से पहले तुम नियमित व्यावहारिक प्रशिक्षण का यह क्रम जरूर पूरा करोगे और हर तरह का कानूनी दस्तावेज तैयार करने, हर तरह की कानूनी बहस व जिरह की जानकारी हासिल करने व मुकदमा लड़ने की पूरी व्यावहारिक जानकारी में दक्षता प्राप्त करके ही आओगे। इस व्यावहारिक ज्ञान से तुम्हें ऐसी सुविधा हो जायेगी जिसके बिना वकालत में टिक पाना संभव नहीं है। इसीलिए आग्रहपूर्वक तुम्हें मेरी सलाह है कि शुरू से आखिर तक सारा काम स्वयं करो, यानी सॉलिसिटर के दफ्तर में या बाद में बैरिस्टरों के चैम्बर में जो भी काम तुम्हारे सामने आये उसे करने में संकोच न करो। जो मामले मुकदमे सचमुच तुम्हारे पास हों उनसे सम्बन्धित

4 मि० जान मारिस, सॉलिसिटर जो बदरुद्दीन के मित्र थे।

कानून का अध्ययन तो तुम करते ही रहोगे। कानून की प्रत्येक शाखा के बारे में जो कुछ भी अविकृत सामान्य पाठ्य पुस्तकें हों उनकी जानकारी तुम्हें रहनी चाहिए और किसी भी कानूनी मुद्दे पर निर्णीत मामलों से अपने अनुकूल मसाला आसानी से ढूंढ निकालने की कला तुम्हें खास तौर से आनी चाहिये। इसके लिए यह आवश्यक है कि लॉ रिपोर्टों (निर्णीत मामलों के विवरण) से तुम भलाभांति परिचित हो जाओ और इस बात का तुम्हें अभ्यास हो जाय कि जिस तरह के फैसले की तुम्हें जरूरत हो उसका फौरन पता लगाओ। लॉ रिपोर्टें और अधिकारी व्यक्तियों द्वारा लिखी गई कानूनी पुस्तकें वस्तुतः प्रैक्टिस करने वाले बरिस्टर के लिये नित्य प्रति काम आने वाले औजारों की तरह हैं। लेकिन जब तक तुम बिना किसी कठिनाई के उनका प्रयोग करने में समर्थ न हो तब तक उन्हें अपने पास रखने मात्र से कोई लाभ नहीं। तुम्हें इस ख्याल को बिल्कुल दूर कर देना चाहिये जिसे मेरे ख्याल में कुछ लोग अपने दिमाग के अंधेरे कोने में छिपाये रहते हैं कि केवल धाराप्रवाह बोलने, वक्तृत्व-कला और वाहवाही लूटने के लिये की जाने वाली दलीलों से ही कोई सफल बरिस्टर हो सकता है। मैं जानता हूं कि तरुण भारतीय बैरिस्टरों में एक बड़ी तादाद ऐसे लोगों की है जो इसी धारणा को अपनाये हुए हैं और ऐसा लगता है कि अपनी कल्पित वक्तृत्वकला के कारण ही उन्होंने वकालत का पेशा अपने लिये चुना है। लेकिन यह धारणा उतनी ही मूर्खतापूर्ण है जितनी कि अहितकर और निराधार। न्यायालय में जाते ही इस धारणा की कलई खुलने लगती है। अच्छी वकालत के लिये वक्तृत्वकौशल के बजाय जरूरत है मामले को स्पष्ट रूप में पेश करने के लिये साफ दिमाग, मुकदमे के मुद्दों और तत्सम्बन्धी कानून पर पूर्ण अधिकार, तर्कपूर्ण विश्लेषण की क्षमता तथा कानून व मुकदमे के मुद्दों का शांतिपूर्वक स्पष्ट विवेचन। जिसे वक्तृत्वकला कहते हैं उसकी हाई कोर्ट में कोई जरूरत नहीं। जूरी को सम्बोधन करने में उसका कुछ उपयोग अवश्य है, लेकिन उस तरुण बरिस्टर से अधिक हास्यास्पद और दयनीय स्थिति और किसी की नहीं होती जो स्पष्ट और सुव्यक्त दलीलों के बजाय अपनी वक्तृत्वकला से जज को प्रभावित करने का यत्न करता है।'

बाद के पत्रों में भी इसी तरह की सलाह दी गई। 14 अगस्त 1896 को

बदरुद्दीन ने लिखा "व्यवहारकुशल वकील के लिए कानून का जानना ही जरूरी नहीं है बल्कि यह भी उसे जानना चाहिये कि वहां कौन सा कानून लागू होगा। जीव बुद्धि या वक्तत्वक्ला के बजाय कानून के सही उपयोग मुकदमे के मुद्दों की पूरी जानकारी धीरज और परिश्रम की कही ज्यादा जरूरत है।'

इसमे आश्चय की कोई बात नही कि कानून के बारे म ऐसी स्पष्ट धारणा और अपनी पूरी लगन क कारण उन्हें वकालत मे खूब सफलता मिली कमाइ बढने पर वह खेतवाडी का पुराना मकान छोडकर भायखला म एक बडे मकान मे रहन लगे और कुछ साल बाद 1871 म अपने खुद के बगले मे चल गये। बगला उ होन बम्बई के कम्बाला हिल क्षेत्र म बनवाया था और उसका नाम सामरसेट हाउस रखा था।

वकालत के लिय बदरुद्दीन की माग सभी ओर स होन लगी। हाइकोट के मुकदमो म ही नहो, मुफस्सिल मे भी उनकी माग थी। देसी नरेशा म उन्हे खास तौर पर बहुत आमदनी थी, जिनम म अनेक न उ हे स्थायी रूप मे अपना वकील बना लिया था। महत्व का कोई मुकदमा एसा न होता जिसमे किसी न किसी पक्ष के वह वकील न हो ('टाइम्स आफ इ डिया 25 अगस्त 1906)। 1 सितम्बर 1906 के टाइम्स आफ इन्डिया म उन्हे प्रखर कानूनी योग्यता का वकील और जोरदार तथा सफलतापूवक जिरह करन वाला' बताया गया था।

वकाल का सही मूल्याकन न तो उसके मुवक्किल कर पाते है न जनता और न जज लोग ही। ये लोग किसी न किसी रूप म उनके व्यावसायिक साथी या प्रतिद्व द्वी भी होत ह। लेकिन एक मशहूर वकील और पत्रकार ने जिसका कानूनी और सावजनिक काय म बदरुद्दीन स निकट सपक रहा उनकी मत्यु के उपरात उनकी सराहना म (टाइम्स आफ इ डिया, 1 सितम्बर 1906) जो कुछ लिखा वह ध्यान दन योग्य है

बदरुद्दीन ने वकालत का पेशा अपनाने के बाद अपनी वाक्पटुता बात को ठीक तरह समझकर निर्भीकता के साथ स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करन

दि अपने गुणों से कुछ ही वर्षों मे इस व्यवसाय में अपना विशिष्ट स्थान
ा लिया था। तत्कालीन एडवोकेट जनरल मि० व्हाइट उन लोगों में
जिन्होंने जल्दी ही बदरुद्दीन की योग्यता को पहचानकर उनके महान
वेष्य की भविष्यवाणी की थी। पर साथ ही यह भी कहा था कि उनकी
ालत में दोष सिर्फ यह है कि वह अपनी बात बहुत विस्तार से कहते है
। शायद इनसालवेंसी कोर्ट (अदालत दिवालिया) के तन्द्रालु वातावरण की
दौलत है जहां शुरू में उनकी वकालत चमकी थी। अपनी बात पर अड़े
ना उनकी सबसे बड़ी शक्ति थी। पैरवी का जो ढंग वह सोच लेते उस
र वह मुस्तैदी से जमे रहते और कोई भी रुकावट उन्हें उससे विचलित
ही कर सकती थी। कोई जज कितना ही रोबीला या अधीर क्यों न हो
न्हें उनके सुनिश्चित मार्ग से नहीं हटा सकता था। ऐसे कई उदाहरण मैं
सकता हूं परन्तु एक ही काफी होगा।

"कई साल पहले की बात है जब फौजदारी की एक अपील मे एक
भियुक्त की ओर से जस्टिस पारसंस और जस्टिस रानडे की डिवीजनल
च के सामने उन्होंने पैरवी की। मुकदमा ऐसा था जिसने उस समय
ठ सनसनी पैदा की थी और मई की गर्मियों के दिन थे। बदरुद्दीन
यबजी ने प्रारंभिक भूमिका के साथ अपनी पैरवी शुरू की। कोई आध
ण्टे तक उन्होंने मुकदमे का सामान्य रूप मे वर्णन किया इसके बाद
ुकदमे में पेश गवाही को पढ़ना शुरू किया। दस मिनट से ज्यादा उन्हें
सा करते नहीं हुआ होगा कि जस्टिस पारसंस ने जो हमेशा छोटी दलीलें
ो पसन्द करते थे उन्हें टोका और कहा 'तैयबजी गवाहियां हम पढ़
ुके है।' तैयबजी ने शान्ति से 'अच्छा' कहा और पढ़ना जारी रखा।
स्टिस पारसंस ने बेताब होकर कहा, 'सभी गवाहियों को जब हम पढ़
ुके है, तो फिर उन्हें पढ़कर अदालत का समय बरबाद करने मे क्या
ाभ? इससे तो यह ठीक होगा कि उन पर आपको जो टीका टिप्पणी
रनी हो उस तक ही अपने को सीमित रखें।' तब बदरुद्दीन तैयबजी
ाले, श्रीमान मैं यह कहने का साहस करता हूं कि आपने अपने ढंग से

उन्हें पढ़ा होगा जबकि मैं अपने ढंग से आपको उन्हें पढ़ाना चाहता हूं क्योंकि तभी आप मेरी टीका टिप्पणी को समझ सकेंगे।' और बदरुद्दीन तैयबजी ने अपना श्रम ही जारी नहीं रखा, बल्कि पूरे दो दिन वह अपनी दलीलें अदालत में पेश करते रहे और उसका यह नतीजा हुआ कि उनके मुवक्किल को अदालत ने बरी कर दिया। इस घटना को लेकर वकील-मंडल में यह बात भी खूब फैली कि बदरुद्दीन तैयबजी ने अदालत को सब्र का अच्छा पाठ पढ़ाया।

गांधीजी ने अपनी आत्मकथा में बदरुद्दीन तैयबजी के बारे में वीरचंद गांधी का जो उस समय सॉलिसिटर बनने की तैयारी कर रहे थे, यह उद्धरण दिया है कि उनमें बहस करने की अद्भुत शक्ति है जिससे न्यायाधीश भी उनके सामने चक्करा जाते हैं।'

सामाजिक चेतना वाले किसी भी व्यक्ति का सफल वकालती जीवन के बाद राजनीतिक जीवन में योगदान स्वाभाविक ही है। तेलंग और फीरोजशाह मेहता बदरुद्दीन को जब भी किसी सार्वजनिक आंदोलन में साथ देने के लिये कहते तो बहुत समय तक उनका यही जवाब होता था कि यह काम मेरा नहीं है, लेकिन सच पूछो तो बिना जाने ही वह उस ओर अग्रसर हो रहे थे और धीरे-धीरे देश के सार्वजनिक जीवन में सक्रिय योगदान करने लगे।

3

सार्वजनिक जीवन का श्रीगणेश

राजनीतिक क्षेत्र म महानता प्राप्त करन वाल अनक लोगा की तरह बदरुद्दीन तैयबजी न भी अपना राजनीतिक जीवन बडे छाटे क्षेत्र मे शुरू किया। बम्बइ नगर की समस्याग्रा पर ही पहले उनका ध्यान गया। एक समय तीन कमिश्नरा के बोड का वहा शासन था और शहर की हालत दयनीय थी। 1865 म बन कानून के अ तगत प्रशासन का अधिकार एक कमिश्नर को दिया गया जो बम्बइ नगर तथा द्वीप के (जस्टिसज आफ पीस) जजा के एक यायमडल के प्रति उत्तरदायी था। मि० आथर क्राफर्ड इस तरह के सवप्रथम कमिश्नर थ। वह थ तो होशियार परतु तानाशाही मनावृत्ति के थे इसलिए अपने कार्यों के आर्थिक परिणाम की [illegible] बिल्कुल लापरवाह थ। यायमडल के जज और कट्रालर आफ [illegible] कोई उन्हें उनकी अधाधुधी स नही रोक सका, जिसस जल्दी [illegible] लियपन की सी स्थिति पैदा हो गई। जनता म इसस [illegible] करदाताओं न अपनी शिकायतें प्रगट करन के लिए नवम्बर 1871 [illegible] दाता-सघ (रेट पयस एसोसिएशन) की स्थापना की। [illegible] जैम्स फाबस ने भी मि० क्राफर्ड की तानाशाही के विरुद्ध [illegible]। फलत 30 जून, 1871 का टाउनहाल के दरबारहाल म [illegible] का आयोजन किया गया। सर होमी मोदी न [illegible] लिखा है

"जून के उस अविस्मरणीय दिन [illegible]

व्यक्तियों की जैसी मंडली देखने में आई वैसी बंबई के नागरिक एवं राजनीतिक जीवन की किसी अन्य समस्या पर शायद ही कभी एकत्र हुई होगी। हर क्षेत्र के विशिष्ट व्यक्ति अपने प्रिय नगर बंबई की सेवा की तीव्र भावना से उस सभा में मौजूद थे। भारतीयों के प्रतिनिधि रूप में जमशेदजी, जीजीभाई, नौरोजी फरदूनजी सोराबजी बंगाली, विश्वनाथ मांडलिक, बदरुद्दीन तैयबजी फीरोजशाह मेहता, दादाभाई फ्रामजी, महादेव गोविन्द रानडे और नारायण वासुदेव जैसे गण्यमान्य व्यक्ति उपस्थित थे। अंग्रेजों का प्रतिनिधित्व रावर्ट नाइट जेम्स मक्लीन, मार्टिन वुड जेम्स फार्बस, हैमिल्टन मैक्सवेल कैप्टन हैनकाक कप्टन हेनरी जान केनेन और थामस ब्लैनी जैसे विशिष्ट व्यक्तियों ने किया। यही उस नई बंबई के निर्माता थे जिसकी नींव सर बटल फ्रेर के महत्वपूर्ण शासनकाल में रखी गई थी। ये लोग म्युनिसिपल सुधार की लड़ाई लड़ने तथा नगर में स्थानीय स्वशासन की सुदृढ़ नींव रखने के लिए वहां एकत्र हुए थे।[1]

लंबे वाद विवाद के बाद अंत में मि० फार्बस के प्रस्ताव पर मि० मक्लीन का यह संशोधन स्वीकृत हुआ कि न्यायमंडल 'जैसा कि इस समय वह है' म्युनिसिपैलिटी के आर्थिक मामलों की वैसी कारगर और सतत देखभाल नहीं कर सकता जिसका 1865 के एक्ट में विधान है इसलिए सरकार से प्रार्थना है कि न्यायमंडल और म्युनिसिपल कमिश्नर को प्रदत्त आर्थिक अधिकार 16 सदस्यों की टाउन कौंसिल के सुपुर्द किए जाएं जिनमें 15 सदस्यों में से 6 सरकार नामजद करे 6 जस्टिसों के न्यायमंडल द्वारा चुने जाएं और 4 का करदाता निर्वाचन करें।

बाद में मि० फार्बस के प्रस्ताव का समर्थन करने के लिए हुई सभा में सार्वजनिक मामलों पर बदरुद्दीन तैयबजी का सर्वप्रथम भाषण हुआ,

---

1 सर फिरोजशाह मेहता लेखक सर एच० पी० मोदी, एशिया बंबई।

जिसम उन्होंन कहा

"शहर की सडकें अच्छी हो यह हम नागरिकों का अधिकार है। लेकिन यहा कुछ सडकें ता एसी है जा शहर की शाभा नही बढाती। जस्टिस लाग अगर शहर की कुछ गरीब बस्तियां म जायें तो उन्हें यह दखकर आश्चय हागा कि वहा की सडकों की कमी बुरी हालत है। वालकेश्वर महालक्ष्मी या ब्रीचकण्डी म रहन वाला का तो भला उनकी परवाह ही क्या हो, ब ता गरीबों की आर से लापरवाह ही रहत है। लेकिन स्पष्टत यह अन्याय है और न्यायमटन का इस पर कोई नियत्रण नही है। मरा विश्वास है कि मि० फाब्स न जिस टाउन कौंसिल का प्रस्ताव किया है उसस ऐस अन्यायो का शाघ्र अत हो जायेगा। कारण यह कि उसके सदस्य सार शहर की जरूरत पर ध्यान देंग और धनी बस्तियो की ही तरह गरीब बस्तियों के हितो पर भी नजर रखेंगे। मि० फाब्स के प्रस्ताव के पक्ष मे यही तक कम नहीं है लेकिन और दलीलो की जरूरत हो तो यह बताना काफी होगा कि निर्वाचन के सिद्धात को उसम स्थान दिया गया है। करदाताओ क प्रतिनिधित्व का औसत कुछ भी क्या न हो और निर्वाचित प्रतिनिधियो की सख्या कितनी भी क्या न हो, यह नही समझना चाहिए कि शहर और म्युनिसिपेलिटी के मामला की व उपेक्षा करेंगे और अनिश्चित काल तक हालत बिगडती रहन देंगे। ('टाइम्स आफ इडिया, 10 जुलाई 1871)

निर्वाचित म्युनिसिपल अधिकारियो की कायक्षमता म बदरुद्दीन तयबजी का ऐसा विश्वास अतिशयोक्तिपूण होत हुए भी हृदय को छून वाला था। फिर वह समय भी आज से भिन्न था। 1872 के एक्ट द्वारा जो सुधार म्युनिसिपल प्रशासन म किय गए उन्होन भारत की सबस बडी म्युनिसिपल कार्पोरेशन के उदय का माग प्रशस्त किया।

नए एक्ट के अतगत प्रथम चुनाव 1873 म हुआ। 23 जनवरी 1873 क टाइम्स आफ इण्डिया न उस पर कटाक्ष करत हुए लिखा ' 1873 के प्रथम चुनाव म सर जमशेद जी जीजीभाइ, जमशेदजी पेस्तनजी कपाडिया,

डा० थामस ब्लैनी, बदरुद्दीन तयबजी जसे सुप्रसिद्ध लोगो की तो बात ही क्या, जनता के अत्यधिक लोकप्रिय नेता नौरोजी फरदूनजी तक को एक स अधिक मत नही मिला।' लेकिन बदरुद्दीन निराश नही हुए और 1875 म हुए अगले चुनाव मे तो वह विजयी हुए ही उसके बाद के चार चुनावो म भी बराबर विजयी होते रहे।

बदरुद्दीन तयबजी ने नागरिक समस्याओ को हल करने म सक्रिय योग दान दिया। लेकिन ऐसा करते हुए भी मुस्लिम समदाय की उन्होन उपेक्षा नही की, जो सामाजिक और शक्षणिक दृष्टि से पिछडा हुआ था और राज नीतिक चेतना जिसमे नही के बराबर थी। मुसलमानो मे शिक्षा प्रसार के लिए बदरुद्दीन ने जो प्रयत्न किए उनकी उपेक्षा नही की जा सकती। 1876 मे बम्बइ म जिस अजुमन ए इस्लाम की स्थापना उन्होने की शिक्षा प्रसार तो उसका प्रमुख उद्देश्य था ही वस्तुत वह हर दिशा म मुसलमानो की प्रगति के लिए ही बनाई गई थी। उसके काय पर एक पथक अध्याय म ही प्रकाश डाला जा सकता है।

अग्रेजो द्वारा भारतीयो के साथ किए जाने वाले भेदभावपूर्ण और अप-मानजनक व्यवहार के प्रति भी वह लापरवाह नही थे। अखबारो मे छपे एक पत्र म उन्होने लिखा था एक अग्रेज नाई का इस देश के लोगो के बाल काटने मे इकार करने का कारण यह भावना है कि इस देश के लोग उनमे नीचे दर्जे के ह या कहना चाहिए कि हम नीची और वे उच्च जाति के ह। उनका ऐसा घमड और औद्धत्य अपमानजनक और हास्यास्पद है। उच्च राज्याधिकारी भी अगर ऐसा ही मानते हो और यही उनकी नीति हो, तब तो यह सचमुच बडी खतरनाक बात हो जाती है। उदाहरण के लिए क्या यह बात उचित मानी जा सकती है कि यात्रियो के लिए जो बगले सावजनिक धन स बनाये गये है और जिनके निर्माण मे महा *रानी के भारतीय प्रजाजनो स प्राप्त धन का ही अधिक उपयोग किया गया* है उनमे इस देश के निवासियो को ठहरने की मनाई हो, फिर उनका पद और रुतबा कितना ही बडा क्या न हो? ऐसी घटनायें उस समय आमतौर

पर होती रहती थी, यहा तक कि एक बार[2] स्वयं बदरुद्दीन के साथ भी ऐसा ही किया गया था।[3] बम्बई के वकीलो म भी ऐसे अंग्रेजो की कमी नही थी जिनमे उच्च जातीयता का मिथ्याभिमान था। एसे उद्धत अंग्रेजो को उन्होने कैसे ठीक किया यह आगे बताया जायेगा।

बदरुद्दीन का दूसरा प्रमुख सार्वजनिक भाषण सूती कपडे पर आयात कर हटाने के वाइसराय लाड लिटन के प्रस्ताव के विरुद्ध हुआ। प्रगट रूप से तो ऐसा मुक्त व्यापार के नाम पर ही किया गया, परतु इसका वास्तविक उद्देश्य लकाशायर के सूती वस्त्र निर्माताओ को लाभ पहुचाना था। अर्थ-सचिव (फाइनेंस सेक्रेटरी) को छोड सारी कौसिल इस प्रस्ताव के खिलाफ थी, फिर भी विरोध की कोई परवाह न कर लाड लिटन ने यह निर्णय किया था। इसका विरोध करने के लिये टाउनहाल का उपयोग नही करने दिया गया, तब फ्रामजी कावसजी इस्टीट्यूट के हाल म 3 मई, 1879 को विरोध सभा की गई। सभा मे प्रमुख वक्ता मुरारजी गोकुलदास थे। फीरोजशाह मेहता ने वह आवेदन पत्र पढकर सुनाया, जिसे सभवत स्वय उन्होने ही लिखा था। आवेदनपत्र को हाउस आफ कामस म पेश करने के लिए ब्रिटिश पार्लिया-मेंट के सदस्य प्रा० फासेट के पास भेजने का प्रस्ताव बदरुद्दीन तयबजी न पेश किया। इस अवसर पर उन्होने जो भाषण किया, श्री सी० एल० पारख के अनुसार, उससे यह स्पष्ट हो गया कि 'बदरुद्दीन म प्रथम श्रेणी के वक्ता के गुण है'[3]। श्री पारख की इस टिप्पणी म निश्चय ही दूरदर्शिता थी। बदरुद्दीन की मृत्यु पर उन्हे श्रद्धाजलि भेंट करते हुए जस्टिस रसल ने भी कहा कि 'अंग्रेजी भाषा के जिन सबसे प्रतिभाशाली और निर्दोष वक्ताओ को मैंने सुना है उनम वह एक थे। परतु अपने भाषण द्वारा जो सिक्का उन्होने जमाया

---

2 बदरुद्दीन तयबजी लेखक हुसेन बी तयबजी पृष्ठ 46

3 एमिनेंट इंडियस ऑन इंडियन पालिटिक्स लेखक सी० एल० पारख, बम्बई, 1892।

वह तो जमाया ही उससे भी बडी बात यह हुई कि उस सभा म एक ऐसी संस्था की नींव पडी जो आगे बहुत वर्षों तक बम्बई के सावजनिक जीवन का मार्गदर्शक रही।

1882 के अगस्त म बदरुद्दीन तयबजो बम्बई के गवनर की लेजिलेटिव कौंसिल के सदस्य नामजद किए गय। 1 सितम्बर 1882 को कौंसिल की पहली बठक रखी गई थी। उसम उपस्थित होन क लिए उस दिन की पशी वाले एक मुकदमे की पैरवी किसी और स करान लिए उ होन कहा लेकिन जिन सालि सिटरो न वह मुकदमा उन्ह दिया था व इसके लिए तयार नही हुए और साफ मना कर दिया। तब उन्होन कारण पश करत हुए अदालत म तारीख बदलन की प्राथना की परतु विपक्ष की ओर स उसका विरोध किया गया और अदालत ने तारीख बदलने स इकार कर दिया। इस घटना का उल्लेख करत हुए 1 सितम्बर 1882 के टाइम्स आफ इण्डिया न लिखा था

माननीय बदरुद्दीन तयबजी न कल तीसर पहर एक मुकदम की तारीख बदलन की इसलिए अर्जी दी थी जिससे लेजिस्लेटिव कौंसिल की प्रथम बठक म शामिल होन के लिए वह आज सवेर की गाडी से पूना जा सकें। विपक्ष की ओर स इस अर्जी का विरोध किए जान पर जज न इसे अस्वीकार कर दिया। हम लगता है कि यह ऐसा मामला है जिसका बम्बई की सारी जनता स सबध है। ऐसा महत्व होन के कारण इसकी उपेक्षा नही की जा सकती। बदरुद्दीन तयबजी न मुकदम की तारीख बदलन की जो अर्जी दी वह किसी व्यक्तिगत कारण से नही बल्कि एकमात्र सावजनिक आधार पर थी। उसकी अस्वीकृति का यह परिणाम हुआ कि पूना जाकर सावजनिक महत्व क काय म योग देने से वह वचित रह गए जिसकी उन्होन अपनी तरफ स पूरी तैयारी कर ली थी। उनक सामन इसके सिवा कोइ चारा नही था कि या तो अपन मुवक्किल का नुकसान करत या अपन सावजनिक काय की उपेक्षा। हमारा विश्वास है कि मेसस टाविस एण्ड राउटन सालिसिटस को उन्होने मुकदमा सचमुच लौटा भी दिया था, परतु उन्होन इस आधार पर वापस

सेन में इसरार कर लिया कि ऐसा करने से उनके मुवक्किल का मामला चौपट हो जाएगा। हमारे विचार में यह ऐसा मामला है जिसकी जनता और अखबारों को उपेक्षा नहीं करनी चाहिए बल्कि जोरदार आंदोलन इसके लिए करना होगा क्योंकि लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्यों को अपना काम ठीक तरह पूरा करने के लिए सभी आवश्यक सुविधाएं मिलनी ही चाहियें।

शिक्षा सम्बन्धी प्रवृत्तियों को अनवरत उन्होंने कभी नहीं छोड़ा। अंजुमन-ए-इस्लाम के कार्यों में तो उनका बहुत समय लगता ही रहा। इसके अलावा 1882 में हंटर कमीशन के सामने उनकी गवाही हुई, जिसमें उन्होंने मुसलमानों की शिक्षा संबंधी स्थिति पर प्रकाश डाला। उसके अगले ही वर्ष बंबई के सार्वजनिक जीवन में प्रमुख नेताओं के बीच उन्होंने अपना स्थान प्राप्त कर लिया।

पूरा ध्यान देंगे ।'[1]

अजुमन ने मुम्बादेवी के गोकुलदास तेजपाल स्कूल मे अलग से एक एग्ल-हिन्दी क्लास शुरु किया । परन्तु शीघ्र ही यह बात स्पष्ट हो गई कि इसके लिए अलग स्कूल ही होना चाहिए और उसके लिए धन-सग्रह का काम जोरों से शुरू हो गया । खुद बदरुद्दीन ने भी इसके लिए 28 मार्च, 1880 को शहर के प्रमुख मुसलमानों की एक सभा मे जोरदार अपील की । 20 सितम्बर, 1880 को स्कूल चालू हो गया और बदरुद्दीन ने, जो अब अजुमन के मत्री बन गए थे, योजना म अपना विश्वास प्रगट करने के लिए अपने दो लडको को वहीं पढने के लिए भेजा । बम्बई सरकार ने स्कूल के लिए 6,000 रु० वार्षिक की सहायता मजूर की, परन्तु यह सहायता की राशि पर्याप्त नहीं थी, इसलिए बदरुद्दीन ने कोशिश करके म्युनिसिपैलिटी से भी 6,0C0 रु० वार्षिक की सहायता मजूर कराई ।

शिक्षा समस्या के समाधान म व्यस्त रहने पर भी सरकारी नौकरिया मिलने म मुसलमानों की कठिनाइयों से वह बखबर नही थे । गवनर की कौंसिल के सीनियर मेम्बर मि० एल० सी० एशबनर और गवनर सर जेम्स फग्युसन से उन्होंने इस सम्बन्ध म बातचीत की । सबसे अटपटी जो बात उन्हे लगती थी वह थी किसी मुसलमान को बबई का शेरिफ न बनाना । बाद मे हण्टर कमीशन का ध्यान भी उन्होंने इस ओर आकर्षित किया था । बदरुद्दीन की सिफारिश पर रहीमतुल्ला सयानी शेरिफ नियुक्त किए गये और सर जेम्स फग्युसन ने इस अवसर का लाभ उठाकर उन्हे आश्वासन दिया कि मुसलमानों के साथ पूरा न्याय होगा । यहा यह बता देना अप्रासगिक नही होगा कि किसी मुसलमान को शेरिफ बनाने की माँग पर अन्य जाति वालो ने मुसलमानों

---

1 चीफ सेक्रेटरी मि० सी० गोने का पत्र दिनाक 16 सितम्बर, 1876 ।

2 बम्बई के गवनर सर जेम्स फग्युसन का पत्र दिनाक 24 दिसम्बर, 1884 ।

4

मुस्लिम शिक्षा

वकालत के बाद बदरुद्दीन तैयब जी की सबसे अधिक अभिरुचि शिक्षा में थी। राजनीति की ओर तो उन्होंने बाद में ध्यान दिया। अंजुमन ए इस्लाम को उन्होंने अपने विचारों को और इस क्षेत्र में किए जाने वाले अपने प्रयत्नों का माध्यम बनाया। बदरुद्दीन, उनके मित्र नाखुदा मुहम्मद अली रोगे, बड़े भाई कमरुद्दीन, मुंशी हिदायतुल्ला और मुंशी गुलाम मुहम्मद इसके संस्थापक थे। 18 अप्रैल, 1876 को कमरुद्दीन इसके प्रथम अध्यक्ष और रोगे उपाध्यक्ष चुने गए थे। अंजुमन की मजलिस ए मुंतज़िम (कार्यकारिणी) भी थी, जिसके सदस्य चुने जाते थे। उसके सात निर्वाचित सदस्यों में बदरुद्दीन भी थे। (एक सदस्य अब्बास तैयब जी थे जिन्होंने 1930 के दांडी कूच में भाग लेकर ख्याति पाई)। अंजुमन के अध्यक्ष ने 15 अगस्त 1876 को बम्बई सरकार के चीफ सेक्रेटरी को पत्र लिखकर सूचित किया कि "मुसलमानों की स्थिति सुधारने में सहायक होने के उद्देश्य से हाल में बम्बई में अंजुमन ए इस्लाम नाम से एक संस्था बनाई गई है। इस संस्था ने सबसे पहले जिस बात पर ध्यान दिया है वह है मुसलमानों में शिक्षा का अभाव जिस पर ही फिलहाल वह ध्यान देना चाहती है। पत्र में सरकार से प्रार्थना की गई कि अंजुमन के इस काम में और खासकर "महारानी के प्रजाजनों के इस वर्ग (मुसलमानों) को अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त कराने में वह अंजुमन की मदद करे। जवाब में चीफ सेक्रेटरी ने आश्वासन दिया कि "मुसलमानों में शिक्षा प्रसार के लिए अंजुमन ए-इस्लाम जो भी सुझाव देगी उन पर शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर और सरकार

पूरा ध्यान देंगे ।"[1]

अंजुमन ने मुम्बादेवी के गोकुलदास तेजपाल स्कूल म अलग से एक एंगल-हिन्दी क्लास शुरू किया । परन्तु शीघ्र ही यह बात स्पष्ट हो गई कि इसके लिए अलग स्कूल ही होना चाहिए और उसके लिए धन-संग्रह का काम जोरों से शुरू हो गया । स्वुद बदरुद्दीन न भी इसके लिए 28 मार्च, 1880 को शहर के प्रमुख मुसलमानों की एक सभा म जोरदार अपील की । 20 सितम्बर, 1880 को स्कूल चालू हो गया और बदरुद्दीन न, जो अब अंजुमन के मंत्री बन गए थे, योजना म अपना विश्वास प्रगट करन के लिए अपने दो लडकों को वहीं पढने के लिए भेजा । बम्बई सरकार न स्कूल के लिए 6,000 रु० वार्षिक की सहायता मंजूर की परन्तु यह सहायता की राशि पर्याप्त नहीं थी इसलिए बदरुद्दीन ने कोशिश करके म्युनिसिपैलिटी से भी 6,000 रु० वार्षिक की सहायता मंजूर कराई ।

शिक्षा समस्या के समाधान मे व्यस्त रहने पर भी सरकारी नौकरियों मिलने म मुसलमानों की कठिनाइयों म वह बेखबर नहीं थे । गवर्नर की कौंसिल के सीनियर मेम्बर मि० एल० सी० एशबर्नर और गवर्नर सर जेम्स फर्ग्युसन से उन्होंने इस सम्बन्ध मे बातचीत की । सबसे अटपटी जो बात उन्हें लगती थी वह थी किसी मुसलमान को बंबई का शेरिफ न बनाना । बाद मे हण्टर कमीशन का ध्यान भी उन्होंने इस ओर आकर्षित किया था । बदरुद्दीन की सिफारिश पर रहीमतुल्ला सयानी शेरिफ नियुक्त किए गये और सर जेम्स फर्ग्युसन ने इस अवसर का लाभ उठाकर उन्हें आश्वासन दिया कि मुसलमानों के साथ पूरा न्याय होगा । यहाँ यह बता देना अप्रासंगिक नहीं होगा कि किसी मुसलमान को शेरिफ बनाने की मांग पर अन्य जाति वालो ने मुसलमानों

---

1 चीफ सेक्रेटरी मि० सी० गोने का पत्र दिनांक 16 सितम्बर, 1876 ।

2 बम्बई के गवनर सर जेम्स फर्ग्युसन का पत्र, दिनांक 24 दिसम्बर 1884 ।

का जोरदार समथन किया था। यही नही अजुमन के मामले म भी, जो खास-तौर से मुसलमानो म शिक्षा प्रसार के लिए ही कायम की गई थी बदरुद्दीन न अपने गैरमुस्लिम दोस्तो का भी सहयोग मागा था और उन्होने उसे अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया था। सर फीरोजशाह तथा कुछ अन्य को उन्होंने अजुमन के मदरसे का निरीक्षण करने के लिए भी आमन्त्रित किया और उसके बारे मे अपनी रिपोट देने को कहा। उन्होने 1882 म जो रिपोट दी उसे तयार करने मे औरो के अलावा सर फीरोजशाह मेहता बी०एम० वागले एम०पी० पंडित, नाना मुरार जी और केखुसरू एन० काबराजी जैसे प्रमुख व्यक्ति भी थे। मदरसे के अध्यापन कायक्रम पर विचार के बाद इस रिपोट के अन्त म कहा गया था

'अजुमन के स्कूलो ने इस शहर के पूरे मुस्लिम वग म शिक्षा प्रसार के काम म जो उल्लेखनीय प्रगति की है उसके लिए इसके प्रवत्तको को हार्दिक बधाई देने म हम बडी प्रसन्नता है। बडी सावधानी कुशलता और व्यावहारिकता से ही इतने अल्पकाल म ऐसी सफलता प्राप्त की गई है इसम सदेह नही। हम यह कहने म कोई हिचकिचाहट नही कि जिस सराहनीय ढग से यह काम शुरू और सगठित किया गया उसी तरह आगे भी जारी रहा तो इससे बम्बई के मुस्लिम समुदाय को वसा ही लाभ होगा जसा कि बाम्बे एजुकेशन सोसायटी के स्कूलो म हिन्दू और पारसी समुदायो को हुआ है। इन स्कूलो का निरीक्षण करके हमारी यह दृढ धारणा बनी है कि एक ऐसी जाति मे जो विभिन्न कारणो से दीघकाल से शिक्षा के प्रति उदासीन रही है शिक्षा प्रसार का निश्चित रूप से महत्वपूर्ण कदम उठाया गया है। हमारी यह भी धारणा है कि यह जो कदम उठाया गया है उसम पीछे हटने की गुजाइश नही है और ब्रिटिश शासन द्वारा हमारे देश मे जिस ज्ञान और प्रकाश का प्रसार किया जा रहा है उसमे मुसलमान भाई भी शिक्षा प्राप्त कर अपने उपयुक्त योगदान की माग किए बिना नही रहेंगे।'

पर व्यक्तिगत महत्वाकाक्षाओ को लेकर आपसी मनमुटाव अजुमन म भी हुए बिना न रहा।[3] उससे उत्तेजित होकर बदरुद्दीन ने टाइम्स आफ इंडिया'

3 विस्तार के लिए देखें हुसेन बी० तयब जी लिखित 'बदरुद्दीन तयब जी पृष्ठ 92 101।

(10 मई, 1882) म एक पत्र प्रकाशित किया, जिसमे अजुमन के काय के सबध म अपन विचार स्पष्ट रूप मे रखे। उहान लिखा

महाशय यह बात सही नही है कि अजुमन ए इस्लाम सिफ साहित्यिक और वज्ञानिक सस्था है। यह सवथा सत्य है कि अजुमन ने खासतौर म इस प्रात की मुस्लिम आबादी के लिए शिक्षा सुविधाए उपलब्ध करान तथा नतिक और सामाजिक मामला तक ही अब तक अपने का सीमित रखा है। राजनीतिक प्रश्ना व वादविवाद स ता उसने जान-बूझकर अपन का अलग रखा है क्याकि इस अधिकाश मामला का सबध केवल मुसलमाना से ही न होकर सामायत सभी भारतीय जनता से हाता है। ऐसी हालत मे अच्छा यही है कि उन पर अजुमन जसी केवल मुसलमाना की सस्था क बजाय एसी राजनीतिक सस्थाओ म विचार हा जिनम किसी एक ही जाति के बजाय सभी जातिया और समुदायो के लाग शामिल हा।

'लकिन जब एसे राजनीतिक या नागरिक मामले उठे, जिनका अय जातिया क बजाय मुसलमाना स विशेष सबध था तो अजुमन न आगे बढकर उनम भाग लन म सकोच नही किया। तुर्की के मामले मे मस्जिदा और अय दातव्य सस्थाओ का पानी उपलब्ध करन, मुसलमानो म रोग प्रतिबधक टीके लगाने का प्रात्साहन देने जनगणना ठीक तरह करने मुस्लिम छुट्टिया मे मुसलमानो को अदालत म हाजिरी से मुक्त कराने, शहर के विभिन्न भागो मे स्कूलो की स्थापना करन आदि प्रश्नो पर अजुमन ने जा कुछ किया वह सवविदित है। अजुमन वस्तुत मुस्लिम समुदाय की प्रवक्ता ही है जा मुसलमाना के शिक्षित विचारशील लागा की युक्तियुक्त और सुसस्कृत भावनाओ एव आकाक्षाआ का प्रतिनिधित्व करती है। लेकिन यह मुसलमाना म अज्ञानी और अधविश्वासी वग के पूवाग्रहा, धार्मिक घणा भावनाओ एव सकीणता का यह

अवश्य प्रतिनिधित्व नही करती।'

मुस्लिम समस्याओ पर उहाने बाद मे भी जा कुछ कहा उससे यह स्पष्ट है

कि जातिगत और राष्ट्रीय सस्थाओ के अतर को उन्होने कभी नही भुलाया और दोनो के क्षेत्र को एक दूसरे से सर्वथा भिन्न माना।

सर विलियम डब्ल्यू० हण्टर की अध्यक्षता वाले शिक्षा आयोग के सामने बयान देते हुए 27 अक्तूबर 1882 को बदरुद्दीन तयबजी ने कहा प्राथमिक शिक्षा की पद्धति मुसलमानो की दृष्टि से ठीक नही है। सचाई तो यह है कि मुसलमानो की आवश्यकताओ को दृष्टि मे रखकर वह शुरू ही नही की गई है। उच्च वर्गीय मुसलमान बहुत हद तक सरकारी स्कूलो से वचित ही रहते है क्योकि उनकी विशेष आवश्यकताओ की वह पूर्ति नही करते। वे हिन्दुस्तानी फारसी और अरबी के ज्ञान को बहुत महत्व देते हैं, इसलिए आमतौर पर ऐसे स्कूलो मे नही जाना चाहते जिनमे शिक्षा का माध्यम केवल गुजराती, मराठी या अग्रेजी है। जो शिक्षा पद्धति मुसलमानो की आवश्यकताओ के अनुकूल होगी उसका प्रभावशाली मुसलमान अवश्य समर्थन करेंगे ऐसा मेरा ख्याल है। अभी तो वे अग्रेजी शिक्षा के विरुद्ध नही तो भी उसके प्रति सर्वथा उदासीन तो हैं ही क्योकि अपनी प्राचीन भाषाओ की शिक्षा के अभाव मे उसे वे ठीक नही समझते। इसका उपयुक्त समाधान यही हो सकता है कि पाश्चात्य साहित्य कला और विज्ञान की शिक्षा के साथ-साथ प्राच्य ज्ञान को भी शिक्षा का अग बनाया जाए।'

बदरुद्दीन ने हण्टर कमीशन को सुझाव दिया कि आधुनिक शिक्षा मे हिन्दुस्तानी और फारसी पढाई के साथ मौखिक गणित भी उसी रूप मे पढाई जाए "जैसा कि देसी पद्धति की गुजराती पाठशालाओ मे होता है तो मुसलमानो के लिए प्राथमिक कक्षाओ की पढाई अब की तुलना मे अधिक अनुकूल और स्वीकार्य हो जाएगी।'

यह उनकी दूरदर्शिता का प्रमाण है कि अब से बहुत पहले 1882 मे ही, व्यावसायिक शिक्षा की आवश्यकता पर उन्होने जोर दिया था। 'कुछ स्कूल, हण्टर कमीशन से उन्होने कहा था, "खासकर उनके लिए खोले जाने चाहिए जो व्यवसाय करना चाहते हैं। इनकी प्राथमिक शिक्षाओ मे मौखिक गणित को विशेष महत्व देना चाहिए और कुछ स्कूलो मे बहीखाता पद्धति भी सिखाई

जाए तो उससे बहुत लाभ होगा। कृषि शिक्षा और तकनीकी ज्ञान की कक्षाए भी शुरू की जानी चाहिए।

अपने बयान म उ होने यह भी कहा कि फीस मेरे ख्याल म विद्यार्थिया के माता पिता या अभिभावका की कमाई के अनुसार कम-ज्यादा होनी चाहिए। जो विद्यार्थी पढ़ने म तेज हो परन्तु उनके अभिभावक फीस देने की स्थिति मे न हो उनका मेरे विचार म विशेष ख्याल करना चाहिए—खासकर मुसलमाना के लिए, जिनकी गरीबी और अज्ञान राज्य के लिये करीब करीब खतरे का ही रूप ले चुका है और जिसका कोई न कोई उपाय करना बहुत जरूरी हो गया है।'

कमीशन ने उनसे पूछा 'क्या आपके प्रात म शिक्षित भारतवासिया को बिना किसी कठिनाई के उपयुक्त नौकरी मिल जाती है?' इस पर बदरुद्दीन ने जवाब दिया "शिक्षित मुसलमाना का सरकारी या अ य प्रकार की उपयुक्त नौकरी मिलने मे बहुत कठिनाई होती है।'

इसके कारण उ होने बताए अंग्रेजी शिक्षा का अभाव और राजनीतिक पूर्वाग्रह तथा फारसी व अरबी का महत्व कम हो जाना जिसके फलस्वरूप "समाज मे ऊचा और प्रभावपूर्ण स्थान रखने वाला की कोशिशो के बावजूद बहुत इज्जतदार घराना के भी यूनिवर्सिटी से डिग्री प्राप्त कई मुसलमान ग्रेजुएट को कोई नौकरी नही मिलती।

मुसलमाना मे इस हीन अवस्था के कारण भी उ होने वही [illegible] बताए

1 भूतकाल म अपना साम्राज्य होने के गर्व [illegible] वर्तमान परिस्थिति के अनुरूप अपने को न ढाल पाना।

2 भारत, ईरान और अरब के जिस [illegible] रहा उसम ही रस और गर्व का अनुभव [illegible] साहित्य, कला और विज्ञान की कद्र न [illegible]।

3 ऐसी अस्पष्ट भावना का होना कि यूरोपीय शिक्षा इस्लाम की परम्पराओं के विरुद्ध है और उससे नास्तिकता आने तथा ईसाई बन जाने का डर है।

4 शिक्षा अधिकारियों द्वारा मुसलमान युवकों के लिए उपयुक्त स्कूल खोलने में लापरवाही या उदासीनता।

5 गरीबी जिसके कारण वर्तमान स्कूलों का लाभ भी वे नहीं उठा पाते।

6 ऐसी भावना कि देश की सरकार उनकी हीन स्थिति की ओर ध्यान नहीं देती, न उन्हें उससे उबारने का कोई उपाय ही करती है।

7 ऐसी भावना कि सरकारी स्कूलों की अंग्रेजी शिक्षा सामान्य जीवन यापन के लिए व्यर्थ है और उसका कोई व्यावहारिक मूल्य नहीं है।

इन सब कारणों को दूर करने के उपाय भी उन्होंने सुझाए। उन्होंने कहा कि 'मुसलमानों को धीरे धीरे इस बात का विश्वास कराना चाहिए कि अपने प्राचीन गौरव की रक्षा और उसके योग्य बनने के लिए वर्तमान अवसरों का अधिकाधिक लाभ उठाना आवश्यक है निष्क्रिय उदासीनता से उनकी दशा में जरा भी सुधार नहीं होगा, उलटे उनकी हालत दिन पर दिन खराब होती जाएगी। लेकिन अपनी जिम्मेदारी की भावना से और दृष्टिकोण में वास्तविकता के कारण से उन्होंने यह भी कहा कि, "इस स्थिति का निवारण, यानी मुसलमानों में जागृति लाकर अपनी अकर्मण्यता और उदासीनता के प्रति लज्जा की भावना पैदा करना ऐसा काम है जिसमें सरकार या शिक्षा आयोग ज्यादा कुछ नहीं कर सकते। यह काम तो समझदार और प्रभावशाली मुसलमानों को खुद ही करना चाहिए। सभाओं का आयोजन कर भाषणों द्वारा, अखबारों में लेख लिख लिखकर और ज्ञान के प्रसार के लिए संस्थाओं की स्थापना करके ही वह मुसलमानों को अपनी वर्तमान उदासीनता के घातक दुष्परिणामों के प्रति जागरूक बना सकते हैं।"

मुसलमानों के प्रति सरकार के उपेक्षा भाव की भी उन्होंने वैसी ही तीव्र आलोचना की। इसका कारण था 1857 के विद्रोह में मुसलमानों का योग।

बदरुद्दीन ने कहा "स्कूलों कालेजों में मुस्लिम साहित्य का करीब करीब बहिष्कार क्यों है ? जैसे ग्रन्य जातियों को सरकारी संरक्षण मिलता है वैसे ही मुसलमानों का भी क्यों नहीं किया जाता ?"

हण्टर कमीशन के सामने दिये गये पूरे बयान से स्पष्ट है कि मुसलमानों की शिक्षा समस्याओं का अध्ययन बहुत गहरा था। उनके बयान तथा मुसलमानों के पिछड़ेपन सम्बन्धी जो ज्ञापन 1 नवम्बर, 1882 को उन्होंने दिया उसमें दिये गये आंकड़ों से कमीशन बहुत प्रभावित हुआ। ज्ञापन में तकनीकी शिक्षा पर जोर देने के कारण भी वह उल्लेखनीय है (परिशिष्ट 1)।

गवर्नमेंट ला कालेज के सुधार के लिए बदरुद्दीन ने जो प्रयत्न किये उनसे भी शिक्षा में उनकी गहरी दिलचस्पी का पता चलता है। स्वेच्छापूर्वक अपनी मर्यादाएं अर्पित करने पर जुलाई 1886 में जब वह उसमें प्रोफेसर नियुक्त हुए उस समय कालेज प्रशासन बहुत बुरी हालत में था। उन्हें यह जानकर बड़ा आघात पहुंचा कि हाजिरी लगाकर ही छुट्टी मिल जाय ऐसी अपेक्षा विद्यार्थी उनसे करते थे। बदरुद्दीन ने ऐसा नहीं किया। नियमों की पाबंदी और पढ़ाई पूरी किये बिना छुट्टी न देने पर वह दृढ़ता से जमे रहे। इस तरह शिक्षक के रूप में तो वह सफल रहे परन्तु मदरसा की हालत सुधारने की दिशा में वह कुछ नहीं कर सकते थे। आखिर कुछ वर्ष बाद 1897 में उन्होंने एक नया कालेज खोलने का आन्दोलन शुरू किया। प्रस्तावित कालेज के व्यवस्था मंडल (मैनेजिंग बोर्ड) के अध्यक्ष बदरुद्दीन थे और सर्वश्री (बाद में सर) नारायण चंदावरकर (बाद में सर) चिमनलाल सीतलवाड़, रुस्तम के० आर० कामा तथा एन० वी० गोखले उसके सदस्य थे। उन्हें प्रोफेसरों की नियुक्ति के बाद बोर्ड ने प्रस्तावित बाम्बे कालेज आफ ला को मान्यता देने के लिए सरकार को प्रार्थनापत्र भेजा। इसकी स्वीकृति नहीं मिली। सरकार ने इस बात की जांच की कि क्या सचमुच बदरुद्दीन ही बोर्ड के अध्यक्ष हैं और नया कालेज खोलने की बात वर्तमान ला कालेज के विद्यार्थियों को उपलब्ध सुविधाओं से संतोष न होने के कारण उठाई गई है या किन्हीं ग्रन्य कारणों से। सरकार ने यह भी जानना चाहा कि पहली बात हो तो, क्या यह संभव नहीं कि उचित

शिकायतें दूर करने के उपाय किये जायें ? जवाब में बदरुद्दीन ने शिकायतों पर विस्तार से प्रकाश डाला और इस बात को स्वीकार किया कि इस आंदोलन के पीछे वही हैं। परम्परानुसार सरकार ने समिति नियुक्त की और यह एक सुखद आश्चर्य था कि उसकी सिफारिशें तुरन्त स्वीकार कर अमल में लाई गईं। इस तरह गवर्नमेंट ला कालेज में सुधार हो गया और तब सरकार ने सूचित किया कि ला कालेज में सुधार कर दिये जाने से नया कालेज खोलने की आवश्यकता नहीं रही।

जिस तरह यह सब हुआ वह बदरुद्दीन की कार्य कुशलता में चार चांद लगाता है।

5

अभ्युदय

1883 मे बदरुद्दीन का अभ्युदय शुरू हुआ, और इसी वर्ष फीरोजशाह मेहता काशीनाथ तैलंग और बदरुद्दीन की त्रिमूर्ति बम्बई के सार्वजनिक जीवन पर छा गई।

जहा तक बदरुद्दीन का सम्बन्ध है इस वर्ष के आरंभ म वह बम्बई गवर्नर की लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य बने। 31 जनवरी 1883 को कौंसिल की बैठक हुई जिसमे मि० रवसत्रापट ने कौंसिल के कार्यसंचालन के नियमो म ऐसे संशोधन पेश किए जिनसे कौंसिल के विचारार्थ विषयों का पहले से अधिक प्रकाशन हो और स्वीकृति होकर कानून बनने से पहले जनता को उन पर सावधानी से विचार कर अपना मत देने का पूरा अवसर मिले।' इसी दृष्टि से उन्होंने यह भी कहा कि भविष्य म जो भी विधेयक पेश किए जायें उनके उद्देश्य और कारणों संबंधी वक्तव्य पहले की अपेक्षा विस्तृत होने चाहिए विधेयक की आवश्यकता के कारणों और तत्संबंधी आवश्यक सामग्री का ही उसमे समावेश नहीं होना चाहिए, किन्तु यह भी बताया जाना चाहिये कि विधेयक के कानून बन जाने पर उसका सरकारी नीति पर और जनता पर क्या प्रभाव पड़ेगा। दूसरी बात यह थी कि सभी विधेयकों और उन पर प्रवर समितियों की रिपोर्टों का भारतीय भाषाओं म अनुवाद कराकर जन-साधारण की जानकारी के लिए उनका व्यापक रूप से वितरण होना चाहिये। इन संशोधनों को पेश करते हुए उन्होंने आशा व्यक्त की कि ऐसा होने पर जनता का 'उन कानूनों पर पूरी तरह विचार कर सरकार तथा कानून बनाने वालों को अपनी सलाह तथा सहायता से लाभ पहुंचाने का सुअवसर मिलेगा।

माननीय बदरुद्दीन तयबजी ने इस अवसर का लाभ उठाकर कहा[1]

"इन नियमों के लागू किए जाने से इस देश के इतिहास में एक महत्वपूर्ण युग का श्रीगणेश होता है। ऐसे अवसर पर जनता का प्रतिनिधि होने के नाते वाइसराय (लार्ड रिपन) को धन्यवाद देना मेरा परम कर्तव्य है जिन्होंने कि उस उदार नीति की शुरुआत की और जिसके साथ उनका नाम हमेशा जुड़ा रहेगा। निस्संदेह इस समय वह उस नीति को इस प्रान्त में लागू करने के लिए योजना बनाने में दत्तचित्त हैं जिसके कि ये नियम उपक्रम मात्र हैं। स्थानीय स्वायत्त शासन की जिस योजना का हमारे वाइसराय महोदय ने सुखद प्रारंभ किया है वह भारत की परिस्थितियों, आवश्यकताओं और अपेक्षाओं का ही स्वाभाविक परिणाम है।

'जिस महत्वपूर्ण योजना पर काम शुरू होने जा रहा है उसकी सफलता के बारे में कितने ही मतभेद क्यों न हों, मैं समझता हूं कि इस बात में संदेह की बहुत ही कम संभावना है कि उससे अंग्रेज और भारतीयों के बीच निकट मेल मिलाप स्थापित होने में सदा मदद मिलेगी और अंत में सन 1857 की दुखद घटनाओं से उत्पन्न सन्देह एवं अविश्वास का अन्त होकर रहेगा। सरकार की नीति या नीयत पर सन्देह की तब भला क्या संभावना रह जाएगी, जब सरकार जो भी योजना बनाएगी उसे जनता की आलोचना और राय के लिए उसके सामने रखा जाएगा और उसकी टीका टिप्पणी को न केवल सहन किया जाएगा बल्कि जैसा इन नियमों में रखा गया है—वस्तुतः सरकार उसे आमंत्रित करेगी। अतएव, मुझे लगता है जिस नीति के फलस्वरूप ऐसे नियम बनाए जा रहे हैं वह न केवल अत्यन्त हितकारक बल्कि साथ ही सर्वाधिक बुद्धिमत्तापूर्ण भी है।

---

1 बम्बई गवर्नर की लेजिस्लेटिव कौंसिल की कार्रवाई जिल्द 12 (1883), पृ० 11

"भारत के सभी प्रान्तों में स्थानीय स्वायत्त शासन की योजना लागू हो जाने पर इस देश के सुसंस्कृत व्यक्तियों को अपनी योग्यता दिखाने और निस्वार्थ और देशभक्तिपूर्ण कार्य करने के उचित अवसर मिलने से राजद्रोह, गैरवफादारी या गद्दारी की संभावना फिर कहां रहेगी ? सच पूछो तो अखबारों का मुंह बन्द करने या लोगों को नियन्त्रित करने के लिए बड़े-से बड़े कानून बनाने के बजाय ऐसे प्रस्ताव जैसे हाल में भारत-सरकार द्वारा स्वीकार किए गए हैं, ब्रिटिश शासन को सुदृढ़ करने, लोगों को आश्वस्त करने, महारानी के प्रति उन्हें अनुरक्त करने और विद्रोह को शान्त करने के लिए निश्चय ही कहीं अधिक कारगर हैं। स्वायत्त शासन की योजना जनता के लिए ही नहीं बल्कि सरकार के लिए भी उतनी ही उपयोगी सिद्ध होगी, ऐसा मेरा निश्चित और पक्का विश्वास है।

बदरुद्दीन इससे आगे इतना और कह पाये थे कि ... की योग्यता अयोग्यता के बारे में बहुत कुछ कहा गया है, इतने में कौंसिल के अध्यक्ष पद से गवर्नर सर जेम्स फर्ग्युसन ने उन्हें टोका और कहा 'वर्तमान प्रस्तावों की सरकार द्वारा प्रस्तावित (स्वायत्त शासन की) उदार योजना से मेरे माननीय मित्र जो तुलना कर रहे हैं उसे मैं बड़े हर्षपूर्वक सुनता, परन्तु सच पूछो तो कौंसिल के सामने इस समय जो सवाल है उसी तक हम सीमित रहना चाहिए। स्थानीय स्वायत्त शासन की योजना के विस्तृत विवाद में जाकर तो हम प्रसंग से बाहर चले जायेंगे, क्योंकि हमारे सामने जो प्रस्ताव है वे तो लेजिस्लेटिव कौंसिल में प्रस्तुत विषयों या प्रस्तावों का पूर्ण प्रकाशन ... सम्बन्ध में है। मेरे मित्र स्वायत्त शासन की सामान्य योजना से ... की तुलना कर रहे हैं इसकी मुझे खुशी है परन्तु मैं समझता हूं ... वह समझेंगे कि जो प्रश्न किसी भी रूप में आज हमारे ... , ... उसके विस्तार में जाकर वह प्रसंग से कुछ बाहर ही जा रहे हैं।

बदरुद्दीन ने कुशलता से जवाब दिया 'इस मामले में ... व्यवस्था को मैं स्वीकार करता हूं। मैं तो सिर्फ यही कहने जा रहा ... महान और जटिल प्रश्न पर बहस का उपयुक्त समय नहीं है ...

स्थानीय स्वायत्त शासन की योजना के आरंभ रूप हैं उन पर समवत कभी आपत्ति नहीं की जा सकती और बम्बई के लोगो ने उनका हार्दिक समर्थन किया है। इन विशेष नियमों के बारे में मुझे कुछ खास नहीं कहना है, परन्तु मैं इन्हे उस विचाराधीन योजना का ही अग मानता हू और इनका हृदय से समर्थन करता हू।

स्थानीय स्वायत्त शासन की महत्त्वपूर्ण सभावनाओ को बदरुद्दीन जी समझ रहे थे। इसस पिछले वर्ष ही ता 18 मई 1882 के भारत-सरकार के प्रस्ताव[2] म स्वायत्त शासन का प्रात्साहन देने के लिए योजना की यह रूपरेखा सामने आई थी कि 'लोगो को अपना शासन यथासभव स्वय सम्हालन के लिए प्रेरित किया जाए। आज जो छोटी-सी शुरुआत मालूम पडती है उसके स्वाभाविक परिणाम उस समय के भारतीय नेताओ ने अवश्य समझा था। बदरुद्दीन का भाषण निस्सदेह इस बात का प्रमाण है कि उसकी सभावनाओ का उन्हे पूरा ज्ञान था।

लार्ड रिपन की सराहना

लार्ड रिपन ने अपने उदार दृष्टिकोण म भारतीयो के हृदय म स्थान प्राप्त कर लिया था जबकि उनके ऐसा गुण के कारण भारत म रहने वाले अग्रेजो म जो अनुदार लोग थ व उनके कट्टर विरोधी बन गए थ। ईस्ट इडिया एसोसियशन की बम्बई शाखा ने भारत क वायसराय के रूप म उनका कार्यकाल बढाने के लिए महारानी को प्रार्थनापत्र भेजने क इरादे स 1 फरवरी 1883 को एक सभा का आयोजन किया। श्री दीनशा पटिट जो उस समय तक सर नहीं हुए थ, उसके सभापति थे। प्रार्थनापत्र भेजने का प्रस्ताव बदरुद्दीन तयबजी ने प्रस्तुत किया और कहा 'जो प्रस्ताव मैं पेश कर रहा हू

---

2 गजट आफ इंडिया का परिशिष्ट दिनाक 20 मई 1882 पृष्ठ 747 753।

मुझ लगता है कि वह आपकी हषध्वनि के बीच यो ही स्वीकार कर लिया जाएगा। मैं नही जानता कि एसे महत्वपूण अवसर पर इस प्रस्ताव को पश करन के लिए मैं अपने को धयवाद दू या इस बात का अफसास करू कि मुझसे याग्य और श्रेष्ठ व्यक्ति के द्वारा यह पेश किया जाता ता और अच्छा होता। प्रस्ताव यह है—

"भारत के वाइसराय और गवनर-जनरल लाड रिपन न वाइसराय का अपना कायकाल शुरू करने से अब तक जा महत्वपूण काम किये है उन पर यह सभा गहरी कृतज्ञता और पूण सताष व्यक्त करती है (करतलध्वनि)। भारत मे लाड रिपन के शासन-काल को अधिक समय नही हुआ, परन्तु इतन म ही वह अविस्मरणीय इनिहास बन गया है। उन्हे वाइसराय बने तीन वष से अधिक समय नही हुआ है। उनकी नियुक्ति के विरुद्ध महारानी के ब्रिटिश प्रजाजनो के एक वग न जा हाय तावा मचाई वह केवल धम भेद पर आधारित थी[3], इसे हम नही भूल सकते। जाति, धम और राष्ट्रीयता की विभिन्नता के बीच सुख से रहन और समान उद्देश्य के लिये मिलजुलकर काम करने के आदी होन के कारण हम उस धर्माधता और सकीणता पर आश्चय किए बिना नही रह सकत जिसने हमार देश को इग्लण्ड द्वारा अब तक पदा किए सर्वोत्तम, याग्यतम और प्रबुद्ध राजनता की सवाओ से वचित करने का प्रयत्न किया था (करतलध्वनि)। लाड रिपन बडे बुद्धिमान थे और उन्हे राजनीतिक जीवन का बडा अनुभव था। इस देश के निवासियो और उनकी न्यायाचित एव वध आवश्यकताओ एव आकाक्षाओ के प्रति गहरी सहानुभूति भी उनमे थी, जो उससे भी बडी बात थी।

---

3 लाड रिपन रोमन कथोलिक थे

लार्ड रिपन के कार्यों की सराहना करते हुए बदरुद्दीन ने बताया कि 'वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट को उन्होंने खत्म किया, जस्टिस रमेशचन्द्र मित्र को बंगाल का चीफ जस्टिस नियुक्त किया गया और तब सबसे महत्वपूर्ण काम, जो अभी पूरा नहीं हुआ पर मुझे उम्मीद है कि जल्दी पूरा हो जाएगा, वह विधेयक है जो भारतीय जजों और मजिस्ट्रेटों के अधिकार पर लगी पाबन्दियों को हटाने के लिए सुप्रीम लेजिस्लेटिव कौंसिल में पेश किया गया है। (जोर की करतलध्वनि)।

इसके बाद बदरुद्दीन ने एक ऐसी मर्मस्पर्शी बात कही जिसके बारे में तब तक भी कुछ ही लोगों ने यह समझा होगा कि उसके लिए आगे जाकर देश व्यापी आन्दोलन होगा और स्वयं बदरुद्दीन उसमें प्रमुख भाग लेंगे। अपना भाषण जारी रखते हुए उन्होंने कहा[4] 'उसके बारे में बोलते हुए मुझे संयम से

---

4 बदरुद्दीन इस तथ्य पर प्रकाश डाल रहे थे कि कानून के अन्तर्गत किसी अंग्रेज पर उसी मजिस्ट्रेट की अदालत में मुकदमा चल सकता था जो स्वयं अंग्रेज हो। चीफ प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट इसके अपवाद थे। सन 1872 में जब कानून में संशोधन किया जा रहा था तब इस भेद भाव पूर्ण धारा को हटवाने की कोशिश की गई, परन्तु इंपीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल में वाइसराय, कमांडर इन चीफ और बंगाल के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर के अनुकूल मतदान देने पर भी पक्ष में कम ही मत पड़े और 5 के विरुद्ध 7 के बहुमत से हार हो गई। उसके बाद 1882 में जब कानून संशोधन पर विचार हो रहा था बंगाल सिविल सर्विस के श्री बिहारी लाल गुप्त ने अधिकारियों को पत्र लिख कर इस असंगति की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया कि कलकत्ता में कार्यवाहक प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट होते हुए तो अंग्रेजों के खिलाफ मुकदमे सुनना उनके अधिकार क्षेत्र में था परन्तु जिले में तरक्की हो जाने पर वह उस अधिकार से वंचित हो गए। उस साल फिर भी कुछ नहीं हुआ परन्तु केन्द्रीय सरकार ने इस संबंध में प्रान्तीय सरकारों के विचार आमंत्रित किए। उन्होंने भारी बहुमत से इस भ्रम

काम लेना मुश्किल लगता है क्योंकि उन धाराओं का समर्थन नहीं किया जा सकता। भारतीय दंड विधान (जाब्ता फौजदारी) में वही एसी असंगति है जिसका किसी तरह समर्थन नहीं किया जा सकता।

आगे उन्होंने कहा मुझे लगता है कि अभियुक्त से भिन्न जाति का होना ही मजिस्ट्रेट या जज की अयोग्यता मानी जाए तो एसी अयोग्यता का दायरा भारतीय मजिस्ट्रेटों या जजों तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए यह एसी अयोग्यता है जो उसी तरह में सभी मजिस्ट्रेटों और जजों पर लागू की जानी चाहिए यहाँ तक कि अंग्रेज भी उससे मुक्त नहीं होने चाहिए।

अंत में उन्होंने कहा लार्ड रिपन ने यों तो अनेक अच्छे काम किए हैं, जिनमें से कोई एक भी उनके शासन को सुप्रसिद्ध करने के लिए काफी है परन्तु उनमें भी एक काम सर्वोपरि है जो उनके नाम को इस देश के इतिहास में अमर बनाए बगैर न रहेगा—वह है स्थानीय स्वायत्तशासन की उनकी योजना।'

फीरोजशाह मेहता ने जोरदार भाषण द्वारा प्रस्ताव का अनुमोदन किया और उनके बाद उसके समर्थन में तैलंग बोले। सभा बहुत सफल रही।

गति को दूर करने का समर्थन किया। तदनुसार मि० कौटनी इलबर्ट ने वह बिल पेश किया, जो इसी कारण इलबर्ट बिल के नाम से मशहूर हुआ। इसमे सभी जिला मजिस्ट्रेटों और सेशन जजों को अंग्रेजों के विरुद्ध मुकदमे सुनने का अधिकार दिया गया साथ ही प्रांतीय सरकारों को इस बात की छूट दी गई कि वे चाहें तो किन्हीं अन्य अधिकारियों को भी जरूरत पड़ने पर ऐसा अधिकार दे सकती हैं। एंग्लोइंडियनों ने इसका घोर विरोध किया (जिसके कारण ही बाद मे उसमे यह शर्त कर दी गई कि भारतीय जिला मजिस्ट्रेट या सेशन जज जब किसी अंग्रेज का मुकदमा सुनेंगे तो फैसला जूरी की मदद से किया जाएगा और जूरियों में बहुत संख्या अंग्रेजों की ही रहेगी)।

20 फरवरी, 1883 के अंक में 'टाइम्स आफ इंडिया' ने उसका विवरण देते हुए उसे 'जनताओं की अत्यधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण सभा' बताया।

इलबर्ट बिल पर उठा तूफान इस बीच बुरी तरह बढ़ता गया। यहाँ तक कहा गया कि हिन्दुस्तानी लोग अंग्रेजों के विरुद्ध शत्रुता की ऐसी तीव्र भावना रखते हैं कि कोई भी अंग्रेज किसी भारतीय जज से निष्पक्ष और शुद्ध न्याय की आशा नहीं कर सकता। बदरुद्दीन तैयबजी ने इस पर तीखा कटाक्ष करते हुए 'टाइम्स आफ इंडिया' (6 मार्च, 1883) में प्रकाशित पत्र में लिखा "अंग्रेजों का यह कहना कि सभी शिक्षित भारतीय उनके खिलाफ हैं क्या स्वयं उन्हीं को अकारण दोषी सिद्ध नहीं करता?" इससे पहले 8 फरवरी, 1883 को, भारत के वयोवृद्ध नेता दादा भाई नौरोजी ने उन्हें लिखा था "कंजरवेटिव अब बारानें रिपन पर आक्रमण शुरू कर दिया है और ऐसा विश्वास करने के कारण हैं कि पार्लियामेंट में भी लार्ड रिपन की नीति को उग्र और शरारत भरी बताकर उन्हें भला बुरा कहा जाएगा। ऐसे वक्त यथासंभव बहुत जोरदार ढंग से हम लार्ड रिपन की नीति का समर्थन करके उनके समर्थकों का बल बढ़ाना चाहिए। उनके पक्ष में हम जोरदार आवाज बुलन्द करनी चाहिए ऐसा मेरा दृढ़ मत है। और मेरे ख्याल में ऐसा करने का यही वक्त है।

इलबर्ट बिल

दादाभाई की सलाह पर पूरी तरह अमल किया गया, जैसा कि 17 फरवरी की सभा से स्पष्ट है। लेकिन जरूरत उससे भी कुछ अधिक करने की थी खासकर इलबर्ट बिल के बारे में क्योंकि अंग्रेजों ने उसको लेकर खुले आम वाइसराय का अपमान किया और मि० इलबर्ट के साथ तो खास तौर पर बुरी तरह पेश आए।

बदरुद्दीन ने इलबर्ट बिल का खुले आम समर्थन किया था फिर भी व्यक्तिगत तौर पर उस पर उनकी सम्मति मांगी गई इससे पता चलता है कि उन्हें कितना आदर की दृष्टि से देखा जाता था। बम्बई सरकार के चीफ सक्रेटरी

ने उन्हें इस संबंध में लिखा था, जिसका 19 अप्रैल 1883 को उन्होंने यह जवाब दिया "सुप्रीम लेजिस्लेटिव कौंसिल में बिल पर जो बहस हुई उसे मैंने ध्यान से देखा है। मेरे खयाल में सबसे पहले तो न्याय प्रणाली में जातिगत भेदभाव का रखा जाना ही अनुचित है। वर्तमान कानून के अंतर्गत संविदाबद्ध प्रशासनिक सेवा में अंग्रेज और भारतीयों के बीच जो अपमानजनक और ईर्ष्या पैदा करने वाला भेदभाव है वह भी मेरे विचार में, सहन नहीं किया जाना चाहिए। साथ ही मेरा यह भी दृढ़ मत है कि अंग्रेजों पर मुकदमे अंग्रेज जजों द्वारा ही सुने जाने की व्यवस्था न्याय प्रणाली पर कलंक है और उससे इसके सिवा और कोई धारणा नहीं बनती कि यह असंगति निष्पक्ष न्याय दान के बजाय अंग्रेज अपराधियों के अपराधों की लीपापोती के लिए ही है।[5]

इल्बर्ट बिल के समर्थन में होने वाले आंदोलन का नेतृत्व करने को बदरुद्दीन, फीरोजशाह और तैलंग की त्रिमूर्ति फिर सामने आई। शेरिफ श्री आर० एन० खोट के आमंत्रण पर 28 अप्रैल 1883 को टाउनहाल में एक सार्वजनिक सभा हुई। सर जमशेदजी जीजीभाई उसके सभापति थे। मुख्य प्रस्ताव पेश करते हुए बदरुद्दीन तैयबजी ने कहा

> मैं समझता हूं कि विभिन्न महत्वपूर्ण अवसरों पर हुई अनेक सभाओं में मैं मौजूद रहा हूं, जिनमें से कुछ तो इस टाउनहाल में ही हुई परंतु आज की सभा में जैसी उपस्थिति मैं देख रहा हूं उससे बड़ी अधिक प्रभावशाली और अधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण कोई सभा इससे पहले मैंने नहीं देखी। (करतलध्वनि) सज्जनो, आज हम इस सभा में उपस्थित हैं जाब्ताफौजदारी कानून (कोड आफ क्रिमिनल प्रोसीजर) में प्रस्तावित संशोधनों पर विचार करने के लिए। शांतिपूर्वक और उत्तेजित हुए बिना इस तरह

---

5 बदरुद्दीन तयबजी लेखक हुसन बी तयबजी (1905) पृष्ठ 135।

हमे उन पर विचार करना है जिमस न तो हमारी प्रतिष्ठा पर आच आए और न दूसरा के प्रति अयाय हा। सज्जना अयत्र इस बार म कसी ही उत्तेजना क्यो न हा उत्तजना के कोई भी कारण हा उनके लिए कोई भी जिम्मेदार हा, हम बम्बइ क नागरिक तुलनात्मक रूप म शान्त वातावरण म ही रहत है। अपन इस सौभाग्य के लिए हम अपन का बधाई भी द सकत ह। सज्जना, मैं उन लागा म स हू जा समझत हैं कि कठोर आवेशपूण या दुवचनयुक्त भाषा का प्रयाग करना इस बात की निशानी है कि हमारा पक्ष ठीक नही है। अपना एसा पक्का विश्वास हान के कारण आज की सभा म मेरे मुह से या किसी अन्य वक्ता द्वारा कोई ऐसी बात कही जाए जिसके किसी शब्द या भाव स महारानी क प्रजाजना मे स किसी भी वग का आघात लगे ता मुझे निश्चय ही बहुत दुख हागा। खासकर उन अग्रेजा के बारे म ता ऐसी कोई बात कभी नही कहनी चाहिए जिनके साथ हम हमेशा शाति और मेल स रहन की कोशिश करनी चाहिए—यहा तक कि सभव हो ता मित्र के रूप म भी। यही नही बल्कि हाल की दुर्भाग्यपूण घटनाओ के हात हुए भी उनके प्रति हम आत्म-सम्मान और प्रशसा की भावना हमेशा रखनी चाहिए और थाडा उनस भयभीत भी रहना चाहिए। लेकिन सज्जना, नरमी की जा सलाह मैं दे रहा हू वह इसलिए नही कि भारत की राजधानी (कलकत्ता) म हुई विशाल सभा म हम सभी भारतवासिया का जो अभूतपूव अपमान किया गया उससे म अप्रभावित हू। किसी भी भारतीय का उससे आघात लगे बिना नही रह सकता और मैं निस्सदेह उसस बडा क्षुब्ध हू।

उत्तेजनापूण वातावरण म सभी नियत्रण से बाहर न हो जाए स्पष्ट ही बदरुद्दीन का इसकी बडी चिन्ता थी। इसलिए उन्हाने यह सब कुछ कहा, और तब मूल विषय पर आए

सज्जनो अब हम इस पर विचार करें कि भारत सरकार के जिन प्रस्तावा न यह उत्तेजना पूण विवाद खडा किया है व आखिर हैं क्या? उनमे इसके सिवा कोई बात नही कि उनके द्वारा भारतीय मजिस्ट्रेटो तथा जजा मे जो सबसे ज्यादा योग्य, बहुत अनुभवी और बहुत विशिष्ट

हैं उनमें से कुछ बहुत ही कम चुने हुए लोगों को अंग्रेजों पर चलाए गए मुकद्दमों को सुनने का बहुत सीमित अधिकार दिया गया है।
(करतलध्वनि)

भारतीय जज अंग्रेजों और उनके रस्म रिवाजों से अनभिज्ञ होते हैं इस तर्क का खण्डन करते हुए बदरुद्दीन ने कहा

इस तरह से कोई सवाल हो ही नहीं सकता कि भारत में किसी भी अंग्रेज को इस देश के निवासियों पर चलाए गए मुकदमों को सुनने का कोई अधिकार नहीं होना चाहिए क्योंकि इससे स्पष्ट और क्या बात है। सच्ची है कि हमारे सर्वोच्च न्यायाधिकारी यहां तक कि हाई कोर्ट के जज भी, भारतीय जनसमुदाय के बारे में बहुत कम जानकारी रखते हैं।

"सज्जनो, मेरे ख्याल में तो कानून की वर्तमान स्थिति न केवल अन्यायपूर्ण है बल्कि हमारे लिए अपमान जनक भी है। (करतलध्वनि) सबसे पहले तो इसीलिए वह अपमानजनक है क्योंकि उसमें हमारे योग्यतम सर्वोच्च और विशिष्टतम न्यायाधिकारियों पर भी हीनता की छाप लगी हुई है। (बारम्बार तालियां) इसलिए भी हमारे लिए वह अपमान जनक है, क्योंकि संविदाबद्ध प्रशासनिक सेवा में वह अंग्रेज और हिन्दुस्तानी के बीच भेदभाव करती है। फिर अंग्रेजों को उसमें इस हद तक श्रेष्ठ माना गया है कि ऊंचे से ऊंचे भारतीय न्यायाधिकारी भी उन्हें एक दिन की कैद या मात्र एक रुपया जुर्माने की सजा भी नहीं दे सकते, जबकि हमारे देशवासियों को इतनी हीन कोटि में रखा गया है कि जो न्यायधिकारी अंग्रेजों के खिलाफ मारपीट की शिकायत के मुकद्दमे तक सुनने के अयोग्य ठहराए गए उन्हीं को न केवल हमारे लाखों देशवासियों के सब तरह के गंभीर से गंभीर मुकदमे सुनने के योग्य माना गया है बल्कि उन्हें दण्ड देने का भी अधिकार दिया गया है। ऐसी हालत में उसे हम अपने लिए अपमानपूर्ण न कहें तो क्या कहें?" (जोरदार करतलध्वनि) इसके बाद वह सीधे असली बात पर आए।

सज्जनो, एंग्लोइंडियन समुदाय का एक बड़ा भाग उस मूलभूत सिद्धांत को पूरी तरह स्वीकार नहीं कर पाता जो घोषित करता है कि भारतवासियों को अपने देश के शासन में उपयुक्त भागीदार बनने का हक है और राजनीतिक व्यवहार में भेदभाव के लिए जाति, वर्ण या धर्म का अंतर कोई उचित कारण नहीं है। सज्जनो, नैतिक न्याय और राजनीतिक बुद्धिमत्ता की दृष्टि से इससे श्रेष्ठ कोई सिद्धान्त नहीं है

सज्जनो, भारत सरकार की न्यायबुद्धि और दृढ़ता में मेरा पक्का विश्वास है और उससे भी अधिक ब्रिटिश पार्लियामेंट और ब्रिटिश जनता की श्रेष्ठ भावना और न्यायबुद्धि में मेरा विश्वास है। अतएव, सज्जनो, इस बिल को पेश किया जाना यदि बुद्धिमत्तापूर्ण और दूरदर्शी कार्य था—जैसा कि मेरे ख्याल में निस्संदेह था—तो इसका स्वीकार किया जाना अब पूर्णतः राजनीतिक आवश्यकता भी हो गई है। (करतलध्वनि)

प्रस्ताव का समर्थन करते हुए फीरोजशाह ने बदरुद्दीन के भाषण पर कहा 'भाषण में जिस योग्यता और वाक्चातुरी से काम लिया गया उतना ही शानदार वह इसलिए भी था कि उसमें जो कुछ कहा गया वह बड़ी शान और नम्रता के साथ।' स्वयं फिरोजशाह का भाषण भी बड़ा प्रभावशाली था। 'टाइम्स आफ इंडिया' (30 अप्रैल 1883) ने लिखा "कम से कम दो-तीन वक्ताओं ने अंग्रेजी भाषा के अपने परिपूर्ण ज्ञान का ऐसा परिचय दिया जो उनके लिए निश्चय ही संतोष की बात है जिनकी दृष्टि में भारत की प्रमुख जातियों के लिए बौद्धिक क्षेत्र में प्रगति की बड़ी संभावना है। आगे उसने यह भी लिखा "निस्संदेह वक्ताओं में से तीन ने अंग्रेजी के कठिन मुहावरों के प्रयोग में वैसी ही क्षमता प्रकट की जैसा कि कभी ग्रीक भाषा के प्रयोग में सिसरो ने और जिस पर उसे गर्व था। लेकिन इससे भी महत्व की बात बम्बई के तीनों प्रमुख नेताओं का एकताबद्ध कार्य था। सर फीरोजशाह मेहता के लेखों और भाषणों के पुस्तकाकार संकलन[6] की भूमिका में

---

6 स्पीचेज एंड राइटिंग्स आफ दि आनरेबल सर फीरोजशाह मेहता संपादक सी० वाई० चिन्तामणि इंडियन प्रेस, प्रयाग।

म श्री दिनशा एदलजी वाचा ने इस सभा को फीरोजशाह मेहता के कार्यकलाप की दूसरी अवस्था का द्योतक बताया है, "जबकि बदरुद्दीन तयबजी, फीरोजशाह मेहता और काशीनाथ त्र्यंबक तलग की तेजस्वी त्रिमूर्ति 28 अप्रैल 1883 के महत्वपूर्ण दिन टाउनहाल के मच पर एकजुट सामने आई और दुनिया को बता दिया कि उच्चशिक्षा प्राप्त सुसस्कृत भारतीय गहरी से गहरी उत्तेजना के समय भी किस प्रकार सयम और चतुराई से विस्फोटक विषयो पर अपने विचार व्यक्त कर सकते है।"

7 दिसबर को वाइसराय ने अग्रेजो के लिए एक रियायत की घोषणा की। वह यह कि अग्रेजो पर चलाए गए मुकदमो की सुनवाई जिला मजिस्ट्रेटो और सेशन जजो तक ही सीमित रहेगी। भारतीयो ने तो इस रियायत का ठीक ही विरोध किया, परतु उग्र पथी अग्रेज इससे भी सतुष्ट नही हुए। इस सबध मे नेताओ से विचार-विनिमय के लिए बदरुद्दीन कलकत्ता गए। 1884 के नए दिन (1 जनवरी को) वह वाइसराय से भी मिले। अग्रेजो के लिए दी गई यह रियायत थी तो निश्चय ही दुर्भाग्यपूर्ण परतु उन्होने इस बात को समझ लिया कि ऐसी रियायत दिए बिना लार्ड रिपन वाइसराय नही बने रह सकते और उनका वाइसराय बने रहना बदरुद्दीन के लिए अधिक महत्वपूर्ण था। अत बम्बई और कलकत्ता के अपने मित्रो को उन्होने आदोलन बन्द कर देने की सलाह दी। समझौते के रूप मे एक रास्ता निकाला गया। इसके अनुसार यह व्यवस्था की गई कि भारतीय जिला मजिस्ट्रेट या सेशन जज जब किसी अग्रेज का मुकदमा सुनेंगे तो फैसला जूरी की मदद से किया जाएगा और जूरियो मे बहुसख्या अग्रेजो की ही रहेगी। इस समझौते के साथ 25 जनवरी 1884 को जाकर बिल पास हुआ। बिल मे इस तरह बहुत काटछाट हो गई फिर भी यह निस्सदेह है कि उसकी स्वीकृति भारतीय आदोलन की स्पष्ट सफलता की सूचक थी।

25 अगस्त, 1883 को बदरुद्दीन ने बम्बई के लोकल बोर्ड बिल तथा डिस्ट्रिक्ट म्युनिसिपल एक्ट (सशोधन) के बारे मे अविस्मरणीय भाषण दिया। गैर सरकारी लोगो के योगदान निरीक्षण और नियत्रण की आवश्यकता,

नामज़दगी की असुविधाएं मतदाताओं की योग्यता सरकारी अधिकारी लोकल बोर्डों के अध्यक्ष बनाए जाने चाहिए या नहीं और नियम तथा उपनियम बनाने के अधिकार इन बोर्डों को होने चाहिए या नहीं—इन सभी विषयों की उन्होंने विस्तार में चर्चा की। पंचायती राज के सन्दर्भ में आज भी इनका उतना ही महत्व है।

स्वायत्त शासन योजना (लोकल सेल्फ गवर्नमेण्ट) की सिफारिश करते हुए बदरुद्दीन ने कहा

मेरे ख्याल में इस बात से कोई इनकार नहीं करेगा कि इससे स्वतन्त्र विचार और समाज सेवा की भावना को प्रोत्साहन मिलेगा लोगों को राजनीतिक शिक्षा मिलेगी प्रतिस्पर्धा पुरुषार्थ और आत्मनिर्भरता की स्वस्थ भावना उत्पन्न होगी इसके अलावा सरकार और गैरसरकारी लोगों को ही नहीं बल्कि अंग्रेज और भारतीयों को भी निकट संपर्क में आने का अवसर मिलेगा। स्थानीय स्वायत्त-शासन से लोगों में अपनी बस्ती या नगर के सुधार करने की अभिरुचि ही नहीं होगी उसके लिए लगे कर भार भी नहीं अखरेगा क्योंकि स्वयं करदाताओं पर ही उस रकम के खर्च की जिम्मेदारी होगी। यह तो हुई जनता के हित की बात परन्तु स्वयं सरकार को भी क्या इससे बहुत बड़ा लाभ नहीं होगा? हजारों योग्य, सच्चे और अनुभवी व्यक्ति देश-सेवा की निःस्वार्थ भावना से प्रेरित होकर—जो सभी सभ्य मनुष्यों में स्वाभाविक तौर पर समान रूप से पाई जाती है—इस काम के लिए आगे आएंगे। उनकी निःस्वार्थ सेवा का जो लाभ सरकार को मिलेगा उसका भला कोई मूल्यांकन किया जा सकता है?

स्थानीय स्वायत्त शासन के विधेयक में जो कमियां थीं उन पर भी उनका ध्यान गया और उन्हें दूर करने के उन्होंने सुझाव दिए। विधेयक में लोकल बोर्डों के निर्माण का जो विधान था उसमें नामजद सदस्यों का औसत (50%) उन्हें बहुत अधिक लगा अतः उसकी आलोचना करते हुए उन्होंने कहा कि तालुका कमेटियों में एक तिहाई और लोकल बोर्डों में एक चौथाई से अधिक

नामजद सदस्य नहीं होने चाहिए।

विधेयक में सिंध में लोकल बोर्डों के चुनाव की ऐसी व्यवस्था रखी गई थी कि जागीरदार, अरबाब, वडेरा मुहम्मद, दहदार, परिओमार, मुखी[7] तथा विविध जातियों के नवरदार आदि ऐसे परंपरागत बड़े लोगों तक ही उनके सदस्य चुनने तथा चुने जाने का अधिकार सीमित रहे जिन्हें कलक्टर समय-समय पर चुनाव के योग्य घोषित करे। बदरुद्दीन ने विधेयक की इस धारा पर आपत्ति करते हुए कहा कि बम्बई के ही समान सिंध में भी चुनाव की व्यवस्था क्यों न रहे, इसका मैं कोई कारण नहीं देखता। इसके अलावा, इस दृष्टि से भी विधेयक को उन्होंने दोषपूर्ण बताया कि मतदाता के लिए व्यवसाय या शिक्षा संबंधी कोई योग्यता नहीं रखी गई थी।

अध्यक्ष और उपाध्यक्ष संबंधी धाराओं पर भी उन्होंने आपत्ति की। आलोचना करते हुए उन्होंने कहा

> मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि स्वायत्त शासन [illegible] सफलता बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करेगी कि इस समस्या [illegible] किस प्रकार किया जाता है। मैं सिद्धांत रूप में कलक्टरों [illegible] लोकल बोर्ड का अध्यक्ष बनाने का विरोधी [illegible] मुझे कोई संदेह नहीं कि उनकी उपस्थिति में [illegible] जाएगी। सामान्यतः तो उनकी उपस्थिति [illegible] प्रभाव ही बोर्ड की हर बैठक में अशोभनीय और [illegible] या फिर बोर्ड के सदस्यों को स्थानीय [illegible] पड़ेगा। इसलिए मेरा अनुरोध है कि [illegible] अध्यक्ष तो गैरसरकारी व्यक्ति ही [illegible]

---

7 इनके शाब्दिक अर्थ हैं भले [illegible] इत्यादि।

मत है कि ये अध्यक्ष सामान्यत स्वयं लोकल बोर्डों यानी उनके सदस्यों द्वारा ही चुने जाने चाहिए। सरकार सिर्फ उन पर अपनी सहमति दे। इसके अलावा बोर्डों को अध्यक्ष को हटाने का अधिकार भी होना चाहिए जिसके लिए मेरा सुझाव है कि अध्यक्ष को हटाने के स्पष्ट प्रयोजन से बुलाई गई बोर्ड की विशेष बैठक में सदस्यों के दो तिहाई बहुमत से अध्यक्ष को हटाने का निश्चय हो जाने पर ही अध्यक्ष को हटाने की व्यवस्था होनी चाहिए।

लोकल बोर्डों का काम क्या हो इसके बारे में बदरुद्दीन ने कहा

'अच्छे फार्म बनाकर उनका ठीक संचालन, बाहर से मंगाये पौधों को स्थानीय जलवायु के अनुकूल बनाना, विविध प्रकार के बीजों की छटनी कर उनका वितरण करना, मत्स्य पालन, घोड़ों तथा अन्य पशुओं की नस्ल सुधारना और दुर्भिक्ष तथा अभाव के समय सहायता-कार्य विधेयक की धारा 30 की उपधारा 'ट' और 'ठ' में लोकल बोर्डों के लिए अनिवार्य रखे गए हैं। मेरे विचार में इन्हें अनिवार्य न रख लोकल बोर्डों की इच्छा पर रखना चाहिए, क्योंकि ये काम ऐसे हैं जो स्थानीय की बजाय सार्वदेशिक हैं। लोकल बोर्डों के पास धनाभाव को देखते हुए ऐसे कामों को करने के लिए उन्हें बाध्य करना मेरे ख्याल में सर्वथा अनुचित है जिन्हें प्रान्तीय या सार्वदेशिक आय से करना वहां उपयुक्त होगा।

लेकिन बोर्डों को कुछ मामलों में कम से कम केन्द्रीय सरकार के मातहत या नियंत्रण में रखने पर बदरुद्दीन ने कहा

'शिक्षा तथा अन्य ऐसे मामलों में जिनमें एकसी नीति बनी रहनी चाहिए लोकल बोर्डों पर सरकारी निगरानी रखना ठीक होगा, परन्तु छोटे मोटे मामलों में हस्तक्षेप न करने की नीति पर विशेष ध्यान देना चाहिए। उदाहरण के लिए जमीन को तीन साल के लिए पट्टे पर देने के लिए कमिश्नर की मंजूरी की जो व्यवस्था रखी गई है वह निश्चय ही ऐसा मामला है जिसमें लोकल बोर्डों पर ही विश्वास करना ठीक होगा।'

स्थानीय स्वायत्तता म यदस्ड्डीन का अडिग विश्वास था, जसा कि उनके इस कथन स स्पष्ट है

"अपन कार्यों म हस्तक्षप के विरुद्ध लाकल बार्डों का गवनर इन-कौंसिल मे अपील करन का अधिकार हाना चाहिए। इसके अलावा स्थानीय अधिकारियो का यह स्पष्ट कर दना चाहिए कि सिद्धात रूप म सावधानी क तौर पर नियत्रण आवश्यक है परन्तु बहुत आवश्यक हुए बिना हस्तक्षप नही किया जाएगा और एसा करना भी पडा ता स्वय ही लाकल बार्डों की इच्छा और भावना का पूरा ध्यान रखकर ही एसा करना ठीक हागा।

"अब मैं विधेयक के उस भाग पर आता हू जा स्थानीय स्वायत्त-शासन की याजना क लिए ही बहुत महत्व का नही है, बल्कि जिसका सबध इस कौंसिल क काय और दायित्व तथा इस प्रात की कानून व्यवस्था क महत्वपूर्ण सिद्धान्ता से भी है।

मरा आशय विधेयक का उन धाराओ स है जिनम जान-बूझकर कुछ विषया का छाड दिया गया है और उनक बार म मनमान नियम बनान के व्यापक अधिकार सरकार का दिए गए हैं। मैं इस बात से इकार नही करता कि सरकार का एस कुछ अधिकार देना अक्सर वाछनीय और कभी-कभी आवश्यक भी हाता है, परन्तु व सीमित होन चाहिए। उन्हें या ता विस्तार की एसी मामूली बाता तक ही सीमित रखना चाहिए जा परिस्थितिवश बदलती रहती हैं, या फिर विधान सभा स स्वीकृत कानून का अमल म लान तक। कानून सबधी नियम तथा उपनियम बनान का काम सरकार की मर्जी पर नही छोडना चाहिए। यह तो स्वय विधान सभा का ही काम है कि वह जा कानून बनाए वह यथासभव पूण हा, किसी अन्य सत्ता का उस अपना यह काम नही सौंपना चाहिए और एसे मामला म ता कभी नही जिनम विस्तार की बाता के बजाय सिद्धान्त का प्रश्न हा। इसम शक नही कि ऐस विषया पर निणय करन म कौंसिल (विधानसभा) के व्यक्तिगत सदस्या स गवनर इन कौंसिल

अधिक अच्छी स्थिति मे होता है जिनम स्थानीय परिस्थितियो की बारीकी और सावधानी से जाच करनी हो, फिर भी इस कौंसिल म सार्वजनिक स्तर पर होने वाला स्वतत्र विचार कही ज्यादा लाभप्रद है। इसलिए सभी महत्वपूर्ण मामलो पर, फिर वे विस्तार की बातें हो या सिद्धान्तगत, यथासभव यही विचार कर निर्णय होना चाहिए।

"अभी सामान्य रूप म जो कुछ मैंने कहा है, मुझे लगता है विचाराधीन विषय मे उसका विशेष महत्व है। विधेयक म नियम तथा उपनियम बनाने के इतने व्यापक पूर्ण और असीम अधिकार सरकार को दिए गए हैं कि उनका उपयोग कर वह विधेयक के उद्देश्य को निष्फल कर सकती है। उदाहरण के लिए लोकल बोर्ड स बिल की धारा 8 को ही लीजिए। उसम गवनर इन कौंसिल को इस बात का पूर्ण अधिकार दिया गया है कि प्रात के जिस भाग को वह चाहे स्थानीय स्वायत्त शासन क लाभ से वचित रख सकती है। मैं इसस इकार नहीं करता कि कुछ स्थान ऐस हो सकत है, या सभव है हो भी जो स्वायत्त शासन क योग्य न हो, न मैं यह कहना हू कि गवनर महोदय पूना अहमदाबाद या सूरत जस उन्नत जिलो को स्वायत्तशासन स वचित रखन की सोचेंगे। लेकिन वे एसा करना चाहें तो विधयक म उन्ह एसा करन म रोकन का कोई विधान नही है। इसलिए गवनर न कौंसिल के प्रति पूर्ण सम्मान और उनके प्रबुद्ध शासन तथा जनसाधारण के प्रति उनकी निश्चित सहानुभूति म पूर्ण विश्वास रखते हुए अपन एसे दृढ विश्वास के साथ ही गवनर महोदय इस प्रान्त म स्थानीय स्वायत्त शासन की योजना को पूरा मौका दना चाहत है, फिर भी मैं इस तरह की कोई धारा बिल म रखन का कडा विरोध करता हू क्योकि मेर विचार म यह सिद्धान्तत गलत है। वतमान गवनर महोदय के जो विचार हैं उन्हें हम जानत ह और उन पर विश्वास भी कर सकत है परतु इसका कोई निश्चय नहो कि उनके बाद जो गवनर बनेगा वह कसा होगा और उसके विचार क्या होगे। यह विषय जनता की दृष्टि स इतना महत्वपूर्ण है कि इसक बारे म सदेह नही रहन दिया जा सकता। इसलिए मेरे विचार म यह कौंसिल का स्पष्ट कतव्य है, फिर वह कितना

ही कष्टसाध्य और अप्रिय क्यो न हो, कि इस सबध म वह इस कानून मे यथासभव कोई कमी न रहने दे और स्वय यह निणय करने म न हिच किचाए कि कौन से एसे पिछडे हुए जिले है जिन्हें स्थानीय स्वायत्त शासन के लाभ से वचित रखना चाहिए। ऐसे पिछडे हुए जिलो की सूची विधेयक के साथ सबद्ध कर देना चाहिए और गवनर इन-कौसिल को यह अधिकार दना चाहिए कि जब यह पिछडे हुए जिले स्थानीय स्वायत्तशासन के उपयुक्त मालूम पडे उनमे उसे लागू कर दिया जाय।'

विधेयक के प्रस्तावक जे०वी० पीन न कहा कि ऐसी व्यवस्था इस विधेयक मे है।

बदरुद्दीन ने आगे कहा

'इससे मेरे ख्याल म, जनता का ध्यान इस ओर आकर्षित हागा और पिछडे हुए जिला के लागो का इसके लिए सरकार से आवदन करन का अवसर मिलेगा। यही बात धारा 18 की उपधारा 3 पर लागू हाती है जिसमे मताधिकार के योग्य घाषित करने का अधिकार सरकार को दिया गया है। मेरी समझ म यह विस्तार की बात बिल्कुल नहीं है बल्कि सिद्धात का मामला है और जैसा मैं कह चुका हू मताधिकार के लिए शिक्षा या व्यवसाय अथवा सपत्ति सबधी जो भी शत रखनी हा वह विधेयक मे ही स्पष्ट कर दनी चाहिए।

'धारा 66 की उपधारा अ का मैं जोरदार विराध करता हू जिसम जिला और ताल्लुका बोर्डो की सदस्य सख्या तथा उसम निर्वाचित और सरकार द्वारा नामजद सदस्या का अनुपात निश्चित करने का अधिकार गवनर इन कौसिल का दिया गया है। मेरे विचार मे स्वायत्त शासन की याजना का यह सभवत सबसे आवश्यक और महत्वपूण भाग है क्योकि उसकी सफलता पूण रूप से इसी बात पर निभर है कि बाड का निर्माण कैसे हाता है और उसकी अध्यक्षता कौन करता है। इसलिए मेरा निश्चित मत है कि इस पर कौसिल म ही विचार करके निणय किया जाना

चाहिए । गवनर इन कौंसिल क निणय पर इस छोड दिया गया ता उनका जो निणय हागा वह जनता का दृष्टिकाण जान बिना और उस पर सावजनिक चचा के बिना ही किया जाएगा ।

' विधेयक के अत्यधिक महत्वपूण विषया पर मैं आपका अपना विचार बता चुका हू । निस्सन्देह कुछ अ य बातें भी विचारणीय हैं । परन्तु वे ऐसी ह जिन पर (प्रवर समिति) म विचार किया जा सकता है । उनके बार म अभी मैं ज्यादा कुछ न कहूगा परन्तु भाषण समाप्त करन स पूव यह आशा अवश्य करूगा कि जब विधेयक में वस्तत महान बुद्धिमता पूण और उदार नीति के सभी मूलतत्व मौजूद ह ता सरकार का बुद्धिमतापूण और समयानुसार उपयुक्त रियायत दे कर इस एसा श्रष्ठ बना देना चाहिए जिससे यह सरकार की बुद्धिमानी का स्थायी स्मारक और इस प्रान्त क निवासिया के लिए स्थायी वरदान बन जाए ।

विधेयक प्रवर समिति क पास भेजा गया । सवश्री बदरुद्दीन तयबजी रावसाहब वी० एन० माण्डलिक, राव बहादुर क० वी० रास्ती मजर जनरल मेरिमन और प्रस्तावक जे०बी० पील उसके सदस्य थ । माण्डलिक किसी कारण से प्रवर-समिति मे उपस्थित न हा सके, इसलिए भारतीय दृष्टिकोण प्रस्तुत करन का भार मुख्यत बदरुद्दीन के ऊपर ही रहा ।

प्रवर समिति की रिपोट पर विचार करन के लिए 9 जनवरी 1884 का लेजिस्लेटिव कौंसिल का फिर से अधिवेशन हुआ । शिष्टाचार का जसा उस समय चलन था, गवनर न प्रवर समिति और खास कर बदरुद्दीन तयबजी की विधेयक पर परिश्रमपूण अध्ययन के लिए सराहना की । स्वय विधेयक के प्रस्तावक पील न भी कहा "इस काम म हमे बदरुद्दीन तयबजी की मदद का सुअवसर मिला जिन्हान विभिन्न कठिन प्रश्ना का कष्ट उठाकर भी पूण अध्ययन किया । उन्हान जो निष्पक्ष और स्पष्ट मत व्यक्त किए उनका हम आदर करना हा चाहिए ।"

बहस का समापन करत हुए गवनर न भी इन शब्दो म बदरुद्दीन की भूरि

भूरि सराहना की 'माननीय बदरुद्दीन तैयबजी का भाषण सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। भाषण ऐसा बढ़िया था कि और भी अधिक श्रोता उसे सुन पाते तो क्या ही अच्छा होता। भाषण में उन्होंने जिस व्यापक दृष्टिकोण, पूर्ण स्पष्टता, विचार स्वातन्त्र्य और साथ ही सार्वजनिक भावना से काम लिया वह मेरे विचार में इस कौंसिल के लिए बहुत श्रेय की बात है।'[8]

बदरुद्दीन तैयबजी ने स्वास्थ्य बिगड़ जाने पर, स्वास्थ्यलाभ के लिए यूरोप जाते समय 1886 में लेजिस्लेटिव कौंसिल की सदस्यता से त्यागपत्र दिया। तब (29 अक्तूबर, 1886 को) तत्कालीन गवर्नर लार्ड रे ने उन्हें लिखा था 'कौंसिल में आपके न रहने का मुझे बड़ा अफसोस है। लेकिन आप चाहे कौंसिल के सदस्य न रहें, आपके परामर्श को मैं हमेशा कद्र करूंगा। आप उस प्रतिनिधित्व से कभी वंचित नहीं हो सकते जो जनता के विश्वास द्वारा आपने प्राप्त किया है।'

इंडियन सिविल सर्विस के लिए भारतीय उम्मीदवार

बदरुद्दीन तैयबजी के सुशिक्षित देशवासियों को एक अन्य बात ने भी बहुत क्षुब्ध कर रखा था। वह थी लन्दन में होने वाली इंडियन सिविल सर्विस (आइ० सी०एस०) के इम्तिहान में शरीक होने वाले भारतीय उम्मीदवारों की आयु 18 वर्ष तक सीमित कर दिया जाना। शुरू में यह आयु 22 वर्ष तक सीमित थी फिर घटा कर 21 वर्ष की गई और इसके बाद 19। इसका यह नतीजा हुआ कि रस्सलेशन काल के आठ वर्षों में कुल 28 भारतीय ही आई० सी० एस० की परीक्षा में बैठ पाए और उनमें भी पास सिर्फ एक ही हुआ। लार्ड रिपन को इस बात का श्रेय है कि उन्होंने इस शिकायत को दूर करने का प्रयत्न किया। उन्होंने इस संबंध में बदरुद्दीन के विचार आमंत्रित किए, जिन्होंने इस पर विस्तार से एक ज्ञापन तैयार किया और वाइसराय से भारत मंत्री पर इस बात के लिए दबाव डालने का अनुरोध किया कि यह आयु सीमा बढ़ा कर कम से कम 21 वर्ष कर दी जाए। लार्ड रिपन ने इस सुझाव से सहमत होकर भारत मंत्री को ऐसा करने के लिए लिखा भी, परन्तु भारत मंत्री ने

---

8 बम्बई गवर्नर की लेजिस्लेटिव कौंसिल की कारवाई जिल्द 23 पृष्ठ 40

ऐसा करने में असमर्थता व्यक्त की। तब बदरुद्दीन की प्रेरणा पर अंजुमन-ए इस्लाम ने अन्य भारतीय प्रजाजनों की ही तरह सरकार को इस संबंध में प्रार्थनापत्र भेजा और (टाइम्स ऑफ इंडिया 1 सितंबर 1894 के अनुसार) 30 अगस्त 1894 को फ्रामजी कावसजी इंस्टीट्यूट में बंबई के भारतीय निवासियों की एक सभा जमशेदजी जीजीभाई के सभापतित्व में हुई। इसमें मुख्य भाषण बदरुद्दीन तयबजी ने दिया जिसमें उन्होंने कहा 'सरकार एक ओर तो घोषणा करती है कि भारतवासी सभी सरकारी पद पा सकते हैं और दूसरी ओर उनकी नियुक्ति के ऐसे नियम बनाए जाते हैं जिससे 100 में 99 उपयुक्त उम्मीदवार भी अंग्रेजी प्रतिस्पर्धियों से मुकाबले का प्रयत्न नहीं कर सकते।

"यह मजाक नहीं तो क्या है? मैं अपने उन यूरोपीय दोस्तों से जो इस व्यवस्था का समर्थन करते हैं यह पूछना चाहूंगा कि जो 200 या 300 उम्मीदवार इस परीक्षा में हर साल बैठते हैं उनमें से कितने ऐसा करें यदि परीक्षा बजाय लंदन के कलकत्ते में हो? मैं यह नहीं कहता कि परीक्षा सिर्फ भारत में ही हो, यद्यपि यह उचित ही होगा क्योंकि परीक्षा का उद्देश्य इंग्लैंड की नहीं बल्कि भारत की प्रशासनिक सेवा के लिए लोगों को चुनना है।

बदरुद्दीन ने विलायत में शिक्षा प्राप्त करने के लाभ बताए और इसका भी जिक्र किया कि वहां के स्वतंत्र राजनीतिक वातावरण का क्या प्रभाव पड़ता है। लेकिन इसके आगे जो कुछ उन्होंने कहा वह उनकी विशेषता थी। उन्होंने कहा 'हमारी अपनी भाषा, साहित्य इतिहास और धर्म है। यदि हममें मानवता की भावना साधारण रूप से भी है तो हम अवश्य इसकी इच्छा होगी कि हमारे बच्चों को इन विषयों का कुछ ज्ञान हो। हम इस बात को सहन नहीं कर सकते कि हमारे बच्चे अपनी मातृभाषा अथवा उत्कृष्ट साहित्य से बिलकुल ही अनभिज्ञ रह जाएं। हमारा साहित्य महान और गौरवपूर्ण रहा है।' उन्होंने फिर कहा "मुसलमान होने के नाते और अपने समुदाय के लोगों की भावनाओं और विचारों का ध्यान रखते हुए मैं उन दूसरे मुसलमानों के साथ सहानुभूति अवश्य रखता हूं जिनके मन में उन मुसलमान युवकों के लिए घृणा की भावना है जो अपने को सुशिक्षित कहते हैं परन्तु

जिन्हें अपने धर्म और उर्दू और फारसी साहित्य की अच्छी जानकारी है। बदरुद्दीन और उनके साथियों में सम्भाव की भावना ऐसी थी कि उनके इन वाक्यों पर उन्मुक्त हर्षध्वनि हुई।

बदरुद्दीन ने बताया कि कोई भारतीय अपने लड़के को तब तक किसी इंगलिश स्कूल में नहीं भेज सकता जब तक कम से कम वह 13 या 14 वर्ष का न हो जाए और वहां जब तक वह 5 या 6 वर्ष शिक्षा प्राप्त न करले तब तक अपने अंग्रेज प्रतिद्वंद्वियों का मुकाबला नहीं कर सकता। उनकी राय में किसी भारतीय लड़के के लिए इंग्लैण्ड जाने की सही उम्र 16 वर्ष हो सकती है जबकि मैट्रिक की परीक्षा पास करके वह अपने देश और देशवासियों के बारे में कुछ जानकारी प्राप्त कर लेता है। उन्होंने कहा, 'हम चाहते हैं कि आई० सी० एस० के अधिकारी सच्चे अर्थ में भारतीय प्रशासनिक अधिकारी हों यानी यही नहीं कि उनके माता पिता भारतीय हों बल्कि उन्हें अपने देश की अच्छी जानकारी होनी चाहिए और अपने देशवासियों के प्रति सहानुभूति की भावना उनमें सक्रिय रहनी चाहिए। ऐसे व्यक्तियों की हमें आवश्यकता नहीं जो 10 या 12 वर्ष की अल्पायु में अपने देश से चले जाने के कारण अपने देशवासियों के आचार विचार रीति-रिवाज भाषा साहित्य, इतिहास और धर्म से बिल्कुल अनजान रहकर इंग्लैंड में इसके सिवा कुछ नहीं सीखते कि पश्चिम की हर बात की अत्यधिक सराहना करें और भारत की हर चीज से निराधार घृणा। लेकिन सज्जनो अपने बच्चों को अल्पायु में ही इंग्लैण्ड भेजने के लिए हम बाध्य हों, जैसा कि आई० सी० एस० परीक्षा के वर्तमान नियमों के लागू रहते उन्हें उत्तीर्ण होने का अवसर देने के लिए आवश्यक है तो इसके सिवा और कोई परिणाम हो ही नहीं सकता।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है इन प्रयत्नों का कोई परिणाम नहीं निकला लेकिन जब उनके पुत्र मोहसिन ने कोई उन्नीस वर्ष की आयु में ही 1885 में ही न केवल यह परीक्षा पास करली बल्कि उत्तीर्ण विद्यार्थियों में सर्वोच्च स्थान भी प्राप्त किया तो बदरुद्दीन को कुछ तसल्ली जरूर हुई। मोहसिन तयबजी भारत में पहले मुसलमान आइ० सी० एस० अधिकारी थे।

जिन लार्ड रिपन ने अपनी उदारता तथा दूरदर्शिता से भारतीयों के हृदय में घर कर लिया था उनकी सेवा निवृत्ति का अब समय आ गया था। 29 नवंबर, 1884 को उनके अभिनंदन में एक विशाल सभा टाउनहाल में हुई जिसमें परंपरानुसार बदरुद्दीन तयबजी ने ही मुख्य प्रस्ताव पेश किया। इस अवसर पर दिये भाषण में उन्होंने लार्ड रिपन की सेवाओं की सराहना तो की ही साथ ही, भारत के भविष्य की अपनी कल्पना पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा "हमारा भारत देश एक बड़ा समुदाय है जिसमें एक हजार एक जातियां रहती हैं।" इस तरह विविधता में एकता पर उन्होंने जोर दिया और फिर भारतीय एकता में ही भारत के भाग्योदय की व्यावहारिक कल्पना प्रस्तुत करके कहा "हमें आशा करनी चाहिए कि लार्ड रिपन का उदाहरण भावी नेताओं को उनके पदानुसरण की प्रेरणा देगा और उनकी नीति पर बराबर चलते रहने से बिखरी हुई शक्तियां एकत्र होकर अंततोगत्वा भारत एक महान एवं संयुक्त साम्राज्य का रूप ग्रहण करेगा।

6

वाम्बे प्रेसिडेंसी एसोसिएशन

बड-बड सावजनिक प्रश्न जसा कि हम देख चुके है फ्रामजी कावसजी इन्स्टी
च्यूट म हुई बडी बडी सभाओ म ही सामने आये। बदरुद्दीन तयबजी उन
पर मुख्य प्रस्ताव पेश करत और फिराजशाह महता तथा काशीनाथ तलग
योग्यतापूवक उनका समथन करत थ। इस तरह बम्बई का सावजनिक जीवन
प्रस्तुत इन तीना म केद्रित हो गया था। फिर भी इन्ह यह अनुभव हुये
बिना न रहा कि राष्ट्रीय कार्यों को दिशा व्यवस्था और गति दने के लिए
किसी सस्था का होना आवश्यक है।

बाम्बे एसोसिएशन नाम की एक सस्था थी तो अवश्य जिसकी 1852 म
नौरोजी फरदूनजी ने स्थापना की थी, परन्तु वह निष्क्रिय हो चुकी थी। ईस्ट
इडिया एसोसियशन नाम की एक सस्था भी थी परतु वह अग्रजा की थी।
दादाभाई नौरोजी न 1869 म ईस्ट इडिया एसोसियेशन की बम्बई शाखा के रूप
म या तो एक स्वतन्त्र सस्था ही बनाई थी परतु शाखा रूप म होने क कारण
मुख्य सस्था स सवथा भिन्न वह नहीं हो सकती थी और उसे कुछ समय तक
और वह भी सीमित सफलता मिली। जसा कि सर फीरोजशाह महता न
बताया है[1] 1884 म जब श्री तलग और मैंने यह निश्चय कर लिया कि
हमारे प्रान्त म एक सक्रिय राजनीतिक सगठन का होना जरूरी है तो तीसरी

---

1 सम अनपबलिश्ड एड लेटेस्ट स्पीचेज एड राइटिंग्स आफ सर फीरोजशाह
…ता 1918 सम्पादक ज० आर० बी० जीजीभाई बम्बई। पृष्ठ 185।

जाति के प्रतिनिधि होने के नाते श्री बदरुद्दीन से हमने उसके निर्माण और सगठन मे हमारा साथ देने को कहा। वदरुद्दीन की वकालत तब चमकनी शुरु ही हुई थी और कमाई बढने का श्रीगणेश हो चुका था फिर भी उन्होने इसमे हमारा साथ देने म कोई सकोच नही किया।'

तीनो मित्रो ने इसके लिए फ्रामजी कावसजी इस्टीच्यूट म एक सावजनिक सभा का आयोजन किया, जो 31 जनवरी 1885 को सर जमशेदजी जीजी भाई के सभापतित्व म हुई। सस्था की स्थापना का प्रस्ताव पश करते हुए (2 फरवरी, 1885 के 'टाइम्स आफ इडिया' के अनुसार) वदरुद्दीन तयवजी ने कहा "सज्जनो, मैं यहा यह प्रस्ताव पश करने के लिए उपस्थित हुआ हू कि देश के सार्वजनिक हितो के प्रतिपादन एव समथन के लिये एक राजनीतिक सस्था की स्थापना की जाय। राजनीतिक जीवन के विकास के साथ साथ व्यक्तियो की ही तरह राष्ट्रो मे भी नई-नई आकाक्षाए उत्पन्न होती हैं। उनको मूतरूप देने के लिये, मेरे विचार म किसी सस्था का होना आवश्यक है, जो राष्ट्रीय आकाक्षाओ को ध्यान मे रखे और उन्हें उचित दिशा म आगे बढाये।

देश के हितो का ध्यान रखने के लिये सुसगठित, सुदृढ और असदिग्ध राष्ट्रीय सस्था की आवश्यकता का प्रतिपादन जारी रखते हुये बदरुद्दीन ने बताया कि ईस्ट इडिया एसोसिएशन की बम्बई शाखा ने यद्यपि देशवासियो की अच्छी सेवा की है परन्तु उसकी स्थापना देश की स्वतन्त्र सस्था के बजाय इस नाम की मूल सस्था की शाखा के ही रूप मे हुई थी। बाम्बे एसोसियेशन के खतम होने स जो शून्यता आई थी उसे दूर करने का अस्थायी काय तो उसने जरूर किया परन्तु अब हम एक ऐसी राजनीतिक सस्था की आवश्यकता है जिसे 'सचमुच राष्ट्रीय सस्था' कहा जा सके और स्थायी आधार पर जिसकी स्थापना हो। उन्होने यह आशा भी प्रकट की कि इस तरह की जो सस्था हम बनायेंगे वह हमारे राष्ट्रीय स्वत्वो एव स्वतन्त्रता की सुदृढ भित्ति-ही सिद्ध नही होगी, बल्कि साथ साथ हमारे देश के शासको के लिये भी मित्रतापूण पथ प्रदशन का काम करेगी।'

नौरोजी फरदूनजी ने प्रस्ताव का अनुमोदन किया और तलग तथा फीरोज-

शाह ने भी उसके समर्थन में भाषण दिये। इसके बाद करतलध्वनि के बीच प्रस्ताव स्वीकृत हुआ और सर जमशेदजी जीजीभाई की अध्यक्षता में बाम्बे प्रेसिडेंसी एसोसियेशन की स्थापना हुई। बदरुद्दीन उसकी कार्यकारिणी के प्रधान नियुक्त हुये और फीरोजशाह, तैलंग तथा दिनशा एदलजी वाचा मन्त्री बनाये गये।

सर एच० पी० मोदी ने फीरोजशाह की जो जीवनी लिखी है उसमें बताया है कि उस समय "सभी सार्वजनिक आन्दोलनों का नेतृत्व तयबजी, तैलंग और फीरोजशाह ही करते थे। निस्सन्देह वही, जैसी कि आशा थी, इस एसोसियेशन के भी सर्वेसर्वा थे। बम्बई के तत्कालीन गवर्नर लार्ड हैरिस-को शायद यह अच्छा नहीं लगा। तभी इसके एक दशक बाद, गवर्नरी से सेवानिवृत्त होने के उपरान्त "तथाकथित जो बाम्बे प्रेसिडेंसी एसोसिएशन कहलाती है" इन शब्दों का प्रयोग कर उन्होंने अपनी कटाक्षपूर्ण भावना व्यक्त की।

एसोसिएशन की पहली महत्वपूर्ण बैठक 29 सितम्बर, 1885 को मन्त्री की उस रिपोर्ट पर विचार करने लिये हुई जिसमें सुझाया गया था कि ब्रिटेन में आम चुनाव होने से पहले ब्रिटिश मतदाताओं को भारतीय दृष्टिकोण से अवगत कराने का प्रयत्न करना चाहिए।

बदरुद्दीन ने इस बात पर खेद व्यक्त किया कि उन्नीसवीं सदी के अंत में भी ब्रिटिश पार्लियामेंट में हमारे प्रतिनिधित्व का सर्वथा अभाव है। अगले तीन महीने सम्भवतः प्रचण्ड राजनीतिक प्रतिस्पर्धा के होंगे, परन्तु "चुनाव में या चुनाव के परिणामों पर सीधा असर डालने में हम सर्वथा असमर्थ हैं जब कि कोई विचारशील व्यक्ति इससे इन्कार नहीं कर सकता कि इस चुनाव के परिणाम का हमारे ऊपर बहुत असर पड़ेगा। ब्रिटिश पार्लियामेंट में हमारा कोई प्रतिनिधि नहीं है, लेकिन ब्रिटिश मतदाता अपने जो प्रतिनिधि चुनेंगे उसी पर हमारा भाग्य निर्भर करेगा।" फिर भी इस बात पर उन्होंने सन्तोष व्यक्त किया कि "पार्लियामेंट में चाहे हमारा सीधा प्रतिनिधित्व न हो परन्तु हमारे पास ऐसे साधनों का सर्वथा अभाव नहीं जिनके द्वारा हम अपने विचार तथा

"इस यूनियन मे दिलचस्पी रखने वाले लोग विचार विनिमय कर अधिकृत रूप से ऐसा सगठन बनायें जिसमे सामान्यत सबकी सहमति हो।" इस सम्मेलन मे प्रतिनिधित्व के लिए कराची, अहमदाबाद, सूरत, बम्बई, पूना, मद्रास, कलकत्ता बनारस (अब वाराणसी), प्रयाग लखनऊ, आगरा, और लाहौर मे स्थानीय निर्वाचन-समितिया बनाई गइ। बाम्बे प्रेसिडेंसी एसोसिएशन ने 19 दिसबर, 1885 को एक प्रस्ताव स्वीकार कर ह्यूम के प्रयत्ना की सराहना की और प्रस्तावित इडियन नेशनल यूनियन का प्रथम अधिवेशन बम्बइ मे करने का अनुरोध कर उसकी व्यवस्था का भार वहन करने की सहमति प्रकट की। फलत पूर्वनिश्चय के विरुद्ध पूना के बजाय बम्बई मे 27 दिसबर 1885 का गोवालिया टक स्थित गोकुलदास तेजपाल सस्कृत कालेज और बार्डिगहाउस म यह सम्मेलन हुआ। इसी ने इडियन नेशनल काग्रेस का रूप लिया, जिसके श्री व्योमकेश बनर्जी सवप्रथम सभापति निर्वाचित हुए।

बदरुद्दीन, कमरुद्दीन रहीमतुल्ला सयानी और अब्दुल्ला मेहरअली धरमसी भी बाम्बे प्रेसिडेंसी एसोसिएशन द्वारा इसके लिए प्रतिनिधि चुने गय थे, परतु दुर्भाग्यवश खभात के नवाब के जरूरी बुलावे पर बदरुद्दीन और कमरुद्दीन का वकालत के काम स वहा चले जाना पडा। नवाब इनके पारिवारिक मित्र थे। घटना भी साधारण नही थी। दीवान के साथ मार-पीट हुई थी और इस बात की पूरी आशका थी कि इस मामले को लेकर ब्रिटिश शासन कही नवाब की हुकूमत का ही खात्मा न कर दे।[2] काग्रेस के दुश्चितका को इससे यह गलतफहमी फलान का अवसर मिल गया कि काग्रेस को मुसलमाना का समथन प्राप्त नही है, जबकि एसी कोई बात निश्चय ही नही थी। ज्या ही 7 अप्रेल, 1886 का प्रेसिडेंसी एसोसिएशन की प्रथम वार्षिक आम सभा हुई, बदरुद्दीन ने इस बात का खण्डन किया। उन्हान कहा अपनी जाति की शिकायतें सरकार तक पहुचाने और उसकी उन्नति के उपाया की प्रार्थना करन क लिए मुसलमाना की अपनी सस्था अजुमन-ए इस्लाम है,

---

2 बदरुद्दीन तयबजी लेखक हुसेन बी० तयबजी। पृष्ठ 176

7

राष्ट्रीय आन्दोलन मे

कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन के तुरंत बाद उसके सभापति डब्ल्यू० सी० बनर्जी ने बदरुद्दीन को पत्र लिखा।[1] 1 दिसम्बर, 1886 को लिखे इस पत्र मे उन्होने कलकत्ता मे आयोजित कांग्रेस के द्वितीय अधिवेशन मे शामिल होने के लिए बदरुद्दीन को आमन्त्रित किया। 'गत वर्ष आपकी अनुपस्थिति से हम सबको बडी निराशा हुई," यह बताते हुए उन्होने लिखा, "आप उसमे शामिल हो यह तो बहुत ज़रूरी है ही परन्तु यदि सभी प्रतिनिधि सहमत हो—बंगाल और बम्बई के तो सहमति प्रकट कर भी चुके है—तो यह और भी अच्छी बात होगी कि आप ही उसका सभापतित्व करें। हमारे बंगाली मुसलमान मित्रो का रुख यदि कांग्रेस के प्रति प्रतिकूल न होता तो शायद मै आपसे इतना आग्रह न भी करता। ऐसी बात नही कि उनके अनुकूल रुख से आपकी अनुपस्थिति की क्षतिपूर्ति हो जाती, परन्तु यह जरूर है कि उस हालत मे हमे विशेष हानि नही होती और जो कुछ होती भी उसे सहन करने की हममे क्षमता होती।"

बदरुद्दीन का स्वास्थ्य इन दिनो ठीक नही चल रहा था इसलिए इस उच्च सम्मान को वह स्वीकार नही कर सके। स्वास्थ्य सुधार के लिए वह इंगलैड चले गये थे। 1886 के दिसम्बर मे कलकत्ता मे हुए कांग्रेस के द्वितीय अधिवेशन मे वह शामिल नही हो सके जिसका सभापतित्व दादाभाई नौरोजी ने किया।

---

1 बदरुद्दीन तयबजी लेखक हुसन बी० तयबजी। पृष्ठ 178

अगले साल, व्योमकेश बनर्जी की ही तरह, दादाभाई नौरोजी ने 20 अक्तूबर, 1887 के अपने पत्र में बदरुद्दीन को लिखा कि लोगों की यह आम राय है कि वह मद्रास में होने वाले कांग्रेस के आगामी अधिवेशन का सभापतित्व करें। दादाभाई नौरोजी ने लिखा, कांग्रेस नेताओं का विचार है कि बदरुद्दीन को 'उसका सभापति पद स्वीकार करने के लिए राजी किया जा सके तो कांग्रेस के पिछले अधिवेशन से हम कहीं आगे बढ़ेंगे और उन्हें पूरी आशा है कि बदरुद्दीन देश सेवा के लिए सभापति पद अवश्य स्वीकार करेंगे।'

इसी समय एकमात्र मुसलमानों का अपना संगठन बनाने के प्रयत्न भी हो रहे थे। बदरुद्दीन को कलकत्ता की सेंट्रल नेशनल मोहम्मडन एसोसिएशन के मंत्री सैयद अमीर अली का पत्र इस सम्बन्ध में मिला। 28 नवम्बर 1887 के इस पत्र में अमीर अली ने उन्हें लिखा था —

'भारतीय मुसलमानों में बढ़ती हुई एकता और अपनी भौतिक एवं राजनीतिक उन्नति के लिए मिलजुल कर काम करने की प्रवृत्ति को देखते हुए यह बहुत आवश्यक है कि मुसलमानों के सामान्य हितों पर व्यापक रूप से प्रभाव डालने वाले महत्वपूर्ण मामलों पर विचार करने के लिए प्रबुद्ध और सुशिक्षित मुसलमान सज्जनों का एक सम्मेलन राजधानी (कलकत्ता उस समय भारत की राजधानी थी) में किया जाय। यह स्पष्ट है कि जब तक ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत अपने उचित और वैध हितों के लिए हमारे अन्दर विचारों और कार्य की एकता नहीं होगी तब तक शासकों की दृष्टि में हमारी जाति का महत्व दूसरे दर्जे का ही रहेगा और राजनीतिक उन्नति के कार्य में हम कोई ठोस सफलता प्राप्त नहीं कर सकेंगे। इन विचारों से प्रेरित हो मैं 2, 3 और 4 फरवरी 1888 को मुसलमानों का एक सम्मेलन आयोजित करने का एक प्रस्ताव करता हूं। यह सम्मेलन दिन में 2 से 5 बजे तक होगा, जिसमें शरीक होने के लिए सेंट्रल नेशनल मोहम्मडन एसोसिएशन की ओर से मैं आपको आमन्त्रित करता हूं। मेरा ख्याल है कि यह सम्मेलन अपने ढंग का अद्वितीय होगा और भारत के मुसलमानों को परस्पर भ्रातृत्व एवं सहानुभूति के बंधन में

बाध कर उनको स्थायी रूप मे लाभ पहुचायेगा। साथ ही उनकी राजनीतिक गतिविधि को, जो मुझे खुशी है कि उनम फिर से शुरु हो रही है, इससे दुगुना प्रोत्साहन मिलेगा। विवाद के विषय और कायक्रम का निश्चय बाद म किया जायगा।'

प्रेसिडेंसी एसासिएशन का प्रथम वार्षिक सभा म बदरुद्दीन न जो कुछ कहा था उसे देखत हुए इस पर उनकी प्रतिक्रिया असदिग्ध थी। 2 दिसम्बर को काग्रेस की स्वागत समिति के अध्यक्ष का निमत्रण भी उन्ह मिला, साथ ही सर दिनशा वाचा उनके दफ्तर म यह नोट छोड गय निस्सन्देह सवश्री मेहता तलग और मैं बराबर इस मत के रहे है कि पिछले पत्र म जो कारण दिय गय थे उनके कारण काग्रेस के आगामी अधिवशन के सभापतित्व के लिए आप ही सर्वोत्तम व्यक्ति है।

3 दिसम्बर, 1887 को ह्यूम न काग्रेस के महामत्री की हैसियत से काग्रेस की स्थायी समिति की सवसम्मत इच्छा भी इन शब्दो म व्यक्त की मित्रो के आग्रहवश और उनके साथ अपना भी आग्रह जोड कर मैं आपको यह बतान के लिए यह पत्र लिख रहा हू कि काग्रेस की स्थायी समिति के सभी सदस्यो की यह सवसम्मत इच्छा है (यद्यपि हमने सावजनिक रूप से कोई ऐसा सुझाव नहीं रखा है) कि काग्रेस के आगामी अधिवशन का आप ही सभापतित्व करें। विभिन्न क्षेत्रीय समितियो के भी विचार व्यक्त कर उन्होने आगे लिखा स्वय मैं भी—यद्यपि उसका कोई विशेष महत्व नही है मेरा विश्वास है कि इस पद के लिए आप न केवल हमारे सर्वोत्तम बल्कि एकमात्र व्यक्ति है, अतएव सच्चे दिल से मैं आशा करता हू कि जिस पद को स्वीकार करने के लिए आपके शिक्षित देशवासी लगभग सवसम्मति से आपसे अनुरोध कर रहे है उसे आप स्वीकार करने की कृपा करेंगे।'

बदरुद्दीन को ह्यूम का यह पत्र मिला उससे पहले ही 3 दिसम्बर, 1887 को, उन्होने अमीर अली को निम्न उत्तर भेज दिया था

"आपका 28 तारीख का कृपा पत्र मिला, जिसम आपने आगामी

फरवरी म कलकत्ता म होने वाले मुसलमान प्रतिनिधियो के सम्मेलन म मुझे आमन्त्रित किया है। उत्तर म मेरा निवेदन है कि मुसलमान जाति की नैतिक, सामाजिक और राजनीतिक उन्नति के लिए अपने भरसक सब कुछ करने म मुझे बडी प्रसन्नता होगी

'परन्तु आपके पत्र से यह बात स्पष्ट नहीं होती कि प्रस्तावित मुस्लिम सम्मेलन भारत की अन्य जातियो के बारे म क्या रुख अपनाएगा, न यही बात स्पष्ट होती है कि वह केवल राजनीतिक प्रश्नो तक सीमित रहेगा या हमारी जाति के सामाजिक ढाचे से सम्बन्धित प्रश्नो पर भी विचार करेगा। यह तो आपको निस्सन्देह मालूम ही होगा कि मेरा हमेशा यह मत रहा है कि सारे देश से सम्बन्धित राजनीतिक मामलो म मुसलमानो को अन्य सभी जातियो और धर्मो के अपने देशवासियो के साथ मिलजुल कर काम करना चाहिए। ऐसे मामलो म मुसलमानो और हिन्दुओ या पारसियो के बीच एकता को न होना म पसन्द नही करता बल्कि उसे बुरा समझता हू। इसी आधार पर मैंने कलकत्ता के मुसलमानो के बम्बई व कलकत्ता मे हुए अधिवेशनो म अनुपस्थित रहने को ठीक नही माना और उस पर अफसोस जाहिर किया है। इसलिए प्रस्तावित मुस्लिम सम्मेलन यदि नेशनल काग्रेस की प्रतिद्वन्द्वी संस्था के रूप म शुरू किया जा रहा है तो मैं उसके सख्त खिलाफ हू क्योकि मुझे लगता है कि हमारे लिए उचित यही है कि मद्रास के काग्रेस अधिवेशन म शामिल हो और अपने विशेष दृष्टिकोण को ध्यान मे रखते हुए उसकी कारवाई मे योगदान करे। इसके विपरीत यदि प्रतिद्वन्द्वी भावना से वह नही किया जा रहा है तो यह बात मेरी समझ मे नही आती कि अलग से सम्मेलन किया ही क्यो जाय ? क्योकि उस हालत म अलग सम्मेलन म हम राजनीतिक मामलो पर नही, बल्कि नैतिक और सामाजिक प्रश्नो पर ही अधिक विचार करेगे।"

इस पत्र से उनकी शिष्टता, विनम्रता, निर्णय की परिपक्वता और इन सबसे बढ कर उनकी विलक्षण दूरदृष्टि बिल्कुल स्पष्ट है।

काग्रेस का तृतीय अधिवेशन 26 दिसम्बर, 1887 को मद्रास म हुआ।

उसका सभापतित्व करते हुए बदरुद्दीन तैयबजी ने जो अध्यक्षीय भाषण दिया (पूरा भाषण परिशिष्ट 2 म दिया गया है) वह अपने ढग का अनूठा था। भाषण का आरम्भ उन्होने इस घोषणा के साथ किया "आपने जो सम्मान मुझे दिया है, सबसे बडा सम्मान जो कि आप अपने किसी देशवासी को दे सकते हैं—उसके लिए गव अनुभव न करना सम्भव नही।"

काग्रेस द्वारा थोडे ही समय म की गई प्रगति पर प्रकाश डाल कर काग्रेस के सामने जो सबसे बडी चुनौती थी उस पर वह आये। काग्रेस के पिछले दो अधिवेशनो म मुसलमान उससे क्यो अलग रहे, इस आरोप पर उन्होने कहा —

"सज्जनो, प्रथम तो यह आशिक रूप मे ही सत्य है और देश के मात्र एक विशेष भाग के बारे म ही ऐसा कहा जा सकता है तथा बहुत कुछ वहा के कुछ विशेष रूप से स्थानीय एव अस्थायी कारणो से ही ऐसा हुआ। (करतलध्वनि), दूसरे मैं समझता हू कि न्यायोचित रूप म काग्रेस के इस अधिवेशन के बारे मे ऐसा कुछ नही कहा जा सकता। और सज्जनो यह बात इमानदारी से मुझे आपके सामने कबूल करनी ही चाहिए कि बीमारी की हालत मे भी काग्रेस के सभापतित्व का भारी दायित्व जो मैंने वहन किया है वह अपनी इस इच्छा के ही कारण कि कम-से-कम मै तो अपनी शक्ति भर यह साबित कर ही दू कि न केवल व्यक्तिगत रूप मे बल्कि बम्बई की अजुमन ए इस्लाम के प्रतिनिधि की हैसियत से भी मैं ऐसा नही मानता कि भारत की विभिन्न जातियो की स्थिति या उनके सम्बन्धो म—फिर वे हिंदू हो या मुसलमान, पारसी या ईसाई—कोई ऐसी बात है जिससे किसी भी जाति के नेता दूसरो से अलग रह कर ऐसे सुधारो या अधिकारो के लिए प्रयत्न करे जिनकी सभी के लिए समान आवश्यकता है और मेरा पक्का विश्वास है कि सरकार पर मिलजुल कर दबाव डाल कर ही उन्हें प्राप्त किया जा सकता है।"

भारत मे मुसलमानो का क्या योगदान हो, इसका उन्होन या

प्रतिपादन किया

बदरुद्दीन तैयबजी

सज्जनो, यह निस्सदेह सत्य है कि भारत की सभी महान जातियो म प्रत्येक की अपनी अपनी विशेष सामाजिक नैतिक शैक्षणिक यहा तक कि राजनीतिक समस्याए भी है। लेकिन जहा तक सारे भारत से सम्बन्धित सामान्य राजनीतिक प्रश्नो की बात है—जिन पर सिर्फ यह काग्रेस विचार ही करती है—कम से कम मेरी समझ म यह बात नही आती कि मुसलमान अन्य जाति या धर्म के अपने साथी देशवासियो के साथ कधे-से-कधा मिला कर सभी के सामान्य हित की दृष्टि से उन पर विचार क्यो न करें (करतलध्वनि)। सज्जनो बम्बई प्रान्त म तो इसी सिद्धान्त पर हमने हमेशा काम किया है और बगाल प्रान्त तथा मद्रास प्रान्त से ही नही बल्कि पश्चिमोत्तर प्रान्त (अब उत्तर प्रदेश) तथा पजाब से भी यहा जो मुसलमान प्रतिनिधि आये है उनकी संख्या स्थिति और उपलब्धियो को देखते मुझे इस बात म जरा भी सन्देह नही कि देशभर के मुस्लिम नेताओ का भी—कुछ महत्वपूर्ण अपवादो को छोड कर—यही मत है। (करतलध्वनि)। इसी भाषण म बदरुद्दीन ने उस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जो बाद म काग्रेस का नियम ही बन गया। उन्होने कहा

'हम अपने विचार विनिमय को सारे भारत पर असर डालने वाले प्रश्नो तक ही सीमित रखें और जिनका देश के किसी खास भाग या किसी खास जाति से ही सम्बन्ध हो उन पर विचार न करें यही एकमात्र बुद्धिमत्तापूर्ण और सम्भव तरीका ऐसा है जिसे हम अपनाना चाहिए। (जोरदार करतलध्वनि)। सरकार के प्रति अपना रुख उन्होने यो प्रकट किया

हमारी माग बहुत बढी चढी न हो हमारी आलोचना अनुचित न हो हमारे तथ्य सही हो और जो निष्कर्ष हम निकालें वे तर्कसगत हो तो विश्वास रखिए कि हम अपने शासको के सामने जो भी प्रस्ताव रखेंगे उन पर वैसी ही अनुकूल भावना से विचार किया जायेगा जैसा करना किसी भी सुदृढ और प्रबुद्ध सरकार की विशेषता होती है। (करतलध्वनि)

सर फीरोजशाह मेहता ने इस भाषण म प्रकट की गई वक्तृत्वकला और बुद्धिमानी की खब सराहना की जबकि उन्होंन कहा

'जिस स्पष्टता से बदरुद्दीन न देश का दृष्टिकोण उपस्थित किया और गले उतरने वाले तक म श्राताओं के दिल व दिमाग म अपनी बात बिठाई, वह अद्भुत है। यही नहीं बुद्धिमानी की जो बात उन्होंन कही उन्हें पढ कर आज भी हर एक हिन्दू, मुसलमान और पारसी लाभ उठा सकता है। मेरे विचार म इससे अच्छी कोई बात नहीं हो सकती कि बदरुद्दीन न इस अवसर पर जो बुद्धिमत्तापूर्ण और समझदारी की बात कही उस पर लोग पूरा ध्यान दें। ('टाइम्स आफ इंडिया', 10 नवम्बर, 1906)

समाचारपत्रों म भी इसकी चर्चा हुई। टाइम्स आफ इंडिया ने लिखा 'बदरुद्दीन तयबजी न इस अवसर पर जो अध्यक्षीय भाषण दिया वैसे अध्यक्षीय भाषण बहुत कम हुए होंगे। इस भाषण म तथ्यों को बहुत स्पष्ट और सुसगत तर्कों के साथ प्रस्तुत किया गया है और इस बात को सभी स्वीकार करेंगे कि काग्रेस के इतिहास मे यह भाषण बहुत ऊचे दर्जे की वक्तत्व कला का श्रेष्ठ नमूना था। मद्रास के 'हिन्दू' न भी अपने अग्रलेख म यही कहा कि, "बदरुद्दीन तयबजी द्वारा दिया गया भाषण इतना जोरदार और प्रभावशाली रहा कि कोई अन्य अध्यक्षीय भाषण उसका कभी भी मुकाबला नहीं कर सकता।'

अधिवेशन मे जिन महत्वपूर्ण विषयों पर विचार हुआ उनमे शस्त्र विधान (आर्म्स एक्ट) को रद्द करने से सम्बद्ध सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का प्रस्ताव प्रमुख था। ह्यूम और चन्दावरकर ने उस पर बोलते हुए सयम से काम लेने की सलाह दी। विवाद को उग्र होते देख सभापति बदरुद्दीन ने प्रस्तावक तथा अन्य प्रमुख प्रतिनिधियों से सलाह मशवरा कर के प्रस्ताव का सवसम्मत मसविदा तयार करने के लिए अधिवेशन की कारवाई कुछ देर के लिए स्थगित कर दी। कार्य-स्थगन की बात बिना किसी आपत्ति के स्वीकार कर ली गई। फलत प्रस्ताव का प्रारूप सब को स्वीकार्य रूप म तयार कर लिया गया

8

महत्वपूर्ण वाद—विवाद

राष्ट्रीय मतक्य की आवश्यकता पर बदरुद्दीन न जो कुछ कहा था वह ठीक ही था, यह आज हम देख सकत है। उन्होंने इस बात को समझ लिया था कि भारत एक राष्ट्र क रूप म विकसित हो रहा है। राष्ट्रीयता अभी प्रारम्भिक अवस्था म ही थी, और वगगत हिता और अधिकारा पर जरूरत से ज्यादा जोर देने अथवा राष्ट्र का निर्माण करनवाली विविध जातिया के वध हिता और अधिकारा की सवथा उपक्षा करन से वह नष्ट हो सकती थी। जसा कि सभी मध्य माग अपनान वाला क साथ हुआ दाना ही पक्षा क उग्रपथिया न बदरुद्दीन की आलोचना की और गलत रूप मे उन्हे प्रस्तुत किया। लोगो की भावनाए उस समय कसी तीव्र थी यह एक पक्ष की कटु आलाचना और दूसर की निमम उपेक्षा स समझा जा सकता है।

काग्रेस के ततीय अधिवेशन के बाद बदरुद्दीन न एसा समझौता ढूढ निकालने का प्रयत्न तत्काल आरम्भ कर दिया जिससे मुसलमान बहुसख्या म काग्रेस म आए और काग्रेस सुदढ हा। उन्होन काग्रेस के अपने अध्यक्षीय भाषण म मतक्य के जिस सिद्धात का प्रतिपादन किया था वह सस्था का नियम ही बन जाए, इसकी उन्होंने कोशिश की। इसके लिए एक ओर बदरुद्दीन तयब जी और विविध मुसलमान नेताओ के बीच काफी अवधि तक विचार विनिमय हुआ, दूसरी ओर काग्रेस नताओ से उनकी बातचीत हुई इसके अत म काग्रेस-के महामत्री ए० ओ० ह्यूम ने उस नियम का प्रारूप तयार किया। बदरुद्दीन न उसका अनुमादन किया और उस पर अनक मुसलमानो की सहमति प्राप्त की जिन्होंने कहा कि ऐसा नियम बन जाए ता इस आदालन (काग्रेस)

में उनके हार्दिक सहयोग की रही-सही सभी रुकावटें दूर हो जाएँगी। 5 जनवरी 1888 के उनके पत्र (परिशिष्ट 3) में संलग्न वह प्रस्तावित नियम इस प्रकार है

> 'ऐसा कोई विषय विषय-समिति द्वारा विचारार्थ स्वीकार नहीं किया जाएगा न कांग्रेस के किसी अधिवेशन में सभापति द्वारा उस पर विचार होने दिया जाएगा जिस पर हिन्दू या मुसलमान प्रतिनिधि सामूहिक रूप से सर्वसम्मति या लगभग सर्वसम्मति से आपत्ति करें और स्वीकृत विषय पर विचार के बाद ऐसा लगे कि सभी हिन्दू या सभी मुसलमान प्रतिनिधि सामूहिक रूप से सर्वसम्मति से या लगभग सर्वसम्मति से प्रस्ताव के विरुद्ध हैं तो उसका विरोध करने वाले बहुमत में हों या अल्पमत में तत्संबंधी प्रस्ताव पारित नहीं किया जाएगा।

यह नियम कांग्रेस की सभी स्थायी समितियों ने इस शर्त के साथ स्वीकार कर लिया कि यह नियम केवल ऐसे विषयों पर लागू होगा जिनके बारे में कांग्रेस ही निश्चित रूप से कोई मत व्यक्त न कर चुकी होगी। 'पायनीयर' को लिखे एक पत्र में इसका उल्लेख करते हुए बदरुद्दीन ने सार्वजनिक रूप से इस बात पर प्रकाश डाला कि मुसलमानों का समर्थन प्राप्त करने के लिए कांग्रेस ने क्या क्या प्रयत्न किए हैं। (पत्र के लिए देखिए परिशिष्ट 4 अ)

बदरुद्दीन जब इस तरह कांग्रेस को सुदृढ़ करने में व्यस्त थे, अमीरअली मुस्लिम सम्मेलन की योजना आगे बढ़ाने में लगे हुए थे। पिछले नवम्बर वाले पत्र के बाद मुसलमानों के प्रस्तावित सम्मेलन के बारे में कुछ क्षेत्रों में फैली हुई कुछ भ्रांत धारणाओं को दूर करने की दृष्टि से 5 जनवरी 1888 को, उन्होंने बदरुद्दीन को एक और पत्र लिखा। उसके जवाब में बदरुद्दीन ने उन्हें एक ही दिन 13 जनवरी 1888 को दो पत्र लिखे —एक कांग्रेस के सभापति की हैसियत से और दूसरा व्यक्तिगत रूप में। (देखिए परिशिष्ट 6 और 7) वे बहुत कुछ उसी तरह के थे जैसा अमीरअली के निमंत्रण पर पहले दिया गया उनका जवाब था। आपकी इस आपत्ति को मैं समझता हूँ कि हिंदू हमारी अपेक्षा अधिक उन्नत होने के कारण सरकार द्वारा शिक्षित भारतीयों को दी गई

किसी भी रियायत को अधिक लाभ उठाएगे।' बदरुद्दीन ने उन्हे लिखा, "परन्तु दूसरो को उनका उपयोग करने से रोकने के बजाय, जिनके कि वे योग्य है, निश्चय ही हमारा कर्तव्य है कि सभी सम्भव उपायो से अपनी उन्नति कर अपने को योग्य बनाए। लेकिन अगर कोई ऐसी योजना सामने आए जिससे मुसलमान हिन्दुओ की मनमानी के शिकार बनते हो या जिससे हिन्दुओ को ऐसे प्रशासनिक अधिकार मिलते हो जो मुसलमानो के लिए हानिकारक हो, तो उसका मैं अपनी पूरी शक्ति से विरोध करूगा। परन्तु काग्रेस ऐसा कुछ नही करना चाहती। वह तो सभी जातियो के लिए समान रूप से लाभदायक होने का दावा करती है और ऐसा ही उसके उद्देश्य है, इसीलिए ऐसी किसी बात पर उसमे विचार नही हो सकता जिस पर सामूहिक रूप से मुसलमानो को आपत्ति हो।

'मैं आप से कहूगा मुझे इसमे रत्ती भर सदेह नही कि हमारी जाति के अधिकारो के लिए उचित सरक्षणो और प्रतिबन्धो के साथ काग्रेस यदि सही सिद्धान्तो पर चलती तो वह हमारे देश का बहुत भला कर सकती है। इसलिए मेरे खयाल मे हम सब को मिल जुलकर ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि अपने विशेष हितो की सावधानी से रक्षा करते हुए सभी देशवासियो के साथ कधे से कधा मिलाकर काम करे। इन सुझावो पर सावधानी से विचार कर अपने विचार मुझे बताने की कृपा करेंगे। हमारा यही दुर्भाग्य क्या कम है कि हम अपने ही देशवासी हिन्दुओ से अलग अलग पड गए है, कम-से-कम आपस मे तो हम विभाजित न हो।

सैयद अहमद खाँ और नवाब अब्दुल लतीफ को भी इसी दिन इसी तरह के पत्र बदरुद्दीन ने भेजे।

इन पत्रो के अलावा 14 जनवरी 1888 को बदरुद्दीन ने नवाब मोहसिन उलमुल्क को भी लिखा

'सक्षेप मे यह तो, भारत के सभी भागो के शिक्षित और सुविज्ञ व्यक्तियो को फिर वे किसी भी जाति, धर्म या वर्ण के क्यो न हो,

विचारपूण सम्मति को एकाग्र करके सामन लाना और भारत के हितो को बढाना ही काग्रेस का उद्देश्य है। मुस्लिम जाति सामूहिक रूप मे जिस प्रश्न के विरुद्ध हो उस पर काग्रेस में विचार नही हो सकता, न मेरे मतानुसार होना ही चाहिए। एमे प्रश्नो पर तो प्रात विशेष की प्रान्तीय या जाति विशेष की जातीय सस्थाम्रो मे ही विचार होना चाहिए। लेकिन बहुत से एसे भी मामले है जिनका हम सभी के लिए बहुत महत्व है, जिनका सभी पर असर पडता है, फिर वे चाहे हमारे मुसलमान भाई हो या हिदू अथवा ईसाई भाई। उदाहरण के लिए कराधान, कानून बनाना और उस पर अमल शिक्षा पद्धति सरकारी खच इत्यादि। मै नही समझता कि इनके बारे मे हमारे मुसलमान भाई अय देशवासियो के साथ मिलजुलकर, सयुक्त रूप म काम क्यो न कर।

"भारतीय हित के नाम पर कोई एसी योजना सामने आए जिससे हमारी जाति के हितो पर आच आती हो तो उस सिद्धान्त के अनुसार, जिसका अभी उल्लेख किया गया है, सामूहिक रूप म विरोध कर हम उस पर काग्रेस म विचार रोक सकते है।

थोडी दर के लिए यह भी मान ले कि एसा सम्भव नही तो भी जिस खास योजना को हम पसन्द न करते हो उसको काग्रेस छोडे बिना भी क्या हम विरोध नही कर सकते ? सच तो यह है कि काग्रेस स अलग रहने के बजाए उसम रहकर हम अपने विरोध को कही कारगर बना सकते है।

'मैंने तो हमेशा इसी सिद्धान्त पर अमल किया है और यह स्वीकार करने म मुझ कोई सकोच नही। अमीरअली अब्दुल लतीफ और सयद अहमद खा जसे हमारे मित्र किस कारण काग्रेस स अलग रहते है यह मेरी समझ म नही आता। मुझे तो भय है कि अपनी मान्यता के बजाए सरकार का साथ देने स ही वे ऐसा कर रहे है। बगाल के हिदू-मुसलमानो के बीच ही नही बल्कि एक प्रान्त के मुसलमानो और दूसरे प्रात के बीच

भी इस तरह जो अशाभनीय भेदभाव पदा किया जा रहा है उस रोकने
की दप्टि से ही उसके साथ मैंन पत्र-व्यवहार शुरू किया है।
कांग्रेस म आपकी बहुत िलचस्पी है अत इस उपयागी और राप्टीय
बनान के लिए आप जा सुभाव देगे उनका मै प्रसन्नतापूवक स्वागत
करू गा।

दूसर पक्ष की शकाए सर सयद अहमद खा न प्रस्तुत की और लगभग
उसी समय जबकि बदरुद्दीन न कांग्रस का अध्यक्षीय भापण किया। माहम्मडन
एज्युकेशनल कान्फ्रेंस के लखनऊ अधिवशन म बालत हुए 28 दिसम्बर 1887
का सर सयद न कहा

व ब्रिटिश हाउस आफ लाड स और हाउस आफ कामन्स की नकल
करना चाहत है। लकिन फज करो कि वाइसराय की कौसिल का गठन
इसी तरह कर दिया जाए और यह भी थाडी देर का मान ल कि सभी
मुस्लिम मतदाता मुसलमान सदस्या के लिए ही मत देग। अब हम इस
बात का दखे कि कितन मत मुसलमाना क हागे और कितन हिदुआ
के। यह निश्चित है कि हिदू सदस्या को चौगुने मत मिलेंग क्याकि
उनकी आबादी मुसलमाना स चौगुनी है। अत गणित क सहार हम सिद्ध
कर सकत है कि मुसलमान को एक मत क मुकाबल हिदू का चार मत
मिलेंगे। एसी हालत म मुसलमान अपन हिता का सरक्षण भला कस कर
सकत है? यह ता जुए का एसा खल हागा जिसम एक का चार दाव का
अवसर मिलगा जबकि दूसर का सिफ एक का।[1]

---

1 कराची के मानिग यज (25 माच 1960) म प्रकाशित जमीलुद्दीन अहमद का लेख। सर सयद अहमद खा क लेकचरा का मजमूआ सम्पादक मु शी सिराजद्दीन (1890)। सयद शरीफुद्दीन पीरजादा की ईवाल्युशन आफ पाकिस्तान (पष्ठ 51) भी देखें जो 1963 म लाहौर (आलपाकिस्तान लीगल डिसीज स, नाभा रोड) से प्रकाशित हुई।

सर सयद के भाषण का विवरण 17 जनवरी, 1888 के टाइम्स आफ इंडिया मे प्रकाशित हुआ और उसने बडी सनसनी पैदा की। स्वय टाइम्स आफ इंडिया तक भाषण की सराहना करते हुए भी, यह कहे बिना न रह सका कि उसके 'कुछ अश सम्भवत अमगत हैं। असगत वह निश्चित रूप से था और ह्यूम उससे बहुत उत्तेजित हुए। उन्होने बदरुद्दीन से हिन्दुओ पर किए गए प्रहार का जवाब देने का अनुरोध किया और क्या जवाब दिया जाए इसका प्रारूप भी बनाकर भेजा। लेकिन स्पष्ट ही ह्यूम के सुझाव से बदरुद्दीन सहमत नही हुए और उन्होने सयम बरतने की सलाह दी।

ह्यूम ने 22 जनवरी, 1888 को इस सम्बन्ध मे उन्हे फिर लिखा

> यह मुसलमानो द्वारा पैदा किया हुआ सकट है। सारे देश की ओर से आपको जिम्मेदारी सौपी गई है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि अगले वर्ष के इस समय तक आपकी बदौलत मुसलमानो की कठिनाइयो का जरूर अत हो जाएगा परन्तु इस बीच देश का हित खतरे मे है और आप उसके लिए जो कुछ कर रहे है उसके बावजूद मुझे इस सम्बध मे आपकी सलाह और सहायता के लिए अनुरोध करना ही होगा। ऐसा न करू तो मैं अपने कर्तव्य पालन से विमुख हूगा। करूगा तो वैसा ही जैसा करने की आप सलाह देंगे परन्तु इस बात का निश्चय तो मुझे कर लेना ही चाहिए कि इस प्रश्न के सभी पहलुओ पर आप विचार करते है और उतनी ही सावधानी से जितनी कि आवश्यक है।[3]

सर सयद का भी 24 जनवरी, 1888 का लिखा जवाब बदरुद्दीन को इस समय तक मिल गया, जिसमे एकता के विचार से ही इकार किया गया

---

2 बदरुद्दीन तयबजी लेखक हुसैन बी० तयब जी। पृष्ठ 199।

3 सोस मेटीरियल फार ए हिस्टरी आफ दि फ्रीडम मूवमेंट इन इडिया, जिल्द 2 (1885 1920) पृष्ठ 70।

भी इस तरह जो अप्राभर्नीय भेदभाव पल्ल किया जा रहा है उस रावन की दष्टि म ही उसके साथ मैंन पत्र-व्यवहार शुरू किया है।

कांग्रेस म आपकी बहुत दिलचस्पी है अत इस उपयोगी और राष्ट्रीय बनाने क लिए आप जो सुभाव दगे उनका मै प्रसन्नतापूवक स्वागत करूगा।

दूसरे पक्ष की रवाए सर सयद अहमद खा न प्रस्तुत की और लगभग उसी समय जबकि बदरुद्दीन न काग्रेस का अध्यक्षीय भाषण किया। माहम्मडन एज्युकेशनल कांफ्रेंस के लखनऊ अधिवेशन मे बोलते हुए 28 दिसम्बर, 1887 को सर सयद न कहा

> वे ब्रिटिश हाउस आफ लाड स और हाउस आफ कामस की नकल करना चाहत है। लेकिन फज करो कि वाइसराय की कौसिल का गठन इसी तरह कर दिया जाए और यह भी थाडी दर को मान ल कि सभी मुस्लिम मतदाता मुसलमान सदस्या के लिए ही मत देगे। अब हम इस बात का देखे कि कितने मत मुसलमाना के हागे और कितने हिदुओं के। यह निश्चित है कि हिन्दू सदस्या को चौगुने मत मिलेंगे क्योंकि उनकी आबादी मुसलमाना स चौगुनी है। अत गणित के सहारे हम सिद्ध कर सकत है कि मुसलमान का एक मत के मुकाबल हिंदू को चार मत मिलेंगे। ऐसी हालत म मुसलमान अपन हितो का सरक्षण भला कम कर सकत है? यह तो जुए का ऐसा खेल हागा जिसमे एक को चार दाव का अवसर मिलेगा जबकि दूसरे को सिफ एक का।[1]

---

1 कराची के मार्निंग न्यूज (25 मार्च 1960) मे प्रकाशित जमीलुद्दीन अहमद का लेख। सर सयद अहमद खा के लेक्चरों का मजमुआ

सम्पादक मुन्शी सिराजद्दीन (1890)। सयद शरीफुद्दीन पीरजादा की ईवाल्युशन आफ पाकिस्तान (पष्ठ 51) भी देखें जो 1963 मे लाहौर (आलपाकिस्तान लीगल डिसीजन्स नाभा रोड) से प्रकाशित हुई।

सर सयद के भाषण का विवरण 17 जनवरी, 1888 के 'टाइम्स ग्राफ इडिया म प्रकाशित हुआ ग्रौर उसन बडी सनसनी पदा की। स्वय 'टाइम्स ग्राफ इडिया तक भाषण की सराहना करत हुए भी, यह कहे बिना न रह सका कि उसके कुछ ग्रश सम्भवत ग्रसगत हैं। ग्रसगत वह निश्चित रूप स था ग्रौर ह्यूम उससे बहुत उत्तेजित हुए। उ होने बदरुद्दीन स हिदुग्रा पर किए गए प्रहार का जवाब देने का ग्रनुरोध किया ग्रौर क्या जवाब दिया जाए इसका प्रारूप भी बनाकर भेजा। लकिन स्पष्ट ही ह्यूम के सुझाव से बदरुद्दीन सहमत नही हुए ग्रौर उ होन सयम बरतने की सलाह दी।

ह्यूम न 22 जनवरी 1888 को इस सम्बन्ध म उन्हे फिर लिखा

यह मुसलमानो द्वारा पदा किया हुग्रा सकट है। सारे देश की ग्रोर से ग्रापको जिम्मदारी सौपी गइ है। मुझे पूण विश्वास है कि ग्रगले वष के इस समय तक ग्रापकी बदौलत मुसलमानो की कठिनाइया का जरूर ग्रत हो जाएगा परन्तु इस बीच देश का हित खतरे मे है ग्रौर ग्राप उसके लिए जो कुछ कर रहे है उसके बावजूद मुझे इस सम्बध मे ग्रापकी सलाह ग्रौर सहायता के लिए ग्रनुरोध करना ही होगा। एसा न करू तो मैं ग्रपन कतव्य पालन स विमुख हूगा। करूगा तो वैसा ही जसा करने की ग्राप सलाह देगे परन्तु इस बात का निश्चय तो मुझे कर लेना ही चाहिए कि इस प्रश्न के सभी पहलुग्रो पर ग्राप विचार करते है ग्रौर उतनी ही सावधानी से जितनी कि ग्रावश्यक है।[3]

सर सयद का भी 24 जनवरी 1888 का लिखा जवाब बदरुद्दीन का इस समय तक मिल गया जिसम एकता के विचार से ही इन्कार किया गया

---

2 बदरुद्दीन तयबजी लेखक हुसेन बी० तयब जी। पष्ठ 199।

3 सोस मेटीरियल फार ए हिस्टरी ग्राफ दि फ्रीडम मूवमेट इन इडिया, जिल्द 2 (1885-1920) पष्ठ 70।

था। उन्होंने लिखा था

"नेशनल कांग्रेस शब्द का क्या अर्थ है, यह मेरी समझ में नहीं आया। क्या इसका अर्थ यह है कि भारत में विभिन्न जातियों और धर्मों के जो लोग रहते हैं वे सब एक ही राष्ट्र के अंग हैं, या एक राष्ट्र का रूप ले सकते हैं और उन सबके उद्देश्य तथा उनकी आकांक्षाएं एक समान हैं ? मेरे खयाल में यह बिल्कुल असम्भव कल्पना है और जब यह कल्पना असम्भव है तो नेशनल कांग्रेस जैसी कोई चीज हो ही नहीं सकती न सभी लोगों के लिए वह समान रूप में लाभदायक हो सकती है। (देखिए परिशिष्ट 8)

बदरुद्दीन ने 18 फरवरी 1888 को इसका जवाब दिया जिसमें लिखा 'निस्संदेह ऐसे भी सवाल हैं जो किसी एक जाति, धर्म या प्रांत से ही सम्बद्ध हो, परन्तु उन पर कांग्रेस में विचार नहीं होता। इसलिए मुझे लगता है कि कांग्रेस जैसे संगठन पर कोई आपत्ति नहीं कर सकता, जब तक कि उसका ऐसा मत न हो कि ऐसे कोई सवाल हो ही नहीं सकते जिनका भारत के सभी निवासियों से सम्बंध हो। कांग्रेस से आपका विरोध इसलिए है कि "वह देश को एक राष्ट्र मानती है। लेकिन मैं ऐसे किसी व्यक्ति को नहीं जानता जो सारे भारत को कौम मानता हो। आप यदि मेरे अध्यक्षीय भाषण को पढ़ें तो आप देखेंगे कि उसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि भारत में विभिन्न कौमें हैं जिनकी अपनी विशिष्ट समस्याएं हैं परन्तु कुछ मामले ऐसे भी हैं जिनका उन सभी जातियों से सम्बंध है और ऐसे मामलों पर विचार करने के लिए ही कांग्रेस बनाई गई है।' (देखिए परिशिष्ट 9)

यहा यह बता दना अप्रासगिक न हागा कि 'राष्ट्र' और 'जाति' जैसे शब्दा ने उस समय आज जसा स्पष्ट अथ प्राप्त नहा किया था, सर सयद और बदरुद्दीन दोना ने ही नेशन (राष्ट्र) शब्द का प्रयाग शब्द कौम के अथ म ही किया, जिसका अथ मिले जुले जनसमुदाय या जाति से भिन्न नही हाता। रहा पारस्परिक पत्र-व्यवहार सा इससे यह स्पष्ट है कि सर सयद अन्य जातिया स सहयोग की किसी भी सम्भावना को अस्वीकार करते थे जबकि बदरुद्दीन उस न केवल वाछनीय बल्कि आवश्यक भी मानते थे। मुसलमानो के बारे म उन्हाने लिखा कि उन्हें "अपने विशेष हिता का सरक्षण करते हुए भारत की सामान्य प्रगति म अपना यागदान करना चाहिए।' भारतीय एकता मे उनका स्पष्ट ही अटूट विश्वास था।

काग्रेस को सभी के लिए स्वीकाय बनाने की बदरुद्दीन की योजना इस बीच भारी सकट म पड गई। सर सैयद का विराध ही सामने नही आया बल्कि स्वय काग्रेस के अदर भी मतभेद सामने आये। बदरुद्दीन द्वारा सुझाए नियम के सम्बन्ध म विभिन्न नेताओ स ह्यूम ने जा बातचीत की उसका विवरण देते हुए उन्हाने 29 फरवरी, 1888 का लिखा सिद्धात मे ता व सहमत हैं पर वे कहते है कि मानलो काग्रेस क अगले अधिवेशन म सुदूरवत पश्चिमोत्तर प्रात (उत्तर प्रदेश) और अवध के ही मुसलमान शामिल हा तथा सर सयद अहमद के आदेश पर वे एक होकर कहें कि प्रतिनिधिक सस्थाओ के लिए हम योग्य नही है तब हमारी क्या स्थिति होगी? हम ता कुछ बाता के लिए प्रतिबद्ध हैं उनसे विमुख हम नही हा सकते। मुझे आपका यह बताना ही हागा कि वस्तुत स्वय मुसलमान ही विभिन्न प्रकार से यह बात कहते हैं। मेरा खयाल है कि उस नियम के साथ यह शत जोड दी जाए ता सभी उसे स्वीकार कर लेंगे

> 'यह नियम केवल उन्ही विषया पर लागू होगा जिनके बारे म काग्रेस पहले ही निश्चित रूप से कोई मत व्यक्त न कर चुकी होगी।
>
> अब प्रश्न यह है कि एसी शत को आप स्वीकार करेंगे? मुझे तो यह उचित ही लगती है।'

लेकिन सर सैयद के आदमी कांग्रेस में अधिवेशन में ऐसा कुछ कर सकेंगे, स्वयं ह्यूम भी इस भय को करीब करीब निराधार मानते थे, जैसा कि उनके इस कथन से स्पष्ट है इसका (उपर्युक्त नियम का) मैंने बारम्बार प्रतिपादन किया और अंत में साफ तौर से कह दिया कि हमारे विरोधी ऐसे शक्तिशाली हैं कि एक होकर हम उनका मुकाबला नहीं करेंगे तो सफल नहीं हो सकते। यही नहीं बल्कि जब तक हम अपने मुसलमान भाइयों का घनिष्ठ अमली तौर पर सर्वसम्मत सहयोग उपलब्ध न हो तब तक हम विरोधियों पर विजय कदापि नहीं पा सकते। इस नियम के सिद्धान्त को न मानकर आप ऐसा नहीं कर सकेंगे और कांग्रेस को आप केवल हिन्दुओं की संस्था बना लेंगे जिसमें मुसलमान नहीं होंगे लेकिन केवल हिन्दुओं की ही हो जाने पर कांग्रेस का इंग्लैंड या भारत में कोई खास प्रभाव नहीं पड़ेगा।

परन्तु उन्होंने कहा मुसलमान ऐसा नियम चाहते क्यों हैं ? जिस पर आम सहमति न हो ऐसी कोई बात हम कभी करेंगे ही नहीं। मैंने कहा कि मुझे तो इस बात पर तो पूरा भरोसा है परन्तु आप भारी बहुमत में हैं और वे अल्पमत में—स्थिति इससे उलटी होती तो आप भी ऐसी हो किसी व्यवस्था के बिना उनके साथ कंधे से कंधा न मिलाते, ऐसा मेरा विश्वास है।'

ह्यूम ने नियम में यह बात स्वीकार करने को बदरुद्दीन से प्रार्थना की, साथ ही यह भी सुझाया कि आम तौर पर फैली हुई आशंकाओं को दूर करने के लिए अखबारों में ऐसा एक पत्र वह प्रकाशित कराएं जिसमें सारी पृष्ठभूमि बता कर उस नियम का स्पष्टीकरण किया जाए। उनकी सलाह पर बदरुद्दीन ने 'पायनीयर' में एक पत्र छपवाकर ऐसा किया। (देखिए परिशिष्ट 4 अ)

बदरुद्दीन ने शर्त मान ली और 1888 के प्रयाग अधिवेशन में कांग्रेस ने 13 वें प्रस्ताव के रूप में उस नियम को स्वीकार कर लिया। (देखिए परिशिष्ट 4-ब)

बदरुद्दीन कांग्रेस के अपने मोर्चे को पूरी तरह सुदृढ़ कर भी नहीं पाए थे कि 16 मार्च 1888 को मेरठ में दिए अपने मशहूर भाषण में सर सैयद ने फिर से गालागाली की लेकिन इस बार उन्होंने तीखे अपशब्द नहीं कहे बल्कि सच पूछो तो एक तरह उन्होंने बदरुद्दीन की तारीफ भी की

मैं यह कहना चाहता हूँ कि बदरुद्दीन तयबजी के सिवा जो सच मुच महान व्यक्ति है और जिनकी मैं बड़ी इज्जत करता हूँ कांग्रेस में और किसी प्रमुख व्यक्ति ने भाग नहीं लिया। मैं समझता हूँ कि ऐसा करके बदरुद्दीन ने गलती की है। उन्होंने मुझे दो पत्र लिखे जिनमें एक लखनऊ का मेरा भाषण प्रकाशित होने पर लिखा था। मेरे खयाल में वह चाहते हैं कि जो बातें मुसलमानों के प्रतिकूल हों वे उन्हें बताई जाएं जिससे वह उन पर कांग्रेस में विचार न होने दें। परन्तु वास्तविकता तो यह है कि कांग्रेस में जिन बातों पर विचार किया जाता है वे सभी हमारी जाति के हितों के विपरीत हैं।

यही तो असली गुत्थी थी।

सर सैयद और बदरुद्दीन के बीच जो महत्वपूर्ण वाग्विवाद हुआ उससे सब बातें स्पष्ट होने लगीं। जबकि बदरुद्दीन का विश्वास था कि सारे देश से सम्बंधित मामलों में हिन्दू मुसलमानों के संयुक्त रूप में काम करने में उनके सांस्कृतिक और धार्मिक भेदभाव बाधक नहीं है और उन्होंने ऐसे सामान्य हितों पर ही निस्संदेह जोर भी दिया, सर सैयद ने भेदभाव को बढ़ा चढ़ा कर सामने रखा और हिन्दू मुसलमान दोनों के समान हित के मामलों को गौण माना। बदरुद्दीन के लिए राजनीतिक क्षेत्र में हिन्दू मुसलमानों को एक रखने वाली बात उतनी ही वास्तविक महत्वपूर्ण और मूल्यवान थी जैसी कि उन्हें अपने अपने धर्म और संस्कृति में एक-दूसरे से अलग रखने वाली। पर सर सैयद इससे बिल्कुल असहमत थे। मेरठ के अपने भाषण में उन्होंने कहा

मेरे दोस्त बदरुद्दीन तयब जी हिन्दू मुसलमानों से सम्बंधित मामूली सवालों को छोड़कर (क्योंकि दुनिया में ऐसी कोई बात नहीं जिसमें एक-दूसरे से मिलती जुलती या समान हित की कोई बात हो ही नहीं) मुझे

बताए कि भला कोई बुनियादी राजनीतिक प्रश्न ऐसा है जो कांग्रेस में पेश हो और वह मुसलमानों के हितों के विरुद्ध न हो।"[4]

सर सैयद का ऐसा रुख देख, बदरुद्दीन ने उन्हें अपने पक्ष में करने का और कोई प्रयत्न नहीं किया। इसके बजाय कांग्रेस के लक्ष्य का प्रचार करने पर ही उन्होंने सारा ध्यान लगाया। ब्रिटिश निर्वाचकों के प्रति एक गश्तीपत्र का प्रारूप उस वर्ष मई में तैयार किया गया। प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय कांग्रेस अधिवेशनों के सभापतियों बनर्जी दादाभाई नौरोजी तथा स्वयं बदरुद्दीन के हस्ताक्षरों से वह भेजा जाने वाला था। जिन दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थितियों में आपके इतने अधिक साथी प्रजाजन रह रहे हैं उनसे ब्रिटिश जनता को परिचित कराने के लिए कांग्रेस का कार्यक्रम और पिछले कांग्रेस अधिवेशन की कारवाई का ब्यौरा उसमें दिया गया था साथ ही दावा किया गया था कि कांग्रेस भारत का प्रतिनिधित्व करती है।

कांग्रेस के पिछले अधिवेशन की रिपोर्ट को बदरुद्दीन ने स्वयं भारत में भी बटवाया। उसे देखकर सर सैयद के विश्वासपात्र अलीगढ़ कालेज के प्रिंसिपल थियोडोर बेक ने 7 मई 1888 को एक पत्र बदरुद्दीन को लिखा, जिसमें भय प्रकट किया कि कांग्रेस के आन्दोलन से जल्दी या देर में पंजाब और इस प्रांत के निवासियों में गदर मचे बिना न रहेगा और अगर उसके साथ ही सरहद पर कोई युद्ध छिड़ गया तो वह बहुत विनाशक सिद्ध होगा। बेक ने कहा कि उत्तर भारत के सभी मुसलमान बहुत गरीब हैं और उनका धर्मोन्माद खत्म नहीं हुआ है इसलिए (कांग्रेस का) आन्दोलन उन्हें अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध-पथ पर अग्रसर करेगा। सर सैयद ने भी मेरठ के अपने भाषण में बहुत कुछ इसी तरह का भय प्रकट किया। विद्रोह में मुसलमानों के भाग लेने के कारण उन पर भारी ब्रिटिश दमनचक्र चलने की बात उन्होंने कही।

---

4 कराची के मोर्निंग न्यूज (23 मार्च 1960 में प्रकाशित जमीलुद्दीन का लेख। सर सैयद अहमद खाँ के लेक्चरों का मजमुआ, (1890) सम्पादक मुंशी सिराजुद्दीन। सैयद शरीफुद्दीन पीरजादा की इवाल्यूशन आफ पाकिस्तान (पृ० 53) भी देखें।

यह एक विचित्र बात है कि मुसलमाना की इस तथाकथित कट्टरता का उन अग्रेजा द्वारा फूट डालकर शासन करन की नीति के रूप म लाभ उठाया जा रहा था, जो मुसलमाना के पैरोकार बनने थ और उनके द्वारा भी जो उनम अविश्वास करत थ। लाड हैरिस पर लिखी गई 'ए गवनस मेडिटेशन' शीषक व्यग्य कविता उन दिना बम्बइ मे बहुत लोकप्रिय थी। वह ऐसे अग्रेज द्वारा लिखी गई थी जो स्पष्टत हिदुआ म वही काम करना चाहता था जो वह न मुसलमाना म किया। कविता म कहा गया था

> काग्रेस का विरोध करने के लिए हिदुआ का हम उपद्रवी कहना पडता है,
>
> जबकि वास्तव मे जिनसे हम निपटना है व है मुसलमान, क्योंकि हिदुओ के बडे-बडे जलसा के साथ भी पुलिस की जरूरत नहीं पडती,
>
> परन्तु हर शुक्रवार का इसलिए अतिरिक्त पुलिस नियुक्ति करनी पडती है
>
> जिससे जुम्मे की नमाज के बाद मुसलमान कहीं दगा-फसाद न कर दठे।

बदरुद्दीन पर काम का दबाव [illegible] और उन जसे दूसर लोगा के वैर के [illegible] का काम दूसरी ओर काग्रेस म [illegible]। [illegible] बात न उन्हें सबसे ज्यादा [illegible] नीव ही नही रखी बल्कि [illegible] इस्लाम मे ही मतभेद [illegible]

हमेशा की तरह [illegible] करने का अजुमन का [illegible] हुई और उसम [illegible]

मुहम्मद हुसन हकीम और खान बहादुर गुलाम महम्मद मुन्शी इन दो सदस्यों ने प्रस्ताव का समर्थन करते हुए सुझाव रखा कि प्रतिनिधियों के लिए और भी समर्थन प्राप्त करने की दृष्टि से इस काम के लिए सार्वजनिक सभा की जाए। इसके अनुसार 5 अगस्त 1888 को सभा रखी गई। परन्तु उससे पहले 2 और 4 अगस्त को ही स्वयं इन्हीं सज्जनों ने सभाएं आयोजित कर ऐसे प्रस्ताव पास करवाए जिनमें मुसलमानों को कांग्रेस से अलग रहने का आह्वान किया गया। इसके अलावा अंजुमन की 5 अगस्त की सभा में अव्यवस्था पैदा की गई और कांग्रेस विरोधी अखबारों ने उन उपद्रवों को खूब बढ़ा चढ़ाकर प्रकाशित किया। तब बदरुद्दीन ने 15 अगस्त को एक अन्य सभा का आयोजन किया जिसका सभापतित्व स्वयं उन्होंने ही किया। अपने भाषण में उन्होंने मुसलमानों के कांग्रेस में भाग लेने का विस्तार से वर्णन किया और बताया कि इस काम में शुरू से ही अंजुमन का किस तरह योगदान रहा है। इसके बाद अन्य मुसलमान नेताओं के साथ हुए अपने पत्र-व्यवहार को उन्होंने पढ़कर सुनाया और अंत में 27 जुलाई को सर्वसम्मति से स्वीकार किए गए प्रस्ताव का उल्लेख किया। इसका नतीजा यह हुआ कि 27 जुलाई वाले प्रस्ताव की पुनः पुष्टि की गई। इस सभा का विवरण बदरुद्दीन ने व्यापक रूप से वितरण कराया, जिससे मुसलमान गलतफहमी के शिकार न हों।

इस सफलता के लिए ह्यूम का सर्वप्रथम उन्हें बधाई देना आशानुरूप ही था। बधाई देते हुए उन्होंने लिखा "यह एक सुखद बात है कि आपने यह बिल्कुल स्पष्ट कर दिया कि एक ओर शिक्षा और कांग्रेस है जबकि दूसरी ओर है अज्ञान और विपक्ष।" यही नहीं ह्यूम ने इस बात पर भी प्रसन्नता व्यक्त की कि आपने सभा का काम ऐसी खूबी से किया कि जो कुछ आप कहना चाहते थे उसमें जितना आवश्यक था उतना ही कहा और बाकी को इच्छा होते हुए भी मन में ही रखा। निश्चय ही आप ऐसे आदमी हैं जिनकी मित्रता पर कोई भी गर्व अनुभव करेगा क्योंकि किसी काम में जब आप प्रवृत्त होते हैं तो उस काम को निश्चित रूप से ऐसी कुशलता और चतुराई से पूरा करते हैं जिस तरह दुनिया का और कोई व्यक्ति नहीं कर सकता। ईश्वर आपकी प्रसिद्धि को चार चांद लगाए। मुझे पूर्ण विश्वास है कि बेपढ़ लिखे अज्ञान मुसलमान

भी इस बात का महसूस किए बिना नही रहेगे कि वस्तुत कौन उनका सर्वो त्तम नेता है।"[5]

इस बीच बदरुद्दीन ने भारत भर के नेताओ के साथ व्यापक पत्र व्यवहार करके अपने विचारो का प्रतिपादन किया। सेन्ट्रल मोहम्मडन एसोसिएशन की एलोर शाखा के मत्री ने 9 सितम्बर 1888 को उन्हें एक पत्र लिखा। इसमे कुछ मुसलमान नेताओ द्वारा मुसलमानो के काग्रेस प्रवेश पर उठाई गई आपत्तियो का हवाला देते हुए उन्होने जानना चाहा कि काग्रेस मे शामिल होने से मुसल मानो का क्या विशेष लाभ होगा ? बदरुद्दीन ने 22 सितम्बर 1888 को उसका जवाब दिया जिसमे उन्होने अपने राजनीतिक लक्ष्य का ऐसा पाडित्यपूर्ण विवेचन किया कि इस दृष्टि से काग्रेस मे सभापति पद से दिए गए भाषण के बाद उसी को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। (पत्र के लिए देखिए परिशिष्ट 10) चूकि विवाद के विषय तब तक शायद स्पष्ट हो चुके थे उसमे उनके राजनीतिक दृष्टिकोण का विशेष व्यापक विवेचन है। काग्रेस के योगदान मे प्रबुद्ध दिलचस्पी लेने के लिए एलोर के मुसलमानो को बधाई देते हुए बदरुद्दीन ने इसमे लिखा था

> 'काग्रेस का आन्दोलन हिन्दुओ द्वारा शुरू नही किया गया है बल्कि भारत की विभिन्न जातियो के सर्वाधिक बुद्धिमान प्रतिनिधियो के सयुक्त विचार विनिमय का परिणाम है। यह साधारण राजनीतिक सस्था अजुमन जैसी ही है केवल इसका क्षेत्र बहुत व्यापक है और किसी खास प्रान्त तक ही यह सीमित नही है। बल्कि समस्त भारतीय समुदाय की इच्छाओ और काई आकाक्षाओ का प्रतिनिधित्व करने का इच्छुक है। धर्म का इससे कोई सम्बध नही है।

बदरुद्दीन के निन्दक उनकी जो यह आलोचना करते है कि 'धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रीयता के आदर्श मे उनका विश्वास नही था उनके लिए यह एक करारा जवाब है। इससे उनके झूठ का पर्दाफाश हो जाता है। स्पष्ट है कि भारत की विभिन्न जातियो का उल्लेख उन्होने केवल 'समस्त भारतीय समुदाय' के

---

1 सोर्स मेटीरियल फार ए हिस्ट्री आफ दि फ्रीडम मूवमेंट इन इडिया, जिल्द 2, (1885 1920) पृष्ठ 75। बदरुद्दीन तयब जी (हुसेन बी० तैयबजी की) पृष्ठ 214 और पृष्ठ 110 भी देखें।

ग्रग के रूप म ही किया । और धम को इस सम्बध मे उन्होंने असगत ही बताया । इसी पत्र मे उन्होंने यह भी लिखा था

'सुशासन प्रशासन म सुधार, वित्त व्यवस्था मे किफायतशारी, करा म कमी न्याय प्रणाली म सुधार और सरकारी नौकरियो म इस देश के निवासियो की ज्यादा भर्ती इत्यादि ऐसे मामल है जिनका सम्ब ध किसी विशेष जाति से ही न होकर हम सभी से है, फिर जाति स चाहे हिन्दू हो या मसलमान अथवा इसाई या पारसी ।

काग्रेस मे शामिल होने से मुसलमानो को क्या लाभ होगा इसके जवाब म बदरुद्दीन न लिखा था

"उन्हे भी वही सुविधाए उपलब्ध होगी जो हिन्दुओ, पारसियो या ईसाइयो को होगी । फिर जो भारत को अपनी मातृभूमि कहते है उन सब का क्या यह कतव्य नही है कि जाति, वण या धम के भेदभाव छोड कर सभी के सामान्य हित के लिए वे मिलजुल कर काम कर ? '

धमनिरपेक्षता का भला इससे श्रेष्ठ और विवेचन क्या हो सकता है ।

बदरुद्दीन ने इस वष जो नडाइया लडी उनम हुई लाभ हानि का उन्होंने शान्तिपूवक लेखा जोखा किया । मद्रास म उन्होंने घोषणा की थी कि काग्रेस के अगले अधिवेशन म प्रतिनिधि की हैसियत से मैं भाग लूगा, परन्तु बाद म उनके मन म विचार उठा कि भाग लेने के बजाए उससे अनुपस्थित रह कर क्या वह अपने उद्देश्य को ज्यादा लाभ नही पहुचाएगे ? अत इस बार म मित्रो से उन्होंने विचार विमश शुरू किया । तलग को भी ऐसा ही लगा कि बदरुद्दीन काग्रेस म भाग न ल यही ज्यादा अच्छा होगा ।[1] स्पष्ट ही बदरुद्दीन का उद्देश्य पीछे हटना नही था, बल्कि यही वह चाहते थे कि विवाद की गर्मी

1 बदरुद्दीन तयबजी लेखक हुसेन बी० तयबजी पृष्ठ 223 ।

कम हो जाए। परन्तु ह्यूम की यह बात बिलकुल नहीं भाई और कांग्रेस अधिवेशन में भाग लेने के अपने पहले निर्णय पर ही डटे रहने की उन्होंने बदरुद्दीन से कहा।[7] बदरुद्दीन उस समय मायेरान में थे। ह्यूम की सलाह पर पूरी तरह विचार करके 27 अक्तूबर 1888 को उन्होंने जवाब दिया

'निम्नतर कांग्रेस के एक उत्साही मित्र के रूप में ही मैं आपको यह पत्र लिख रहा हूं जिसके मन में उसकी सफलता का विचार ही सर्वोपरि है। मुसलमानों की हलचलों पर आपकी नजर तो निस्सन्देह रही है परन्तु फिर भी उनकी भावनाओं की जितनी जानकारी मुझे है उतनी शायद आपको नहीं है। फिर इस सम्बन्ध में मैं विभिन्न जातियों के ऐसे विचारशील व्यक्तियों से भी विचार विनिमय करता रहा हूं जो सभी कांग्रेस के पक्षपाती हैं। इसलिए इस समय जो कुछ मैं लिख रहा हूं उसमें मेरे और बम्बई के अन्य प्रमुख मुसलमानों के ही विचारों की ध्वनि नहीं है बल्कि मेहता, तेलंग जैसे अन्य व्यक्तियों का भी ऐसा ही विचार है। हम सभी का मत है कि मुसलमानों के विरोधी रुख को देखते हुए जो नित्यप्रति अधिक से अधिक उग्र और स्पष्ट होता जा रहा है कांग्रेस के मित्रों प्रवक्ताओं और समर्थकों को सारी स्थिति पर पुनर्विचार करना चाहिए कि वर्तमान परिस्थिति में हर साल कांग्रेस के अधिवेशन करते रहना उचित है या नहीं।' मेरा अपना विचार तो यह है कि ऐसा करने से जो लाभ होता है वह हर साल उसमें पैदा होने वाली फूट और कटुता के मुकाबले कम ही है। (देखिए परिशिष्ट 11)

बदरुद्दीन ने सुझाव दिया

'प्रयाग में होने वाले कांग्रेस के अधिवेशन को तो मैं चाहूंगा कि यथा

---

7 सोर्स मेटीरियल फार ए हिस्ट्री आफ दि फ्रीडम मूवमेंट इन इंडिया जिल्द 2 (1885 1920) पृष्ठ 80

सम्भव खूब सफल बनाया जाए, परन्तु उसके बाद कम से कम चार वर्ष के लिए कांग्रेस के अधिवेशन स्थगित कर दिए जाएं। इससे हमें सारी स्थिति पर पुनर्विचार का अवसर मिलेगा और इस हलचल को बंद करना चाहें तो प्रतिष्ठा के साथ ऐसा कर सकेंगे। साथ ही अपने उस कार्यक्रम को अमल में लाने का काफी समय भी मिलेगा जो पहले ही बहुत व्यापक हो चुका है। पांच वर्ष के बाद परिस्थिति में सुधार हो तो अपनी कांग्रेस को हम फिर से शुरू कर सकेंगे। और ऐसा न हुआ तो, यह सोचकर कि भारत की उन्नति और विभिन्न जातियों को संयुक्त करने के लिए हमने अपने भरसक प्रयत्न किए सम्मान के साथ उसका अंत कर देंगे।

स्पष्ट ही अंजुमन में पड़ी फूट का यह परिणाम हुआ था जिससे उनको बहुत वेदना हुई और वह दुविधा में पड़ गए थे।

लेकिन ह्यूम बदरुद्दीन की बातों से सहमत नहीं हुए। 5 नवम्बर 1888 के अपने पत्रों में उन्होंने आंकड़े देकर बताया कि जबकि अवध और पश्चिमोत्तर प्रांत (उत्तर प्रदेश) के मुसलमान कांग्रेस के खिलाफ हैं पंजाब, बिहार, पूर्वी बंगाल और मद्रास के मुसलमान कांग्रेस के साथ है।[8] यह उल्लेखनीय है कि बदरुद्दीन के 27 अक्तूबर 1888 के पत्र के बावजूद अंजुमन उनके नेतृत्व में कांग्रेस के लिए प्रतिनिधि चुनने के 15 के अगस्त के अपने निर्णय पर कायम रही। 5 दिसम्बर को प्रतिनिधि चुनने के लिए उसकी बैठक हुई। यह जरूर है कि बैठक में गड़बड़ी हुए बिना न रही और उसे स्थगित करना पड़ा। आखिर 11 दिसम्बर 1888 को बदरुद्दीन उनके भाई अमीरुद्दीन अब्दुल्ला एम० धरमसी और श्री (बाद में) सर फजलभाई विश्राम कांग्रेस के लिए अंजुमन के प्रतिनिधि चुने गए। परन्तु ऐसा 9 के विरुद्ध के 11 अल्प बहुमत से ही हो सका। बदरुद्दीन यथार्थवादी थे। इसलिए इसकी उपेक्षा नहीं कर सकते थे। इसीलिए

---

8 सोर्स मेटीरियल फार ए हिस्ट्री आफ दि फ्रीडम मूवमेंट इन इंडिया जिल्द 2 (1885 1920) पृष्ठ 85।

उसके बाद करीब-करीब पूरी तरह वह मुसलमानों में शिक्षा प्रसार और उनके सामाजिक अभ्युत्थान के ही काम में लग गए।

1888 के काग्रेस अधिवेशन में बदरुद्दीन शामिल नहीं हुए। खुद उनकी अपनी सस्था अजुमन-ए इस्लाम की हालत भी बिगड रही थी। उनके भाई कमरुद्दीन मत्यु शय्या पर पडे थे और रोगी जिन पर वह कमरुद्दीन का उत्तराधिकारी होने की आशा लगाए हुए थे, मानसिक रोग से पीडित थे। इन सब कठिनाइयों के होते हुए भी अजुमन या उन्नति ही कर रही थी। 30 मार्च 1890 को उसके उस भवन की नीव पडी जिसमें आजकल उसका कार्यालय है और 27 फरवरी 1893 को उसका उदघाटन हुआ। इस बीच कमरुद्दीन और रोगी दोनों परलोक सिधार चुके थे। उनके बिछोह से बदरुद्दीन को निश्चय ही बहुत अकेलापन लगने लगा होगा, क्योंकि इस महान सस्था की स्थापना और इसके निर्माण में उनको इन्हे बहुत सहारा था। उन्ही के सहयोग से बदरुद्दीन ने अनेक महत्वपूण काय किए।

राजनीति से अलग हो जाने पर शिक्षा और समाज सुधार पर ही बदरुद्दीन का सारा ध्यान केंद्रित हुआ। वाइसराय की कौंसिल के विधि सदस्य सर एण्ड्रयू स्कोबल कानून में ऐसा सशोधन करना चाहते थे जिससे विवाह के लिए स्वीकृति की अवस्था 10 वर्ष से बढा कर 12 कर दी जाए और यह न्यूनतम वय प्राप्त करने से पहले लडकी को पति के पास भेजना दडनीय अपराध हो। बैरामजी मलाबारी, रानाडे और तेलग जैसे महारथियों ने इसका समर्थन किया, जबकि लोकमान्य तिलक विरोध करने वालों मे अग्रगण्य थे। मुस्लिम मत विभक्त था और बहुमत परिवर्तन के विरुद्ध था। बदरुद्दीन ने हमेशा की तरह सोत्साह सशोधन का समर्थन किया। टाइम्स आफ इडिया *(10 मार्च 1891) के अनुसार अजुमन-ए इस्लाम की ओर से 8 मार्च 1891* को इस सम्बन्ध में एक सार्वजनिक सभा की गई। अध्यक्ष के आसन से भाषण करते हुए बदरुद्दीन ने मुस्लिम ला की दृष्टि से प्रस्तावित विधेयक का विश्ले-

पण किया ग्रार बताया कि मस्लिम ला इसम किसी तरह बाधक नही है। फलत सभा न प्रस्तावित सशोधन का इस्लाम के सिद्धाता के अनुकूल बताकर उनका समथन किया और बाद म प्रस्ताव म जो कुछ कहा गया था उसी के अनुसार अजुमन की ग्रार से एक ज्ञापन भी सरकार का इस सम्बन्ध म भेजा गया।

न्यायदान म बदरुद्दीन जो प्रणाली अपनाते थे उसके बारे म स्वय उन्होंने कहा है

'मेरे पास जब कोई ऐसा मुकदमा आता है जिसमे कानून की बात हो, तब मैं केवल मुकदमे से सम्बन्धित कानून तक ही अपने को सीमित न रख कर, कानून के सामान्य सिद्धान्तो की दृष्टि से निष्कष निकालता हू और ऐसा करने के बाद यानी किसी निष्कष पर पहुच लेने पर उस मुक्दम से सम्बन्धित कानून पर केवल इस दृष्टि से ध्यान देता हू कि जिस निष्कष पर मैं पहुचा हू वह वस्तुत सही है या नही ।"[1]

वह एसे न्यायाधीश थ जो न्यायालय की कारवाई पर पूरा नियन्त्रण रखते और निणय पर शीघ्र पहुच जात थे । इसीलिए, एक अन्य वकील के शब्दो म, "वह शक्तिशाली न्यायाधीश थे ।' किसी भी मामले का तह तक वह तुरत पहुच जात और उनक फसल स्पष्ट प्रतिपादन के आदश नमून हैं । यो स्वभाव स वह तुनुकमिजाज थ और कठोर कारवाई स घबराने वाले नही थे, फिर भी उनके बारे म कहा गया है कि, 'न्यायधीश के रूप मे बदरुद्दीन के सौजन्य की वकीलो पर बडी छाप थी, क्योकि स्पष्ट ही उनम अधिक सौजन्य और अनुग्रह अन्य किसी न्यायाधीश म मिलना सम्भव नही था ।'

न्यायाधीश के पद पर जब बदरुद्दीन की नियुक्त हुई ता सभी न उसक स्वागत किया था । औरो क अलावा श्री (बाद म सर) चिमनलाल शीतल वाद, हैदराबाद के निजाम, श्री एम० पालक (जिन्हान स्वय भी बाद म महान विधिवत्ता के रूप म ख्याति पाई), लाड रे और श्री मातीलाल एम० मुशी न भी उन्हे बधाइ पत्र भज थ । इस सम्बन्ध म सवसम्मत भावना की अभिव्यवित 'रास्त गुफ्तार' बम्बई) के सम्पादक ने इस प्रकार की था 'यह महान-सम्मान आपकी जाति और मरे पुरान मित्र तयबजी भाइ मिया का ही नही है,

---

1 बाम्बे ला रिपोट र, जिल्द 8 (1906), जनरल पृष्ठ 251

र

9

महान न्यायाधीश

कानून के क्षेत्र म भारत ने अनक एस व्यक्ति पैदा किये जिन्होने महान वकील या महान न्यायाधीश के रूप म खूब ख्याति अर्जित की, परन्तु एसे बहुत कम हुए जा वकील और न्यायाधीश दोना रूपा म चमके। बदरुद्दीन तयवजी ऐसे ही विरलो म थे। जहा तक वकालत का सवाल है वह बार (वकील समुदाय) के नेताओ म थे और जिरह म एसे निपुण कि विपक्ष उनसे भय खाता था। व्यक्तित्व भी एसा प्रभावशाली कि आदर भाव के साथ साथ भय भी पदा करता। परन्तु उनकी ख्याति यही तक सीमित नही रही बल्कि भारत के वस्तुत महान न्यायाधीशा म भी उनकी गणना की जाती है।

न्यायाधीश के रूप म उन्हान जो इतनी प्रतिष्ठा पाई वह अपन प्रकाण्ड कानूनी ज्ञान के कारण ही नही, बल्कि उनक प्रभावशाली व्यक्तित्व, सहज व्यवहार बुद्धि और तीव्र स्वतन्त्र चिन्तन का भी उसम बडा योगदान रहा। वकील लोग न्यायाधीशो की सामान्यत दो श्रेणिया करते हैं—एक तो कार्य प्रणाली के पाबन्द और दूसरे समत्व बुद्धि वाले। प्रथम श्रेणी वाला का ज्यादा ध्यान इस बात पर रहता है कि नियम की खानापूरी म कोई कसर न रहे और इसीलिए वे वकीला के प्रिय पात्र होत ह जबकि बदरुद्दीन जसे दूसरी श्रेणी वाले एक-मात्र इस बात का देखत है कि न्यायदान के लिए अपनाई गई प्रक्रिया का परिणाम वास्तविक न्याय प्राप्ति ही हो।

चल जाता है, परतु अग्रेज इस चतुराई से सत्य का आडम्बर करते है कि उनके कथन मे झूठ का मुश्किल से ही पता चलता है। लेकिन यह नही कहा जा सकता कि अग्रेज गवाह झूठ नही बोलते, बल्कि नित्यप्रति के अनुभव से यह उल्टी बात है।[1]'

एक बार मुस्लिम वक्फ के एक मामले म एडवोकेट जनरल मि० लग ने कहा कि इस सम्बन्ध म मुसलमानो की शरीयत का कोई प्रमाण मुझे नही मिल सका तो न्यायपीठ से बदरुद्दीन ने कहा, एडवोकेट जनरल साहब, मुस्लिम कानून के अनुसार हुए फैसलो की रिपोर्टों म ऐसी कोई बात नही मिली, यह कहना मुस्लिम कानून की शान और प्रतिष्ठा मे बट्टा लगाना है।" इस पर एडवोकेट जनरल ने माफी मागते हुए कहा कि मेरा आशय यह नही था कि ऐसा प्रमाण उपलब्ध नही है बल्कि यह कि मेरे लिए उसका पता लगाना मुश्किल है।

न्यायाधीश के रूप मे बदरुद्दीन का डा० मुकदराव जयकर ने सुदर चित्रण किया है, जो स्वय बहुत बडे विधिवेत्ता थे। उनके अनुसार

> "शिष्ट के साथ वह भी वैसी ही शिष्टता बरतते, परन्तु अशिष्ट और अभिमानी को बुरी तरह झिडकने मे भी उन्हे सकोच नही होता था। मेरे समय म कुछ ऐसे कुपात्र वकील भी थे जो अपनी योग्यता की बजाय अपनी चमडी के रग की बदौलत पनप रहे थे। ऐसे वकीलो के उनके इजलास म बिना तयारी के आने पर उनकी अयोग्यता का परदा-फाश हुए बिना न रहता, जिस पर गुस्से से तमतमाते उनके चेहरो को देखना भी एक ही दृश्य था।' (पूरा विवरण परिशिष्ट 12 मे)

एक बार उनके इजलास म किसी वकील ने काग्रेस के सम्बन्ध म कोई अपमानजनक बात कही। इस पर जस्टिस तैयबजी ने कडी और जोरदार

1 बाम्बे ला रिपोर्टर जिल्द 8 (1906), जरनल पृष्ठ 251

आवाज में कहा, मैं कांग्रेस का सभापति रह चुका हूं। उसे हमेशा मैंने अपना सर्वोच्च सम्मान माना है न्यायाधीश होने से भी अधिक। कांग्रेस और उससे सम्बन्धित भारतीय देशभक्ता के लिए मेरे मन में बड़ा आदरभाव है। वकील महोदय मैं स्पष्ट कह देना चाहता हूं कि उसके प्रति कोई अपमानजनक बात यहां नहीं कहने दी जाएगी।'

न्यायाधीश के रूप में बदरुद्दीन की स्वतन्त्र भावना की शायद सबसे शानदार कसौटी लोकमान्य तिलक के सुप्रसिद्ध मुकदमे के वक्त हुई। पूना में प्लेग का प्रकोप था और बम्बई सरकार आतंकित हो रही थी। इलाज की समुचित व्यवस्था के अभाव की पूर्ति करने के बजाय इस सम्बन्ध में हुई किसी भी आलोचना में राजद्रोह की गंध ढूंढ कर आलोचकों को कुचलने की उसने नीति बना रखी थी। ऐसे आलोचकों में लोकमान्य तिलक प्रमुख थे जिन्होंने अपने सम्पादकत्व में निकलने वाले पत्र 'केसरी' में ऐसी एक लेखमाला ही लिखी थी। फलत उन्हें गिरफ्तार कर राजद्रोह के अपराध में बम्बई हाईकोर्ट में उन पर मुकदमा चलाया गया। उनकी तरफ से दी गई जमानत की दरखास्त चीफ प्रेसिडेन्सी मजिस्ट्रेट द्वारा खारिज कर दी गई थी। हाईकोर्ट की डिवीजन बेंच में—जिसमें जस्टिस पारसन्स और जस्टिस रानाडे थे दी गई दरखास्त भी नामंजूर हो गई। मजिस्ट्रेट की अदालत में मुकदमा पेश करने की कारवाई पूरी होते ही लोकमान्य तिलक के वकील श्री डी० डी० दावर ने उसी बीच में फिर जमानत की दरखास्त दी, परन्तु फिर भी असफलता ही मिली। इसके कुछ दिन बाद जब फौजदारी का काम बदरुद्दीन के पास आया श्री दावर ने लोकमान्य तिलक को जमानत पर छुड़ाने का चौथी बार प्रयत्न किया। दलील यह दी कि उन्हें जमानत पर नहीं छोड़ा गया तो अदालत में चल रहे मुकदमे में अपना बचाव करने में उन्हें बड़ी रुकावट पड़ेगी। बदरुद्दीन ने जमानत मंजूर करने का फैसला दिया, जिस पर स्वभावत बड़ा सनसनी मची।

फैसले के तात्कालिक प्रभाव के अलावा इसलिए भी वह उल्लेखनीय है कि अभियुक्त की जमानत मंजूर करने के लिए किन सिद्धान्तों से काम लेना

चाहिए इसका उसमे विस्तत विवेचन है।[1] जस्टिस तयबजी ने जो फैसला दिया उसमे लिखा, 'श्री तिलक जसी प्रतिष्ठा वाला कोई भद्र पुरुष पेशी पर हाजिर नही होगा, ऐसा मैं नही मान सकता। इसके विपरीत मुझे यह स्पष्ट *लगता है कि मैं जमानत मजूर करने से इकार करू तो उससे न्याय का उद्देश्य* ही विफल हा जायेगा, क्योकि यह भी सम्भव है कि उन्हे एक महीने गिरफ्तार रखने के बाद मुकदम का जो फैसला हो उसमे वह निर्दोष सिद्ध हा। इसलिए मेरे खयाल म अभियुक्त को जमानत पर रिहा करना ही न्यायोचित है।[2]

दूसरा उल्लेनीय फैसला केशवजी ईसर बनाम जी० आइ०पी० रेलवे कम्पनी वाले मुकदम मे दिया गया।[3] प्रिवी कौंसिल न उसे बदरुदीन तयबजी द्वारा *किया गया बढिया फसला बताया था। उस मुकदमे म मुददई ने जी०आइ०पी०* रेलवे पर इसलिए हरजाने का दावा किया था कि उसकी लापरवाही स उस चोट लगी। मुददई रेल म बम्बई से सियन स्टेशन जा वहा था। रेलगाडी सियन के प्लेटफाम से आगे जा कर रुकी और सभी यात्री जहा गाडी रुकी वही उतर, क्योकि वहा गाडी रोकन का अथ ही यह था कि यात्रियो का वही उतारने की रेलवे की मर्जी थी। अधेरा हो चुका था और आस-पास राशनी की काई व्यवस्था नही थी, न यात्रिया को एसी काई चेतावनी ही दी गई कि गाडी प्लेटफाम से आगे निकल गई है। अधेरे की वजह से मुददई पर फिसलने स बुरी तरह गिर पडा जिससे गम्भीर चोट आई और वह कामकाज के नाकाबिल हो गया। बदरुद्दीन न, जिनके इजलास म यह मुकदमा चला फसले म हरजाने के तौर पर मुददई का 24,000 रुपय दन का हुक्म दिया। इस फमले पर प्रिवी कौसिल ने *कहा था कि इसमे 'सबूत का सावधानी से* पूरी तरह विश्लेषण किया गया है।

---

1 निगलेक्टेड जजमेट बाम्बे लारिपरोट र, जिल्द 8 (1906) जरनल पृष्ठ 253।

2 बदरुद्दीन तयबजी लेखक हुसेन बी० तयबजी पृष्ठ 290।

3 बाम्बे ला रिपोट र पृष्ठ 671।

आवाज में कहा मैं कांग्रेस का सभापति रह चुका हूं। उसे हमेशा मैंने अपना सर्वोच्च सम्मान माना है न्यायाधीश होने से भी अधिक। कांग्रेस और उससे सम्बन्धित भारतीय देशभक्तों के लिए मेरे मन में बड़ा आदरभाव है। वकील महोदय, मैं स्पष्ट कह देना चाहता हूं कि उसके प्रति कोई अपमानजनक बात यहां नहीं कहने दी जाएगी।'

न्यायाधीश के रूप में बदरुद्दीन की स्वतन्त्र भावना की शायद सबसे शानदार कसौटी लोकमान्य तिलक के सुप्रसिद्ध मुकदमे के वक्त हुई। पूना में प्लेग का प्रकोप था और बम्बई सरकार आतंकित हो रही थी। इलाज की समुचित व्यवस्था के अभाव की पूर्ति करने के बजाय इस सम्बन्ध में हुई किसी भी आलोचना में राजद्रोह की गंध ढूंढ कर आलोचकों को कुचलने की उसने नीति बना रखी थी। ऐसे आलोचकों में लोकमान्य तिलक प्रमुख थे जिन्होंने अपने सम्पादकत्व में निकलने वाले पत्र 'केसरी' में ऐसी एक लेखमाला ही लिखी थी। फलतः उन्हें गिरफ्तार कर राजद्रोह के अपराध में बम्बई हाईकोर्ट में उन पर मुकदमा चलाया गया। उनकी तरफ से दी गई जमानत की दरख्वास्त चीफ प्रेसिडेन्सी मजिस्ट्रेट द्वारा खारिज कर दी गई थी। हाईकोर्ट की डिवीज़न बेंच में —जिसमें जस्टिस पारसंस और जस्टिस रानाडे थे दी गई दरख्वास्त भी नामंजूर हो गई। मजिस्ट्रेट की अदालत में मुकदमा पेश करने की कारवाई पूरी होते ही लोकमान्य तिलक के वकील श्री डी० डी० दावर ने उसी वक्त में फिर जमानत की दरख्वास्त दी, परन्तु फिर भी असफलता ही मिली। इसके कुछ दिन बाद जब फौजदारी का काम बदरुद्दीन के पास आया, श्री दावर ने लोकमान्य तिलक को जमानत पर छुड़ाने का चौथी बार प्रयत्न किया। दलील यह दी कि उन्हें जमानत पर नहीं छोड़ा गया तो अदालत में चल रहे मुकदमे में अपना बचाव करने में उन्हें बड़ी रुकावट पड़ेगी। बदरुद्दीन ने जमानत मंजूर करने का फैसला दिया, जिस पर स्वभावतः बड़ी सनसनी मची।

फैसले के तात्कालिक प्रभाव के अलावा इसलिए भी वह उल्लेखनीय है कि अभियुक्तों की जमानत मंजूर करने के लिए किन सिद्धान्तों से काम लेना

चाहिए इसका उसम विस्तृत विवेचन है।[1] जस्टिस तयवजी न जो फैसला न्िया उसम लिखा, 'श्री तिलक जसी प्रतिष्ठा वाला कोई भद्र पुरुप पेशी पर हाजिर नही होगा, एसा मैं नही मान सकता। इसक विपरीत मुझे यह स्पष्ट लगता है कि मैं जमानत मजूर करन स इन्कार करू ता उससे न्याय का उददेश्य ही विफल हो जायेगा, क्योकि यह भी सम्भव है कि उन्ह एक महीने गिरफ्तार रखने के बाद मुकदम का जो फसला हा उसम वह निर्दोष सिद्ध हा। इसलिए मेर खयाल म अभियुक्त को जमानत पर रिहा करना ही न्यायोचित है।[2]

दूसरा उल्लेखनीय फसला केशवजी ईसर बनाम जी० आइ०पी० रलवे कम्पनी वाल मुकदमे म दिया गया।[3] प्रिवी कौंसिल न उसे बदरुद्दीन तैयबजी द्वारा किया गया बढिया फसला बताया था। उस मुकदमे म मुददई न जी०आई०पी० रलवे पर इसलिए हरजाने का दावा किया था कि उसकी लापरवाही स उस चोट लगी। मुद्दई रेल म बम्बइ स सियन स्टशन जा रहा था। रेलगाडी सियन क प्लटफाम स आगे जा कर रुकी और सभी यात्री जहा गाडी रुकी वही उतर, क्योकि वहा गाडी रोकन का अर्थ ही यह था कि यात्रिया का वही उतारने की रेलवे की मर्जी थी। अधरा हा चुका था और आस-पास राशनी की कोई व्यवस्था नही थी, न यात्रिया को एसी काई चतावनी ही दी गई कि गाडी प्लटफाम स आगे निकल गई है। अ धेरे की वजह से मुददइ पर फिसलने स बुरी तरह गिर पडा जिसस गम्भीर चोट आई और वह कामकाज के नाकाबिल हो गया। बदरुददीन न जिनके इजलास म यह मुकदमा चला फसले म हर-जाने के तौर पर मुददई का 24 000 रुपय दन का हुक्म दिया। इस फसले पर प्रिवी कौंसिल ने कहा था कि इसम सबूत का सावधानी से पूरी तरह विश्लेषण किया गया है।

---

1 निगलेक्टेड जजमेंट, बाम्बे लारिपोर्टर जिल्द 8 (1906) जरनल पृष्ठ 253।

2 बदरुद्दीन तयबजी लेखक हुसेन बी० तयबजी पृष्ठ 290।

3 बाम्बे ला रिपोर्टर पृष्ठ 671।

आवाज म कहा, मै कांग्रेस का सभापति
सर्वोच्च सम्मान माना है न्यायाधीश ह
सम्बन्धित भारतीय देशभक्ता के लिए
महोदय, में स्पष्ट कह देना चाहता ‍
यहा नही कहन दी जाएगी।"

न्यायाधीश के रूप म बदरुद्दीन
ग्रार कसौटी लोकमान्य तिलक के मु
का प्रकाण था और बम्बई सरका
चित व्यवस्था क अभाव की पूर्ति क
आलोचना म राजद्रोह की गध
नीति बना रखी थी। ऐसे आलोच
अपने सम्पादकत्व म निकलने वा
लिखी थी। फलत उह गिरफ्तार
कोट मे उन पर मुकदमा चलाया
दरखास्त चीफ प्रेसिडेसी मजिस्ट
की डिवीजन बेंच म —जिसम जि
दरखास्त भी नामजूर हो गई।
की कारवाई पूरी होत ही लोकमा
उसी बेंच म फिर जमानत क
मिली। इसक कुछ दिन बाद जय
श्री दावर ने लोकमान्य तिलक
किया। दलील यह दी कि उह
रह मुकदम म अपना बचाव करन
जमानत मजूर करने का फ
मची।

फसल क तात्कालिक प्रभाव
अभियुक्ता की जमानत मजूर

ग्रौर निभय व्यक्ति थ। वीकीना चरिपयन' के सम्पादक चम्बस न रास्त गुफ्तार' के सम्पादक कावराजी के विरुद्ध जा मानहानि का मुकदमा चलाया था, उसमे उन्होंने जा फैसला दिया वह मझे ग्रच्छी तरह याद ह। चम्बस उन दिना एक सुप्रसिद्ध स्थापत्य कलाविन थे। इग्लड की राजनीति म वह उग्रपथी थे ग्रौर काग्रेस की हलचला म सक्रिय भाग लत थ। कावराजी के ग्रखावार म काग्रेस की ग्रनावश्यक ग्रालाचना की गई थी, जिस तयवजी न निराधार ठहराया। यही नही ग्रपन फसल म उन्होंने यह भी कहा कि यह मैं ग्रपन लिए बडे सम्मान की बात मानता हू कि एक बार म काग्रेस का सभापति निर्वाचित हुग्रा था।[1]'

सर चिमनलाल ग्रागे लिखते ह

'लाकमान्य तिलक पर जब 1897 म मक्दमा चलाया गया ता उन्ह जमानत पर रिहा करने का हुक्म बदरुद्दीन न ही दिया था।

एक बार की बात है कि उनक इजलास म जा मुकदमा पश था उसम काय प्रणाली का सवाल पदा हुग्रा। मुकदमे की परवी रक्स कर रह थ। उन्होंने कहा कि चीफ जस्टिस जनकिस न एक ग्रन्य मुकदम म इसी काय-प्रणाली का ठीक बताया था जिस मैं ग्रपना रहा हू। तयवजी न ग्रपनी दाढी पर हाथ फेरत हुए, जैसा वह ग्रक्सर करत थे कहा मि० रेक्स, ग्राप चीफ जस्टिस से मेरे ग्रभिनन्दन के साथ कह सकत ह कि उनकी बनिस्बत मुझे इस न्यायालय म कही ग्रधिक समय काम करत बीता है ग्रौर इस विशेष मामले मे चीफ जस्टिस का कायप्रणाली सम्बन्धी मत बिल्कुल गलत है।[1]

बदरुद्दीन जो कुछ भी लिखत वह प्रतिपादन का ग्रादश नमूना हाता। सालवेशन ग्रार्मी के एक ग्रधिकारा विलियम ब्राउन का उन्होंने डकती के प्रयत्न

---

1 रिकलेक्शन एड रिफ्लेक्शन्स (1946) लेखक सर चिमनलाल सीतलवाद प्रकाशक पद्मा पब्लिकेशन्स बम्बई
रिकलेशन्स एण्ड रिफ्लेक्शन्स

इस मामले में रेलवे कम्पनी ने बदरुद्दीन के फैसले पर इस आधार पर पुनर्विचार करने की प्रार्थना की कि मुकदमे के बाद उसे नये सबूत मिले हैं, जिनके अनुसार मुद्दई के एक कर्मचारी ने बताया है कि उसकी रोजी जिन कारणों से गई है उनका रेल-दुर्घटना से कोई सम्बन्ध नहीं है जब कि मुद्दई ने शपथपूर्वक यह कहा था कि दुर्घटना के ही कारण उसका नुकसान हुआ। बदरुद्दीन ने पुनर्विचार की दरख्वास्त नामजूर कर दी। तब रेलवे कम्पनी ने अपील की, अपील कोर्ट ने दरख्वास्त मंजूर कर पुनर्विचार का हुक्म दिया। अपील अदालत में कई गवाहियाँ हुई। न्यायाधीश ने घटनास्थल का निरीक्षण ही नहीं किया बल्कि जिस रूप और जिस दिशा में घटना हुई होगी उसकी नकल की गई। इस सबके बाद अपील अदालत इस निर्णय पर पहुंचा कि मुद्दई के साथ जो दुर्घटना हुई वह उसकी अपनी असावधानी से ही हुई, कम्पनी की उसमें कोई जिम्मेदारी नहीं। इस निर्णय के विरुद्ध मुद्दई बेजनजी ईसर ने प्रिवी कौंसिल में अपील की। प्रिवी कौंसिल ने अपील अदालत के निर्णय को रद्द कर जस्टिस तैयबजी के फैसले को बहाल ही नहीं किया नई साक्षियाँ मंजूर करने और घटनास्थल का निरीक्षण करने के लिए अपील अदालत की बड़ी आलोचना भी की।

न्यायाधीश के अपने दायित्व को बदरुद्दीन कितना गम्भीर मानते थे, यह 5 दिसम्बर, 1896 को अपने पुत्र हुसैन को लिखे उनके पत्र से स्पष्ट है "पार्लियामेंट के मेम्बर भावनगरी बम्बई में हैं। कल सायंकाल मुस्लिम समाज के कुछ लोगों ने उनका स्वागत सत्कार किया था। यद्यपि वह मेरे निजी मित्र हैं फिर भी स्वागत सत्कार के राजनीतिक रूप को देखते हुए मैं उसमें नहीं गया। आज रात उनके सम्मान में भोज है। उसमें मैं जाऊंगा क्योंकि वह शुद्ध रूप से सामाजिक और निजी है।

सर चिमनलाल सीतलवाद ने अपने संस्मरणों में न्यायाधीश के रूप में बदरुद्दीन की निर्भयता और उनकी स्वतंत्रता के दो उदाहरण दिये हैं

न्याय के सिद्धान्तों को बदरुद्दीन अच्छी तरह समझते थे और साक्षियों का नीर-क्षीर विवेक करने में सिद्धहस्त थे। वह बड़ी स्वतन्त्र प्रकृति के

और निर्भय व्यक्ति थे। 'बॉम्बे क्रॉनिकल' के सम्पादक हॉर्निमन ने रास्त गुफ्तार के सम्पादक काबराजी के विरुद्ध जो मानहानि का मुकदमा चलाया था, उसमें उन्होंने जो फैसला दिया वह मुझे अच्छी तरह याद है। चैम्बर्स उन दिनों एक सुप्रसिद्ध स्थापत्य कलाविद थे। इंग्लैंड की राजनीति में वह उग्रपंथी थे और कांग्रेस की हलचलों में सक्रिय भाग लेते थे। काबराजी के अखबार में कांग्रेस की अनावश्यक आलोचना की गई थी, जिसे तयबजी ने निराधार ठहराया। यही नहीं अपने फैसले में उन्होंने यह भी कहा कि यह मैं अपने लिए बड़े सम्मान की बात मानता हूं कि एक बार मैं कांग्रेस का सभापति निर्वाचित हुआ था।[1]

सर चिमनलाल आगे लिखते हैं

"लोकमान्य तिलक पर जब 1897 में मुकदमा चलाया गया तो उन्हें जमानत पर रिहा करने का हुक्म बदरुद्दीन ने ही दिया था।

"एक बार की बात है कि उनके इजलास में जो मुकदमा पेश था उसमें कार्य प्रणाली का सवाल पैदा हुआ। मुकदमे की पैरवी रक्स कर रहे थे। उन्होंने कहा कि चीफ जस्टिस जेनकिंस ने एक अन्य मुकदमे में इसी कार्य-प्रणाली को ठीक बताया था जिसे मैं अपना रहा हूं। तयबजी ने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए, जैसा वह अवसर करते थे, कहा मि० रक्स, आप चीफ जस्टिस से मेरे अभिनन्दन के साथ कह सकते हैं कि उनकी बनिस्बत मुझे इस न्यायालय में कहीं अधिक समय काम करते बीता है और इस विशेष मामले में चीफ जस्टिस का कार्यप्रणाली सम्बन्धी मत बिल्कुल गलत है।[1]"

बदरुद्दीन जो कुछ भी लिखते वह प्रतिपादन का आदर्श नमूना होता। सालवेशन आर्मी के एक अधिकारी विलियम ब्राडी को उन्होंने डकैती के प्रयत्न

---

1 रिकॉलेक्शंस एंड रिफलेक्शंस (1946) लेखक सर चिमनलाल शीतलवाद प्रकाशक पद्मा पब्लिकेशंस, बम्बई
रिकलेक्शंस एंड रिफलेक्शंस

ग्रीर हत्या के एस दण्डनीय अपराध मा जिसम मत्यु होने स रह गई सात साल सख्त कद की सजा दी। सालवदान आर्मी के अन्तर्राष्ट्रीय सदर मुकाम ने उस पर गवनर स क्षमा दान की प्राथना की। गवनर ने उस पर निणय करने से पहले बदरुद्दीन के पास उनकी राय जानन क लिए उसे भेज दिया। बदरुद्दीन का जवाब था मुझे लगता है कि यह अर्जी क्षमादान की प्राथना के बजाय जूरी क निष्कष और न्यायालय क फसल की अपील है आवदन पत्र म मुझे एमा कुछ नहीं लगा जिसस मेरी राय म क्षमादान का न्यायोचित कहा जा सके।' और यह राय पा कर गवनर न क्षमादान की प्राथना अस्वीकार कर दी।

---

1 बदरुद्दीन तयबजी लेखक हुसेन बी० तयबजी पष्ठ 285

10

शिक्षा और राजनीति

दक्षिण अफ्रीका मे भारतवासियो के साथ जसा अपमानजनक व्यवहार हो रहा था, भारत म उस पर तीव्र रोष स्वाभाविक था। जनता के इस रोष को सावजनिक रूप से प्रकट करने के लिए बाम्बे प्रेसिडेंसी एसोसियेशन और अजुमन-ए इस्लाम के सयुक्त तत्वावधान मे सावजनिक सभा का प्रस्ताव किया गया। लेकिन अजुमन का इस समय जो हाल था उसको देखते हुए इसम कोई आश्चय की बात नही कि उसम इसका विरोध किया गया। तब प्रस्तावित सभा के विरोधियो की बदरुद्दीन ने कडी भत्सना की। इस अवसर का लाभ उठाकर उन्होने कहा कि किसी जाति विशेष के बजाय सभी भारतीयो के हित और अधिकारो का यह सवाल है जिसम अन्य जातिवालो के साथ-साथ मुसलमानो को भी कधे से कधा मिलाकर काम करना चाहिए। उनके ऐसे रुख से सयुक्त सभा का प्रस्ताव तो मजूर हो गया, परतु कुछ अन्य कारणो से वह सभा हो नही पाई।

बदरुद्दीन बहुत विशाल हृदय व्यक्ति थे। निजी जीवन मे ही नही, सावजनिक क्षेत्र मे भी उनकी इस विशेषता का भरपूर परिचय मिलता है। 27 माच, 1898 को सर सयद अहमदखा का देहान्त हुआ, जो उनके कट्टर विरोधी थे। बरसो तक वह बदरुद्दीन को मानसिक सताप पहुचाते रहे थे। फिर भी उनकी मृत्यु पर बदरुद्दीन ने अजुमन की शोक-सभा की और शिक्षा के क्षेत्र म सर सयद द्वारा की गइ सेवाओ की सराहना भी की।

---

1 बदरुद्दीन तयबजी, लेखक हुसेन बी० तयबजी, पृष्ठ 257 59

यही नही सर सयद के सम्मान म अलीगढ़ कालेज को विश्वविद्यालय म परिणत करने के प्रस्ताव का भी उन्होंने उत्साहपूर्वक समर्थन किया। 5 दिसबर, 1896 के नवाब मोहसिन उल मुल्क के पत्र का जवाब देते हुए उन्होंने लिखा था

'अलीगढ़ यूनिवर्सिटी सबधी मि० मारिसन की योजना मेरी राय म ठीक है। प्राचीन और धार्मिक शिक्षा स पाश्चात्य शिक्षा को सवथा अलग नही रखना चाहिए। सचमुच यह हमारा बडा दुर्भाग्य रहा है कि हमारे मौलवियो और धर्माचार्यों म जो बडे धुरधर विद्वान हैं व भी अपने धम की शिक्षा के अलावा और सब तरह की शिक्षा स बिल्कुल कोरे रहते है। इसी का परिणाम है कि हमारे मजहबी उस्ताद सकीर्ण हृदय धम ध और कठमुल्ले ह। इसी कारण कोई भी समझदार व्यक्ति उन्हे अच्छी निगाह स नही देखता। इस स्थिति को हमे खत्म करना चाहिए, जिसस भविष्य म हमारे विद्वान वास्तविक रूप म सुशिक्षित और सुसस्कृत हो। दूसरी ओर इस बात को भी मैं उतनी ही महत्वपूर्ण मानता हू कि पाश्चात्य साहित्य, कला और विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने वाले मुसलमान युवक खुद अपनी भाषा अपने साहित्य इतिहास और धम स भी अनभिज्ञ न रहे। इसलिए इस योजना का मैं हृदय स समर्थन करता हू और बडी खुशी से उसके लिए दानस्वरूप 3000 रु० भेजता हू।'

सर सयद अहमदखा न 1890 म माहम्मडन ऐंग्लो ओरियटल एजुकेशनल कानफ्रेंस की स्थापना की थी और वही उसके स्थायी रूप स मत्री बन थे। शुरू म तो उसका क्षेत्र शिक्षा तक ही सीमित था परतु शीघ्र ही वह सर सयद क राजनीतिक विचारो क प्रतिपादन और प्रचार का मच बन गइ, इसमे बदरुद्दीन उसस अलग ही रहे। लकिन सर सयद की मत्यु क पाच वप बाद बदरुद्दीन को उसके 17वें अधिवेशन का सभापतित्व करने के लिए आमत्रित किया गया। 28 दिसम्बर 1903 को बबई म कानफ्रेंस का अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन मे सारे भारत के प्रतिनिधि आए थे, जिनम सुप्रसिद्ध मुस्लिम विद्वान और समाज सुधारक ख्वाजा अलताफहुसैन हाली भी थ। ऐसे प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित मुसलमान इससे पहले और किसी सम्मेलन म शामिल नहीं हुए

थे। मंच पर जिन्हें स्थान दिया गया उनमें बम्बई के गवर्नर लार्ड लैमिंगटन, आगाखां और सर जमशेद जी जीजीभाई भी थे।

सभापति पद से भाषण करते हुए तैयबजी ने राष्ट्रीय आन्दोलन और इस कानफ्रेंस जैसी संस्थाओं सबकी अपनी स्थिति का पूरी तरह स्पष्टीकरण किया। उनके पहले नवाब मोहसिन उलमुल्क ने इस बात का उल्लेख किया था कि बदरुद्दीन को इस कानफ्रेंस में सम्बद्ध करने का उन्होंने इससे पहले भी कई बार प्रयत्न किया परन्तु सफलता नहीं मिली। जैसा कि बदरुद्दीन की मृत्यु के बाद मद्रास स्टैण्डर्ड ने लिखा, हाईकोर्ट का जज बन जाने पर वह कांग्रेस में सक्रिय भाग लेने से हट गए थे।[1] उनके कुछ संकीर्ण हृदय सहधर्मियों ने भी एंग्लोइण्डियनों की सहायता से इस पर यह आमक प्रचार किया कि एक सुप्रसिद्ध मुसलमान नेता की दलीलों से प्रभावित होकर जस्टिस तैयबजी ने कांग्रेस से सम्बंध विच्छेद कर लिया।[1] तैयबजी का इस ओर ध्यान दिलाए जाने पर उन्होंने विभिन्न अवसरों पर उन्होंने इस बात का खंडन किया और कांग्रेस के प्रति अपनी सक्रिय सहानुभूति की पुष्टि की। ऐसा अवसर एक तो इस कानफ्रेंस में ही उन्हें मिला दूसरा अपने इजलास में (23 अगस्त, 1906 को।[2])।

कानफ्रेंस में सभापति पद से दिए गए अपने भाषण में बदरुद्दीन तैयबजी ने कहा

सज्जनो आप इस बात को निस्संदेह जानते होंगे कि इस कानफ्रेंस का अस्तित्व यद्यपि कई वर्षों से है परन्तु इससे पहले इसकी कार्रवाई में मैंने कभी कोई सक्रिय भाग नहीं लिया। इसके अनेक कारण थे जिनका यहां उल्लेख करना अनावश्यक है। फिर भी एक कारण ऐसा है जिसके बारे

---

1 दिनांक 23 अगस्त 1906

2 देखिए पृष्ठ 98

मुझे कुछ कहना ही चाहिए। सज्जनो, आपको शायद कांग्रेस सम्बन्धी मेरी विशेष स्थिति का पता होगा। अपनी युवावस्था में जबकि मैं उन वचनों और उत्तरदायित्वों से बंधा नहीं था जो अपने वर्तमान पद के कारण मेरे ऊपर हैं और सार्वजनिक जीवन में तथा भारतवर्ष की राजनीति में अधिक सक्रिय भाग ले सकता था, कांग्रेस के समर्थन में अपना कर्तव्य समझता था। आपको शायद यह भी पता होगा कि कुछ समय पूर्व मद्रास में हुए कांग्रेस के अधिवेशन का सभापतित्व करने का गौरव भी मुझे प्राप्त हुआ था। उस समय सभापति पद पर अपने चुने जाने को मैंने अपना ऐसा सर्वोच्च सम्मान बताया था जिससे अधिक हमारे देशवासी अपने किसी देशवासी को नहीं दे सकते। उस समय के अपने इस मत के कारण और अभी भी उसी मत का होने से आप अच्छी तरह समझ सकते हैं कि मेरे लिए ऐसी किसी संस्था की किसी भी कार्रवाई में भाग लेना संभव नहीं था जो कांग्रेस के विरुद्ध हो या जिसके बारे में ऐसे संदेह की कोई भी संभावना हो। अब जबकि इस कान्फ्रेंस की स्थिति बिलकुल स्पष्ट कर दी गई है कि शिक्षा और समाज-सुधार तक ही यह सीमित है, दोनों संस्थाओं के बीच विरोध या शत्रुता की कोई संभावना नहीं रही, मैंने बिना किसी संकोच के इसके सभापतित्व का उच्च सम्मान स्वीकार कर लिया है।"[1]

बदरुद्दीन जैसे चतुर व्यक्ति इस बात की कल्पना किए बिना नहीं रह सकते थे कि उनसे भिन्न विचार वाले सभापति होने पर कान्फ्रेंस का

---

1 हिन्दू, (21 अगस्त 1903) ने इस पर टिप्पणी करते हुए लिखा था "यह ऐसी साहसपूर्ण घोषणा है जैसी कोई अन्य भारतीय अधिकारी चाहे उसका पद कितना ही बड़ा क्यों न हो नहीं कर सकता। जस्टिस बदरुद्दीन तैयबजी ने कांग्रेस के प्रति अपनी जैसी निष्ठा प्रकट की है और वह भी ऐसे श्रोताओं के सामने जो कांग्रेस के प्रति मैत्री रखने वाले नहीं कहे जा सकते उससे उनके अद्भुत और महान व्यक्तित्व का पता लगता है।

पुराने ढर्रे पर जल्दी ही फिर से लौट जाना असंभव नहीं था इसलिए, आगे उन्होंने यह भी कहा यह निश्चित बात है कि सुनिश्चित विधान के बिना कानफ्रेंस के कार्यकलाप अस्पष्ट और अनिश्चित ही हो सकते हैं सज्जनो, यह कानफ्रेंस हमेशा एज्युकेशनल यानी शिक्षा संबंधी कानफ्रेंस के नाम से ही प्रसिद्ध रही है, इसलिए इसका मुख्य कार्यकलाप शिक्षा संबंधी मामलों तक ही सीमित रहना जरूरी है।' और मत व्यक्त किया कि नैतिक सामाजिक, बौद्धिक और शारीरिक शिक्षा इसके दायरे में आती है।

राजनीति के बारे में उन्होंने कहा राजनीतिक शिक्षा को भी अप्रत्यक्ष रूप में किसी हद तक इसके कार्यक्षेत्र में रखा जा सकता है परन्तु हमारे लिए इस बात को सावधानी से ध्यान में रखना ठीक होगा कि राजनीति को जहां तक बचाया जा सके, या हमारे कार्यक्षेत्र से उसे अलग रखना संभव हो, और जब तक हमारी बौद्धिक प्रगति पर उसका सीधा या तात्कालिक असर न पड़ता हो, तब तक हम उसके चक्कर से बचना ही चाहिए। मेरे विचार में बुद्धिमानी इसी में है कि विवादास्पद राजनीतिक प्रश्नों को अपने कार्यक्षेत्र से हम बिलकुल अलग ही रखें।

इस पृष्ठभूमि के साथ बदरुद्दीन ने कुछ ऐसी बात कही जो श्रोताओं को चौंकाए बिना न रही होगी। उन्होंने कहा

'आम तौर पर कहें तो राजनीतिक प्रश्नों का थोड़ा बहुत सारे देश पर असर पड़ता है। ऐसे राजनीतिक प्रश्न तो कभी-कभी ही सामने आते हैं जिनका किसी एक ही जाति से संबंध हो। इसलिए हमारा मार्गदर्शक सिद्धान्त हमेशा यही होना चाहिए कि जहां तक सामान्य राजनीतिक मामलों का संबंध है यानी जिनका खाली मुसलमान जाति के बजाय सारे देश और सभी जातियों से संबंध हो उन पर भारत के मुसलमानों को देश की अन्य सभी जातियों के साथ मिलकर काम करना चाहिए—एक-दूसरे से अलग होकर या एक-दूसरे के विरोधी बनकर नहीं। लेकिन जिन राजनीतिक योजनाओं का केवल हमारे मुस्लिम समुदाय से संबंध हो, यानी मुसलमानों पर ही उनका असर पड़ने वाला हो, यह न केवल ठीक और

उपयुक्त होगा, बल्कि हमारा निश्चित कर्तव्य है कि पृथक जाति के रूप में अपनी आवाज़ बुलन्द करें और जिस बात को अपनी जाति के हितों के विरुद्ध समझें उसका सभी वैध उपायों से विरोध करें। इसी तरह, यदि कोई योजना विशेषतः हमारी जाति के लाभ के लिए ही हो तो उसका समर्थन तथा उसके लिए आन्दोलन करना भी हमारा कर्तव्य है

लेकिन सज्जनो ऐसे राजनीतिक प्रश्नों पर भी मेरी राय में हमारी एज्युकेशनल कान्फ्रेन्स जैसी संस्थाओं के बजाय विशिष्ट रूप में राजनीतिक संस्थाओं में ही विचार होना चाहिए और उन्हें ही उनके संबंध में काम करना चाहिए।'

यह भाषण करते हुए मानो पुराने बदरुद्दीन ही बोल रहे थे। जिन विचारों से प्रेरित होकर उन्होंने अंजुमन ए-इस्लाम की स्थापना की थी और जिन विचारों से प्रेरित होकर ही बाद में उन्होंने अपने मित्र फीरोजशाह मेहता और तैलंग के साथ मिलजुल कर अनेक आन्दोलन किए उन्हीं का यह पुष्टीकरण था।

आगे उन्होंने कहा

'ऐसे किसी विषय या प्रस्ताव पर हमारी इस कानफ्रेन्स में विचार का मैं विरोधी हूं जिससे हमारे अन्य देशवासियों की भावना को चोट लगने की संभावना हो। सज्जनो, मैंने जो कुछ कहा, मेरे खयाल में यह बताने के लिए वह काफी है कि कांग्रेस और हमारी कानफ्रेन्स इन दो महान राष्ट्रीय संस्थाओं के बीच विरोध या शत्रुता की कोई बात ही नहीं, जबकि एक का उद्देश्य देश का राजनीतिक अभ्युत्थान है और दूसरी का मुस्लिम समुदाय की बौद्धिक उन्नति, तो कोई कारण नहीं कि दोनों मिलजुल कर काम क्यों न करें?

"मुझे कोई कारण नहीं दीखता कि ये दोनों संस्थाएं पूर्ण शांति और सौहार्द के साथ सहयोगपूर्वक कार्य क्यों न करें और मुस्लिम

समुदाय के शिक्षित और प्रवुद्ध तथा अनुभवी और प्रभावशाली व्यक्ति उस हद तक दोनों ही संस्थाओं की कारवाई में भाग क्यों न लें, जहां तक कि परिस्थितियां वैसा करने के प्रतिकूल न हों ? हमारे अपने विशिष्ट हितों को खतरा न हो तब तक अन्य सभी जातियों के साथ निश्चय ही हम पूर्ण प्रीति और सहयोग के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर काम कर सकते हैं। लेकिन यदि खतरे की कोई बात हो तो, जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं ऐसी हानिकर योजनाओं का विरोध करना हमारा कर्तव्य हो सकता है और सभी वैध उपायों से हम उनका विरोध करना चाहिए। यह जरूर है कि वह विरोध या तो कांग्रेस के मंच से ही किया जाना चाहिए या फिर राजनीतिक कामों के लिए ही बनी किसी विशिष्ट राजनीतिक संस्था के माध्यम से—इस कानफ्रेंस के मंच से नहीं ऐसा मेरा विचार है।

कानफ्रेंस इस दृष्टि से पहले से बहुत आगे की मंजिल पर आ गई थी क्योंकि सोलह वर्ष पूर्व ही लखनऊ में हुए अधिवेशन में सर सैयद ने इसके मंच से यह घोषणा की थी कि हिन्दू मुसलमानों के हित एक दूसरे से मेल नहीं खाते।

बदरुद्दीन ने इसके बाद मुसलमानों के पिछड़ेपन पर प्रकाश डाला और कहा 'अपने बजाय दूसरी जातियों पर नजर डालें तो हमें पता लगेगा कि उनके मुकाबले हम कितने पिछड़े हुए हैं। उनकी राय में मुसलमानों के पिछड़ेपन और पतन का मुख्य कारण उनकी धर्म और साहित्य विषयक संकीर्णता तथा स्त्रियों की अशिक्षा थी। उन्होंने कहा

'मुसलमानों का अपने प्राचीन ज्ञान पर गर्व अनुभव करना तो ठीक है। परन्तु अपने धर्म और साहित्य में प्रेम करने के लिए क्या यह आवश्यक है कि उस विशाल आधुनिक साहित्य की हम उपेक्षा करें और उसे उपहास तथा घृणा की दृष्टि से देखें जिसका सृजन और विकास पश्चिम में हुआ है ? किसी विशेष सुविधा या रियायत की हम अपने लिए

आशा नही करनी चाहिए। सरकार पर और रियायता के लिए भरोसा करना बुद्धिमानी नही है। हम तो अपने अन्य देशवासिया का बराबरी के नाते ही मुकाबला करना चाहिए क्याकि हम सबका आपस म मिलजुल कर रहना और काम करना है। यह याद रहे कि हमारे पगम्बर न यही कहा है कि शिक्षा जहा भी मिल सक वही से हम प्राप्त करनी चाहिए।[1]

मुसलमान स्त्रिया म शिक्षा के प्रसार और परदा हटाने पर बदरुद्दीन ने बहुत जोर दिया। कठमुल्ल इनस बडो उद्विग्न हुए। नवाब मोहसिन उल-मुल्क ने बाद म इस रहस्य का उदघाटन किया कि बदरुद्दीन का उ होने समझाया था कि अध्यक्षीय भाषण म से परदा विरोधी अश वह निकाल द परन्तु उ ह सफलता नही मिली। उ होन यह भी बताने की कोशिश की कि परदे का सवाल धार्मिक प्रश्न है इसलिए कानफ्रेंस के विचार क्षेत्र म नही आता फिर भी वह नाकामयाब रहे। विधान बनाने पर भी काफी विरोध उठा पर दु विरोध करने वाला को विधान का मसविदा बनान के लिए कमेटी बनान स रोकने म सफलता नही मिली। लकिन मुसलमान लडकिया क लिए स्कूल खालन के प्रस्ताव मात्र पर परद को लकर विवाद उठ खडा हुआ, यद्यपि तीव्र वाद विवाद के बाद प्रस्ताव पास जरूर हो गया। इसक अलावा इस अधिवेशन म छोटी उम्र म तथा लडक या लडकी की इच्छा के विरुद्ध होन वाले विवाह बन्द करने क प्रस्ताव पास हुए। एक प्रस्ताव द्वारा अग्रेजी भाषा म एक अखबार निकालने का निश्चय हुआ। वक्फ के धन को उसका मूल उद्देश्य सिद्ध न होने पर उचित माग दर्शन म शिक्षा पर व्यय करन की सिफारिश की गई। किंडरगाटन पद्धति शुरू करन को कहा गया। साथ ही एक मुस्लिम विश्वविद्यालय की स्थापना पर जोर दिया गया।

---

1 मूल उद्धरण इस प्रकार है—"अतलब उल इल्मे वा लऊ किस सीन" जिसका अथ है कि ज्ञान यदि चीन से मिले तो वहां से प्राप्त करने मे न चूको

कानफ्रेंस म जो भाषण हुए उनम ज्यादातर अंग्रेजी म थे,जिस पर काफी आलोचना हुई। यहा तक कहा गया कि उर्दू स वक्ताओ का कोई प्रेम नहा है। बदरुद्दीन न अपना अतिम भाषण उर्दू म देकर एस आलोचको को शात करन की कोशिश की। उन्होन कहा, 'सज्जनो, अगर जैसा आप समझत है वाकई वही बात है तो मैं आपको यकीन दिला सकता हू कि म पक्का और कट्टर मुसलमान हू। उर्दू का मै जबरदस्त हिमायती और सरक्षक हू। लेकिन बबई एसा जगह है जहा सभी तरह के लाग रहत है। विभिन्न जातियो और विभिन्न देशा के लाग यहा बस हुए ह जो तरह तरह के व्यापार व्यवसाय और रोजगार करत है। इस कारण विभिन्न भाषाए यहा प्रचलित है उनके प्रयोग बिना व्यापार व्यवसाय करना कठिन ही नही असभव है।' इसके बाद उर्दू क अग्रवक्ता की आलोचना करत हुए कहा कि नवाब माहसिन उलमुल्क या नवाबी शिवली नोमानी की उर्दू स काम नहीं चलगा बल्कि उसे बहुत आसान बनाना होगा। उन्होन कहा म आपको यकीन दिलाता हू कि उर्दू स मुझ भेद नही लगती न म यही कह सकता हू कि उर्दू महत्वपूर्ण नही है। मरी तो यह हार्दिक इच्छा ह कि उर्दू तरक्की कर और उसका दायरा बढे।

एक बार फिर परद का उल्लेख करत हुए बदरुद्दीन ने उनक सबध म कुरान म जो कुछ कहा गया है उसका विवरण दिया और बताया कि उस समय मुसलमाना म परदे का जो रिवाज था उसका उसम किसी तरह समर्थन नहा किया गया है। लेकिन चूकि उनकी बात कानफ्रेंस द्वारा मानी जा चुकी थी, इसलिए इस बार वह इस सबध म जो बोल वह लोगो के उद्दाप्त मन को शात करन के लिए ही था और उन्होन बडी सात्वनापूर्ण भाषा का प्रयोग किया।

कानफ्रस विश्वास और आशा क वातावरण म समाप्त हुई। बदरुद्दीन की तो यह बहुत बडी व्यक्तिगत विजय थी। एस मच स वह बोल थ जिसम मुसलमानो का प्रतिनिधित्व व्यापक रूप म था फिर भी उनकी बात ध्यानपूर्वक और आदर क साथ सुनी गई। उन्होन जो कुछ कहा उसकी उनक सहधर्मियो तथा देशवासियो दोनो न ही सराहना की। कांग्रेस के प्रति उनके रुख क बारे म जो गलतफहमिया थी उनका भी निराकरण हो गया। कांग्रेस क

कहते हुए मुझे गर्व अनुभव होता है। (तुमुल करतलध्वनि) निश्चय ही वह पक्के मुसलमान हैं और मुसलमानो के हितो के प्रति पूरे जागरूक, परन्तु जब तक वह न्यायाधीश नही बने थे, उन्होंने सार्वजनिक जीवन में एक नागरिक की ही हैसियत से मेरे साथ काम किया। यही नहीं, न्यायाधीश रहते हुए भी सार्वजनिक हितों के वह पक्के और निर्भय समर्थक हैं। स्वदेश तथा राष्ट्रीय कांग्रेस के वह परमभक्त हैं और उनके हक में मौका मिलने पर तो वह आवाज़ बुलन्द करने में संकोच करते ही नहीं परन्तु मौका न मिलने पर भी उसके लिए कोई रास्ता निकाल ही लेते हैं।[1]' (तुमुल करतलध्वनि)

---

1 स्पीचेज़ एण्ड राइटिंग्स ग्राफ दि ग्रानरेबल सर फीरोजशाह एम० मेहता संपादक सी० वाई० चिन्तामणि, पृष्ठ 804

11

अन्तिम दिन

बदरुद्दीन ने अपने कुटुम्बियों का इस तरह भरण-पोषण किया कि उनके परिवार ने विभिन्न क्षेत्रों में ख्याति अर्जित की। जब तक वह जीवित रहे, वह कुलपिता यानी अपने परिवार के मुखिया बन कर ही रहे। विक्टोरिया कालीन भद्र पुरुष की उपमा उन पर पूरी तरह लागू होती थी। इसके अलावा वह ऐसे मुसलमान थे जिन्हें अपने धर्म में पूर्ण श्रद्धा थी। दिन में पांच बार नमाज जरूर पढ़ते और शराब को उन्होंने कभी स्पर्श तक नहीं किया। भारतीयता की भावना भी उनमें भरपूर थी और राष्ट्र सम्मान के प्रति इतने जागरूक थे कि राष्ट्र के किसी भी तिरस्कार का विरोध किए बिना नहीं रह सकते थे। उनके तौर तरीके कुल मिला कर ऐसे शासक की याद दिलाते थे जिससे स्नेह के साथ-साथ डर भी लगता है। यही कारण है कि बच्चे उनसे दूर रहते और उनके छोटे भाई के आसपास मंडराते थे। यह देख कर कभी-कभी उन्हें इस बात का गम तो होता लेकिन इस बात को वह कम ही महसूस कर पाते कि इसका कारण यही है कि उनके प्रति स्नेह भाव रखते हुए भी उनसे वे खौफ खाते थे।

परिवार के मुखिया के रूप में बदरुद्दीन का चित्रांकन करते हुए उनकी पत्नी को नहीं भुलाया जा सकता, जो उनकी शक्ति का प्रधान स्रोत थी। वह उन्हें राहत उन-नफ्स कहते थे, जिसका अर्थ है आत्मा को शांति देने वाली। बदरुद्दीन की ही तरह वह भी तुनुकमिजाज और उग्र प्रकृति की थी, परन्तु उदारता भी उनके स्वभाव में था। थी तो वह अपनी मनमर्जी वाली, पर

बदरुद्दीन के प्रति पूर्ण श्रद्धालु थी और बदरुद्दीन भी उनका बहुत खयाल रखते थे। उनके पुत्र ने लिखा है

> बदरुद्दीन की वकालत चमकते ही उन्हें अदालत की हाजिरी और घर पर कानून के अध्ययन में व्यस्त रहना पड़ा, फिर भी पत्नी के प्रति अपने कर्त्तव्य का उन्हें पूरा ध्यान था और उनके मनोरंजन तथा साथ की उपेक्षा नहीं करते थे। स्काट और लिटन के प्रसिद्ध उपन्यासों का तर्जुमा करते हुए उन्हें सुनाते, जिससे तेजी से अनुवाद का बदरुद्दीन को ऐसा अभ्यास हो गया था मानो उर्दू में ही उन्हें पढ़ कर सुना रहे हों। चौपड़ और ताश भी वह उनके साथ खेलते। इस तरह उनका मनोरंजन करते हुए घर पर ही शिक्षा और प्रशिक्षण दे कर पन्द्रह वर्ष की सीधी-सादी देहाती लड़की को उन्होंने ऐसा प्रशिक्षित कर दिया था जिससे आगे चल कर बम्बई की प्रमुख महिलाओं के समाज में उन्होंने अपना स्थान बना लिया।[1]

राहत बीबी गुजराती हिन्दुस्तानी और फारसी तो जानती थी, परन्तु अंग्रेजी उन्हें ज्यादा नहीं आती थी। फिर भी बम्बई के उच्च वर्गीय समाज की अंग्रेज औरतों के साथ उन्होंने सामाजिक सम्बन्ध बनाये रखा। अट्ठारह बच्चों की वह मा थी और भरे पूरे विशाल परिवार की उन्हें देखभाल [illegible] पड़ती थी फिर भी यह सब वह कर सकी। इससे स्पष्ट है कि निश्चय [illegible] बहुत गुणवती रही होंगी।

एक घटना में पत्नी और बच्चों के साथ बदरुद्दीन के [illegible] और साथ ही उनकी तुनुकमिजाजी और न्याय बुद्धि की उनका [illegible] पर [illegible] प्रकाश पड़ता है। इस घटना का उल्लेख परिवार की [illegible] किताब में उनके भतीजे श्री फजुल हसन ने किया है जो उर्दू और [illegible] है। 1902 की बात है। बदरुद्दीन का परिवार [illegible] छुट्टियां बिता रहा था। रोज़ की तरह खेलते हुए एक शाम [illegible] कि मैंने

---

1 बदरुद्दीन तयबजी लेखक हुसेन बी० [illegible], पृष्ठ 323

का यह तरीका नहीं है। यहूमा-यहमी में बदरुद्दीन सयम गा उठे और गरम हो गए। उनके विपक्ष में अमरुद्दीन तयबजी और इब्राहिम ग्रहमदी मल रह थे जो उनके मेहमान थे। गरमागरमी जब बहुत बढ़ी तो कुटुम्बियों ने बदरुद्दीन पर संयम दो बटन के अपराध में मुकदमा चलाने का निश्चय किया। इसके लिए उनकी पत्नी को न्यायाधीश और फजुल हसन को संयुक्त न्यायाधीश बनाया गया। पुत्रियाँ शरिफ बनी। शेरिफ की हैसियत से जब उन्होंने बदरुद्दीन को गिरफ्तार किया तो पहले तो बदरुद्दीन ने उनसे गिरफ्तारी का वारंट दिखाने को कहा परन्तु उनके ऐसा करने से इन्कार करने पर चुपचाप आत्मसमर्पण कर दिया। इसके बाद उन्हें न्यायालय में हाजिर किया गया तो उन्होंने अपनी सफाई में भाषण करने के अपने हक पर जोर दिया पर प्रधान न्यायाधीश ने उनकी प्रार्थना अस्वीकृत कर सिर्फ बटन भर की इजाजत दी। मुद्दई अमीरुद्दीन और इब्राहिम से अपना मामला पेश करने को कहा गया तब भी बदरुद्दीन ने अपनी बात सुनी जाने का अनुरोध किया, परन्तु फिर भी इजाजत नहीं मिली और अन्त में यह निर्णय सुनाया गया शिकायत पर हमने बहुत ध्यानपूर्वक विचार किया। कोई गवाही लिए बगैर अभियुक्त को यह सजा दी जाती है कि वह तयबजी के परिवार को चारीवन्दर पर आइसक्रीम पार्टी दें, जिसके लिए उन्हें जमानत देना आवश्यक है। बदरुद्दीन ने कहा 'निर्णय को मैं स्वीकार करता हूं, परन्तु मेरी प्रार्थना है कि मुद्दई अमीरुद्दीन को भी सजा दी जाय, क्योंकि उन्होंने ही ऊलजलूल दलीलें दे कर मुझे उत्तेजित किया।" न्यायालय ने इस पर सहमति प्रकट की और अमीरुद्दीन को काफी पिलाने का आदेश दिया। इसके बाद न्यायालय उठ गया। इस घटना का उल्लेख करते हुए अपने लेख के अन्त में फजुल हसन ने बदरुद्दीन के बारे में कहा है 'अपने परिवार में सभी व्यक्तियों को वह समान ही मानते थे, फिर कोई छोटे-से छोटा भी क्यों न हो। न्यायालय के इस नाटक के पीछे निश्चय ही यह बात स्पष्ट है कि क्रोध में आप से बाहर हो कर बुरे स्वभाव का परिचय देना कोई पसन्द नहीं करता था और परिवार का छोटे-से-छोटा व्यक्ति भी उस पर आपत्ति कर सकता था।[1]

---

1 लेखक इस घटना की ओर ध्यान दिलाने के लिए हुसेन बी० तयबजी का आभारी है

जहा तक राहत बीबी का सवाल है, नेशनल इंडियन एसोसिएशन की महिला शाखा की वह एक सक्रिय सदस्य थी। कताई बुनाई का उन्हें बहुत शौक था और 1904 मे काग्रेस ने अपने बम्बई अधिवेशन के साथ भारतीय उद्योग धन्धो की जो प्रदर्शिनी आयोजित की थी उसके महिला विभाग का प्रथम पुरस्कार उन्होने प्राप्त किया था। 1905 के जून मे उनकी मृत्यु हुई जो बदरुद्दीन के लिए निश्चय ही वज्रप्रहार था। चालीस वर्ष तक जो उनकी आत्मा को शांति पहुचाती रही उसकी क्षति सहन करना आसान नही था। राहत बीबी की जब मृत्यु हुई तो उनके बारे मे 'पारसी' अखबार (जुलाई 1905) ने लिखा था

अपने समय के लोगो मे विचारो और आदर्शो मे वह कही आगे थी फिर भी उन लोगो की अवक्षरी लीला उनके शिथिल संघर्ष पूर्वाग्रहो और भय तथा सन्देहो के प्रति उनका रुख सहानुभूतिशील रहता था। यही नही किसी भी परिवर्तन के लिए अनुकूल समय पर स्वय पहल करने को तैयार रहती। सहानुभूति की भावना तो उनमे इतनी कूट कूट कर भरी हुई हुई थी कि सभी जातियो धर्मो आयु तथा स्थानो के लोग उनसे सान्त्वना पाते थे। उनके सम्मुख कोई भी अपना दिल खोल कर रखने मे सकोच नही करता था।'

जहा तक बदरुद्दीन का सवाल है अपनी पुत्रियो से तो वह लाड करते थे परन्तु पुत्रो के साथ उनके सम्बन्ध मित्रता पूर्ण होते हुए भी गम्भीरता लिए हुए थे। उनमे उन्हें प्रेम तो था और उनका साथ उन्हें बहुत पसन्द था। परन्तु उनके बडे होने पर भी पिता से उन्हें बराबर डाट फटकार मिलती रहती थी।

खेलो के बदरुद्दीन शौकीन थे। परिवार वालो के लिए उन्होने अपने घर मे दो टेनिस के और दो बैडमिंटन के कोर्ट बनवाये थे। बरसो तक रोज सबेरे वह स्वय भी बैडमिंटन की तीन बाजिया खेला करते थे, पर जैसा कि उनके पुत्र ने बताया है खेल मे उनका कोई विशेष उत्साह दिखाई नही देता था। घूमना फिरना उन्हें जरूर पसन्द था और सामान्यतः परिवार के सदस्य...

the G rt ... Scheme of ...

को उसके लिए आमन्त्रित करते थे। हाईकोर्ट से अपने घर तक (जो चौपाटी पर था) रोज ही पैदल आते थे, चाहे धूप हो या बारिश।

8 अक्तूबर 1892 को उन्होंने अपने पुत्र फैज को, जो उस समय लन्दन में थे, एक पत्र लिखा था। उसमें और बातों के साथ साथ यह भी लिखा

'हां, यह तो लिखो कि नाचना तुमने सीखा, या नृत्य पार्टियों के दर्शकमात्र रहे ? मेरी सलाह है कि नाचना जरूर सीखो, क्योंकि अपने इंग्लैंड प्रवास में उससे तुम्हें अतिरिक्त आनन्द मिलने के साथ साथ तुम्हारे शरीर में उससे लचीलापन आयेगा तथा व्यवहार में शालीनता।'

लेकिन पत्नी की मृत्यु के बाद बदरुद्दीन का उत्साह मंद पड़ गया और बुढ़ापा तेजी से उन पर सवार होने लगा। डाक्टरों ने उन्हें विश्राम की सलाह दी, अतः एक वर्ष की छुट्टी ले वह यूरोप गए। अपने पुत्र हुसैन को उन्होंने अपने साथ लिया और 25 नवम्बर, 1905 को एस० एस० इजिप्ट जहाज से यूरोप के लिए रवाना हो गये।

बदरुद्दीन को पत्र लिखने का शौक ही नहीं था, पत्र लिखते भी बहुत बढ़िया थे। एस० एस० ईजिप्ट जहाज से सफर करते हुए तथा लन्दन पहुंच कर उन्होंने जो पत्र लिखे वे बहुत पठनीय हैं।[1] एक तरह तो उन्हें गश्ती चिट्ठियां ही कहा जा सकता है। अंग्रेजी पत्रों में वह 'माईडार्लिंग चिल्ड्रन' (मेरे प्यारे बच्चो) सम्बोधन करते थे और उर्दू पत्रों में 'प्यारे भाई-बहनो।' अदन के करीब पहुंचने पर (26 नवम्बर 1905 को) उन्होंने लिखा कि मैं ओस्कार ब्राउनिंग की नेपोलियन पर लिखी हुई रोचक पुस्तक पढ़ रहा हूं जिससे उस अद्भुत प्रतिभाशाली व्यक्ति के जीवन और चरित्र पर नया प्रकाश पड़ता है। 'टलिस्मन' पुस्तक उन्हें बहुत दिलचस्प लगी और मार्क ट्वेन की 'डबल बरल्ड डिटेक्टिव स्टोरी' के बारे में उन्होंने लिखा कि उसे पढ़ना शुरू

---

1 इन पत्रों को पढ़ने तथा उनमें से उद्धरण देने की अनुमति के लिए लेखक बदरुद्दीन के पौत्र मोहासिन तययजी का आभारी है

किया है पर "उसमे जो विनोद है वह उनकी अन्य पुस्तकों के (जिन्हें मैंने पढा है) विनोद से बहुत भिन्न है।' ऐंथनी होप की प्रोसो को उन्होने "खून खौलाने वाला रोमांस' बताया जिसमे "खलनायकों और हत्यारो के क्रूर कृत्यो तथा उनसे बोल चाल वचन वालो का ही वर्णन भरा हुआ है।

बदरुद्दीन और हुसन 16 दिसम्बर 1905 को लन्दन पहुचे। उन जैसे सक्रिय व्यक्ति के लिए अवकाश तभी अच्छा लगा जब उन्होने किसी न किसी रूप मे अपना सामाजिक कार्य वहा भी जारी रखा, भले ही जोरशोर से नही। लन्दन पहुचने के कुछ ही समय बाद वह सर कोर्टनी इलबर्ट से मिले जिनके बिल के पक्ष मे उन्होने अपने भरसक पूरी कोशिश की थी। इसके अलावा श्रीमती लीकी रे दम्पति, श्री यूसुफ अली (सिविलियन) और भारत के परम मित्र लार्ड रिपन से भी उन्होने भेंट की। अलीगढ कालेज वाले मि० मारिसन मुझसे मिलने आये उन्होने लिखा 'और भारतीय समस्याओ पर उनसे खासी लम्बी बातचीत हुई। लाहौर आबजर्वर के सम्पादक श्री अब्दुल कादिर भी मिलने आये और मुसलमानो की समस्या पर उनसे बातचीत हुई।'

बदरुद्दीन जब लन्दन मे थे उनके देशवासी विभिन्न समारोहो मे भाषण करने या किसी अन्य सहायता की प्रार्थना के लिए अक्सर उनके पास पहुचते रहते थे। 1906 की जनवरी तक उनके स्वास्थ्य मे भी कुछ सुधार होने लगा था। श्रीमती भीकमजी रुस्तम कामा भी इस बीच उनसे मिली, जिनके बारे मे उन्होने अपने बच्चो को लिखा कि वह 'बहुत सक्रिय और उग्र विचारो वाली राजनीतिज्ञ है।" श्रीमती कामा उस समय ब्रिटेन के आम चुनाव मे पार्लियामेंट के लिए उम्मीदवार दादाभाई नौरोजी के लिए प्रचार कार्य कर रही थी। 9 जनवरी 1906 को श्रीमती कामा ने बदरुद्दीन को लिखा, 'लन्दन आप छुट्टिया बिताने आये है यह मैं जानती हू लेकिन आप जैसे योग्य व्यक्ति के लिए उनकी (दादाभाई नौरोजी की) सराहना मे कुछ शब्द कहना बहुत कठिन काम नही है जब कि उससे उन्हें बहुत लाभ होगा। उनके निर्वाचन क्षेत्र के मतदाता ज्यादातर गरीब मजदूर ही है, जिनके सामने उनका पक्ष आप जैसे कुशल एडवोकेट से बढ कर और कौन रख सकता है जो स्वय भी उनका ही देशवासी है ?"

18 जनवरी 1906 को अपने बच्चा का पत्र लिखते हुए बदरुद्दीन ने कहा अभी तक तो लिबरल पार्टी वाले ही पूर्व विजयी हुए हैं जब कि टारी इतनी बुरी तरह पछाडे गये हैं जिसकी शायद कोई कल्पना भी नही कर सकता था। दादाभाई और भावनगरी य दो भारतीय इस चनाव म खड़े हुए थे परन्तु दुर्भाग्यवश दोना ही हार गय।

विश्राम ने बदरुद्दीन स भी 5 फरवरी 1906 का प्रार्थना की थी कि 'वोकिंग मस्जिद' का यहा के मुसलमान उपयाग कर सकें इसके लिए वह आवश्यक कारवाई करें। 19 फरवरी का उनकी सभापतित्व म अब्दुल कादिर न तरुण भारत की आकाक्षाओ पर भाषण किया। 2 मार्च का केम्ब्रिज की इडियन मजलिस के वार्षिक भोज म वह अतिथि के रूप म आमन्त्रित हुए। 5 मई का लन्दन की इडियन सोसायटी का वार्षिक भोज था जिसकी अध्यक्षता दादाभाई नौराजी ने की। गोपालकृष्ण गोखले और बदरुद्दीन तयबजी उसम मुख्य अतिथि थे।

मार्च म ईस्ट इडिया एसोसिएशन के मच से भाषण करते हुए बदरुद्दीन ने कहा

यद्यपि हमे बताया गया है कि यह एसा अवसर है जबकि राजनीतिक बाता पर विचार किया जा सकता है यह ध्यान रहे कि जिस सरकारी पद पर इस समय मैं हू उस पर रहते हुए मैं किसी भी विवादास्पद राजनीतिक प्रश्न की बहस म भाग नही ले सकता। परन्तु मेरा विश्वास है कि सरकार इस बात को अच्छी तरह समझती और मानती है कि काग्रेस राजद्रोही सस्था नही है। मेरे विचार म वह यह भी मानती है कि काग्रेस म ऐसे अनेक व्यक्ति हैं जो किसी भी विषय पर अधिकारपूर्वक ही बोलते हैं और यद्यपि सुन ग्राम कभी-कभी जसी उसकी आलोचना होती है उसे वह पसन्द नही करता फिर भी मेरा खयाल है कि काग्रेस के प्रस्तावा पर सरकार महानुभूतिपूर्वक ही विचार करती है और उसके खयाल म जहा तक उन्हें व्यवहार म लाया जा सकता है वहा तक वह उन्हें और काग्रेस द्वारा प्रकट की गई राष्ट्र की इच्छाओ को क्रियान्वित भी करना चाहती है। परन्तु अन्तत स्वय अपने देशवासियो स मैं कहूगा

कि मेरे ख्याल में शिक्षा और समाज सुधार पर हम ज्यादा ध्यान देना चाहिए।

"मुझे भय है कि तरुण भारत ने एकमात्र राजनीति पर बहुत अधिक ध्यान दिया है शिक्षा और समाज सुधार पर बहुत कम। मैं तो उन लोगों में से हूं जो समझते हैं कि अपनी प्रगति के लिए हम अपने प्रयत्न केवल एक दिशा में नहीं बल्कि विविध दिशाओं में केन्द्रित करने चाहिए। अतः अपनी राजनीतिक स्थिति के साथ साथ अपनी सामाजिक और शिक्षा सम्बन्धी स्थिति सुधारने के लिए भी हम पूरा प्रयत्न करना चाहिए। अपने देशवासियों के अज्ञान में डूबे रहते बहुत उन्नत किस्म की प्रतिनिधि सरकार के लिए हमारा प्रयत्न खास मानी नहीं रखता और अनुभव से यही मालूम पड़ता है कि भारतीय प्रजाजन के बहुमत ने उच्च शिक्षा से प्राप्त होने वाले लाभ को, जिस पर कि मेरे खयाल में हमारे राष्ट्र का भाग्योदय निर्भर है, ठीक तरह हृदयंगम नहीं किया है। मुसलमानों को ही लीजिए। न्यायाधीश की हैसियत से उनके द्वारा की गई वसीयतों से मुझे काम पड़ता है। मैंने देखा है कि जब कोई ऐसा सम्पन्न व्यक्ति मरता है जिसके कोई अन्य सम्बन्धी नहीं होते तो वह अपनी सम्पत्ति कुछ पुराने ढंग के तालाबों, मक्का की यात्रा अथवा अमुक बार कुरान पढ़ने के लिए या इसी तरह के किसी काम के लिए खर्च करने की वसीयत करता है। ये बातें अपने आप में तो बुरी नहीं अच्छी ही हैं, परन्तु दुर्भाग्यवश राष्ट्र का भाग्योदय इनसे नहीं होता।

"आज के नौजवान जब वृद्ध हों और अपनी वसीयत करने लगें, तो उन्हें याद रखना चाहिए कि पुराने ढंग के ऐसे खैराती कामों के बजाय शिक्षा प्रसार के लिए ही वे अपने धन का उपयोग करें। उस हालत में, मेरे खयाल में, सरकार से शिकायत करने का हमारे लिए बहुत कम कारण रह जायगा क्योंकि जिस बात के लिए हम आज सरकार से कहते हैं उसे तब सम्भवतः स्वयं ही हम कर सकेंगे।

'मेरे ख्याल में भारतवासियों की यह सर्वथा वैध आकांक्षा है कि सरकार के उच्च पदों पर भारतीयों की अधिकाधिक संख्या में नियुक्ति की जानी

चाहिए। न्याय सार्वजनिक निर्माण रेलवे और तार के महकमों जैसे अनेक विभागों में सरकारी नौकरियों में काम करने की भारतीयों में स्वभावतः बहुत योग्यता है। कम-से-कम मेरी समझ में यह बात बिल्कुल नहीं आती कि इन विभागों में न केवल बिना किसी हानि के बल्कि देश के लाभ की दृष्टि से भारतवासियों को वहीं अधिक संख्या में क्यों नहीं नियुक्त किया जाता?'

जुलाई में बदरुद्दीन अलीगढ़ कालेज एसोसिएशन के भोज में शामिल हुए। उसमें भाषण करते हुए उन्होंने कहा

'सर टामस ने यह ठीक ही कहा है कि भारत के 5-6 करोड़ मुसलमानों के लिए एक कालेज काफी नहीं हो सकता चाहे वह कितना ही अच्छा और महत्वपूर्ण क्यों न हो। ऐसी संस्थाएं सारे भारत में होनी चाहिए। मैंने तो हमेशा इस बात को सम्भवतः सबसे महत्वपूर्ण माना है कि देश के अन्य भागों में हमारी जो शिक्षा संस्थाएं हैं जिनमें से कुछ प्राथमिक शिक्षा का काम कर रही हैं और अन्य हाई स्कूल तक की पढ़ाई का उनका क्षेत्र या तो कालेज शिक्षा तक बढ़ा देना चाहिए या फिर उनके साथ-साथ कालेज भी हमें खोलने चाहिए। प्रतिनिधियों के रूप में हमारी जाति के जो शुभचिन्तक आज यहां उपस्थित हैं उन्हें यह सुनकर खुशी होगी कि देश के अन्य भागों में भी इस दिशा में प्रयत्न जारी है और उनमें सफलता न मिल रही हो ऐसी बात भी नहीं है। अलीगढ़ कालेज का विकास यदि विश्वविद्यालय के रूप में होना है जैसी कि मुझे आशा है तो यह निश्चय ही सभी मुसलमानों की शिक्षा का केंद्र बन जायेगा और न केवल भारत के विविध मुस्लिम स्कूल कालेजों के विद्यार्थी बल्कि सभी देशों के विद्यार्थी भी उसकी ओर आकर्षित होंगे।'

स्त्री शिक्षा की उपेक्षा के लिए बदरुद्दीन ने उत्तर भारत की आलोचना की और इस सम्बन्ध में बम्बई से शिक्षा ग्रहण करने को कहा।

भाषण के अन्त में उन्होंने कहा

'अन्त में मैं यही आशा करता हूं कि यह कालेज न केवल उत्तर

1 बदरुद्दीन तैयबजी लेखक जी० ए० नटेसन, पृष्ठ 14-16

भारत बल्कि समूचे भारत के मुसलमानों के लिए शिक्षा और ज्ञानदान का केन्द्र बनेगा। भारत में कोई ऐसा मुसलमान नहीं बम्बई में तो कतई नहीं जो अलीगढ की सफलता और समृद्धि न चाहता हो।'[1]

सयोग की बात है कि यही उनका सार्वजनिक रूप में दिया गया अन्तिम भाषण सिद्ध हुआ।

जहा तक उनके स्वास्थ्य का सवाल है उसमें सुधार हो रहा था। उनकी आखें भी पहले से ठीक थी और देखने में वह खुश ही नजर आते थे। हिंद हेड स्कूल भी वह गये, जो लडकियों का रजिडेंशल स्कूल था। उसमे उनकी लडकिया पढ रही थी। उनकी पढाई देख कर उन्हें सन्तोष हुआ।

भारत मन्त्री लार्ड मार्ले से भी वह मिले और हाईकोर्ट में अपने बारे में स्थिति स्पष्ट करने का उनसे अनुरोध किया। बात यह थी कि बदरुद्दीन सीनियर बैरिस्टर जज थे और स्थानापन्न चीफ जस्टिस के रूप में काम भी कर चुके थे जिससे चीफ जस्टिस की जगह खाली होने पर स्थायी रूप से चीफ जस्टिस बनने के वह पूरी तरह हकदार थे। भारत मन्त्री से उन्होंने इस बात का आश्वासन मागा था कि ऐसा अवसर उपस्थित होने पर उनकी भारतीय होने के कारण, उपेक्षा नहीं की जायेगी। ऐसे आश्वासन की जरूरत इसलिए पडी, क्योंकि उनकी और मि० स्ट्रैची की न्यायाधीश पद पर नियुक्ति तो साथ साथ ही हुई थी परन्तु स्ट्रैची अग्रेज थे और उनका अधिकारपत्र उनसे पहले की तारीख का था। लार्ड मार्ले ने इस सम्बन्ध में उन्हें जो आश्वासन दिया उससे वह सन्तुष्ट तो हुए, परन्तु अपनी तरफ से यह बात भी स्पष्ट कर दी कि कभी भी उनके साथ भेदभाव का व्यवहार हुआ तो वह तुरन्त पदत्याग कर देंगे।

1906 के अप्रैल में हुसेन तयबजी भारत लौटे और उनकी [illegible]

---

1 बदरुद्दीन तयबजी, लेखक जी० ए० नटेसन पृष्ठ 16 17

भाई फज़ बदरुद्दीन के साथ रहने के लिए गये। बदरुद्दीन जब बीजबडन गए तब वही उनके साथ थे और कुछ दिन उन्होंने वहीं बिताये।

इस तरह बदरुद्दीन वहां अपने समय का सदुपयोग कर रहे थे। 22 जुलाई को उन्होंने अपने बच्चों के नाम एक रोचक पत्र लिखा, जिसमें वहां खरीदी मोटरगाडी का विवरण था। वह आर्गिल कार थी और बदरुद्दीन को बहुत पसन्द थी। उन्होंने लिखा

'मेरी यहां की हलचलों के बारे में तुम क्या सोचते हो, यह मैं नहीं जानता। लेकिन क्या तुम्हें यह जान कर आश्चर्य नहीं होगा कि बडी दुविधा और हिचकिचाहट के बाद आखिर मैंने मोटरगाडी खरीदने का निश्चय कर लिया है। कल मैंने एक सुन्दर मोटर देखी, जिसने मुझे मोह लिया और मैंने उसे खरीदने निश्चय कर लिया। वह सुन्दर बडी गाडी है, जिसमें पांच व्यक्ति अन्दर तथा दो बाहर बैठ सकते है। वह बन्द गाडी है, परन्तु हर तरफ शीशे की खिडकियां है जिन्हें खोला जा सकता है और जितनी चाहो उतनी हवा उसमें आ सकती है। बहुत ज्यादा रोशनी या चौंध से बचने के लिए या जो स्त्रियां अभी भी परदे के बंधन से मुक्त नहीं हुई है उनके सन्तोष की खातिर परदे भी उसमे हैं। सुन्दर गहरे हरे रंग की वह है और उसके ऊपर सामान रखने की जगह भी बनी हुई है। कल हमने उसका परीक्षण किया। मैं कमरुद्दीन और वजीरबीबी अन्दर बैठे जब कि फज़ बाहर ड्राइवर के पास। गाडी आश्चर्यजनक रूप से बिना किसी बाधा के तेजी से चली। ड्राइवर का मशीन पर पूरा नियन्त्रण रहा। पहाड के ऊपर रिचमण्ड पार्क तथा हैम्पटन कोर्ट तक जाकर हम भीड भाड के रास्ते वापस आये। परीक्षण खूब कामयाब रहा और कमरुद्दीन को मैंने उसे खरीद लेने के लिए कह दिया है। कुल 15,000 रुपये में मुझे वह पडेगी। अपने आस्ट्रेलियन घोडे के मुकाबले का एक नया घोडा खरीदने का जो आर्डर मैंने दिया था उसे अब रद्द समझना चाहिए।

परन्तु इसके एक मास बाद ही उन्हें गाड़ी के दोषों का भी पता चला। 16 अगस्त 1906 को लिखे अपने पत्र में, जो कि शायद उनका अन्तिम पत्र था, उन्होंने लिखा

> 'मोटरगाड़ी है तो सुन्दर, परन्तु इसमें भी अपने नाज नखरे हैं और मनमौजी तथा नाजुक पालतू पशु की तरह इसकी भी सावधानी से देखभाल रखना आवश्यक है। इसके ड्राइवर को खाली ड्राइवर न हो कर पशु चिकित्सक भी होना चाहिए। मोटर से मुझे मोह है। इसकी सुन्दरता से मैं प्रभावित हूं और इसमें बैठ कर जाने आने में बड़ा मजा आता है परन्तु इसके भड़कीलेपन से बड़ा डर लगता है। प्यारे बच्चो इस हूबहू वर्णन से तुम्हें पता लग गया होगा कि जिस नये जानवर को मैं सामरसेट के अपने पिंजरेघर में ला रहा हूं वह कैसा है।"

बदरुद्दीन ने अपने बच्चों को यह भी बताया कि वह भारत के मामलों में विशेष रुचि रखने वाले पार्लियामेंट के कई सदस्यों से मिल चुके हैं। लार्ड रे के सभापतित्व में भारत के लिए स्वशासन पर गोखले के भाषण में फज के साथ वह गये थे। उन्होंने लिखा कि वहां कुछ रोचक और उत्तेजनात्मक वादविवाद भी हुआ। परन्तु यह सोच कर मैंने उसमें कोई भाग नहीं लिया कि उसने विवादास्पद राजनीति का रूप ले लिया है।"

लोगों से मिलने और उनके साथ विचार विनिमय करने में उन्हें सदा आनन्द आता था। फारसी अरबी के विद्वान ले स्ट्रेंज, महान विधिवेत्ता पोलक और इटली के सुप्रसिद्ध विद्वान यात्री काउंट बालजनी से उनकी "वर्तमान विश्व राजनीति और खास कर रूस में हो रहे स्वातन्त्र्य संघर्ष के बारे में बहुत रोचक बातचीत हुई।"

बदरुद्दीन मध्य अक्तूबर में बम्बई लौटना चाहते थे, परन्तु बम्बई हाई कोर्ट के चीफ जस्टिस सर लारेंस जनकिंस का तार मिला कि मध्य सितम्बर में वह छुट्टी जाना चाहते हैं। उन्होंने बदरुद्दीन से पूछा था कि क्या उस समय तक वह भारत लौट कर स्थानापन्न चीफ जस्टिस का कार्य सम्हाल सकेंगे? बदरुद्दीन ने उन्हें अपनी सहमति की सूचना दी और 24 अगस्त 1904 को 'एस०

एस० आर० 'आर्केडिया' जहाज से चलने का इन्तजाम कर लिया। यह जहाज वहा से मार्साई जानेवाला था और मार्साई से 31 अगस्त को रवाना हो कर उसे 14 सितम्बर को बम्बई पहुचना था।

सर लारेस जनकिंस का तार पा कर बदरुद्दीन का निश्चय ही प्रसन्नता हुई यद्यपि अ दर अ दर कुछ हिचकिचाहट भी थी। न्यायपीठ पर उनका अच्छा प्रभुत्व था पर तु ल दन म बिताई छुट्टियों से उन्हें उस आनन्द का भी कुछ आभास मिल गया था जो सेवानि त्ति के बाद मिलता है। सब कुछ सोच कर उन्होंने काम पर लौटना ही ठीक समझा और भारत लौटने के लिए शनिवार 18 अगस्त का ल दन आ गये। उसके दूसरे दिन लन्दन मे उपस्थित अपने परिवार के सभी लोगों तथा मित्रों को उन्होंने भोज के लिए आमन्त्रित किया। भोजन के बाद सब लोग रीजेंट पार्क गये जहा उनके पुत्र सुलेमान ने फोटो भी लिये। वहा से जब सब लोग रीजेंट पार्क के निकटवर्ती अपने मकान नम्बर 32 कानवाल टेरेस लौटे तो कुछ देर म आने को कह कर बदरुद्दीन अपने कमरे मे गये। सब लोग उनके वापस आने की प्रतीक्षा म थे पर जब आने म देर लगी तो उन्होंने समझा कि वह आराम करने लगे है और बाहर से आये लोग अपने अपने घर चले गये। उसके बाद भी जब बहुत देर तक वह नही आये तो चिन्ता हुई और फैज उन्हें बुलाने गये। दरवाजा खटखटाने पर भी जब कोई जवाब नही मिला तो उन्होंने कमरे म घुसने की कोशिश की परन्तु कमरा अन्दर से बन्द था। आखिर उन्होंने धक्का दे कर खिड़की के किवाड़ खोले। यह देख कर वह धक रह गये कि पिता मृत पड़े हुए थे। हृदय का दौरा पड़ने से उनका देहान्त हो गया था। (19 अगस्त 1906) बदरुद्दीन की मृत्यु का समाचार तुरन्त भारत के कोने कोने मे फैल गया।

उनके दोनों पुत्रों फैज और सुलेमान ने मुस्लिम पद्धति से बुधवार 22 अगस्त, 1906 के तीसरे पहर लन्दन म ही शुद्धि विषयक सस्कार किये। नमाज तुर्की दूतावास के श्री उबदुल्ला अफेंदी ने पढ़ी। लन्दन मे रहने वाले मुसलमानों की शोक सभा भी बाद मे तुर्की कौंसल जनरल श्रीमान हमीद बेग के सभापतित्व मे हुई जो बदरुद्दीन के अच्छे मित्र थे। 'टाइम्स आफ इंडिया' (8 सितंबर

1906) के अनुसार उसमे श्री यूसुफ अली न हृदयस्पर्शी श्रद्धाजली अर्पित करत हुए कहा

"ऐसे हर काम म वह सच्चे मित्र की तरह सहायता को हमेशा तैयार रहते थे जिसमे उनकी जाति का किसी भी रूप म हित हो। हृदय के विशाल थे और देश के मामलो म उनकी बडी दिलचस्पी थी। उनके बारे म बिल्कुल सचाई के साथ यह कहा जा सकता है कि और कोई ऐसा मुसलमान नही जिसे हिदू उनस बढ कर प्यार करते हैं।

बदरुद्दीन का शव बम्बई ला कर बदरबाग के वक्फ मे रखा गया जिस बदरुद्दीन न ही कायम किया था। अपने स्वर्गीय नेता को श्रद्धाजलि अर्पित करने के लिए भारी जनसमुदाय वहा एकत्र हुआ। 9 अक्तूबर 1906 का वहा से उनका जनाजा निकला, जो विभिन्न भागो से होता हुआ करेलवाडा म सुलेमानी बोहरा के कब्रिस्तान गया। जनाजे के साथ उनके पुत्र और सगे सम्बन्धी तो थे ही हाईकोर्ट के स्थानापन्न चीफ जस्टिस तथा अन्य जज, सर चिमनलाल सीतलवाड श्री इब्राहीम रहीमतुल्ला कौंसिल के उनके साथी दाजी आबाजी खरे और उनके अनेक ओजस्वी भाषणो के प्रत्यक्षदर्शी सर जमशेदजी जीजीभाई भी थे। लोकमान्य बालगगाधर तिलक की उपस्थिति न उस और विशिष्टता प्रदान की। महान पत्रकार श्री के० नटराजन भी इस मातमी जलूस मे थ, जिन्होने अपने इडियन सोशल रिफामर (14 अक्तूबर 1906) मे इसका इस प्रकार वणन किया

'जस्टिस बदरुद्दीन तयबजी क जनाजे का अद्भुत जलूस ज्यो-ज्यो कब्रिस्तान की ओर बढता जाता था, लोगो के मुह से बार बार यह सुनाई पडता कि सभी वग के प्रतिनिधियो के सम्मान और प्रेम का ऐसा प्रदशन बम्बई म कभी नही देखा गया। राजनीति म उग्र और नरम विचार रखन वाले ही नही, मिश्र विचारो वाल व्यक्ति भी मौजूद थ। साथ ही ऐसे भी थे जो राजनीति के बजाय सामाजिक प्रगति के समथक थे और ऐसे लो के प्रति सम्मान प्रदर्शित करन आय थे जिनके सामाजिक मामलो मे निजी दृढ विचार थे जिनके अनुरूप उनन समाज सुधार को

प्रतिपादन किया । ऐसे मुसलमान पारसी और हिन्दू भी थ जो न्यायाधीश के रूप म चरित्रबल म बेजोड बदरुद्दीन की स्मृति को बहुमूल्य मानत थ । कब्रिस्तान के निस्तब्ध और सूने वातावरण म मुस्लिम धर्मानुसार जब सीधे सादे तरीके स अंतिम संस्कार किय जा रह थ भारी जनसमुदाय म नीरव शांति छाई हुई थी धार्मिक संस्कार करनेवालों की ध्वनि ही गुंजरित हो कर उसे भंग करती थी । उनकी गुनगुनाहट राकेट की तरह आकाश की ओर बढ़ी । तैयबजी की खुली हुई कब्र के पास खड़े हो कर यही विचार मन म उठता था कि जातिधर्म और सम्प्रदाय के भेदभाव कितने क्षुद्र और नगण्य है और लोगों के दिलों को एक करने के लिए जरूरत है तो केवल ऐसे चरित्रबल और आत्मविश्वास की जो कारगर और प्रगतिशील विचारों स प्रेरित हो ।

21 अगस्त 1906 को हाईकोर्ट म उन्हें श्रद्धांजलि दी गई । चीफ जस्टिस की अनुपस्थिति म, जो बीमार थे न्यायपीठ स जस्टिस रसल ने बदरुद्दीन को श्रद्धांजलि दी और वकील समुदाय की ओर स एडवोकेट जनरल मि० लाउडस न उनका अनुमोदन किया ।

कांग्रेस की ब्रिटिश समिति ने 28 अगस्त, 1906 को लन्दन म शोक सभा की जिसम दादाभाइ नौरोजी न शोक प्रस्ताव रखा और गोखले ने उसका समर्थन किया । शोक प्रस्ताव म कहा गया कि 'वह योग्य और बुद्धिमान न्यायाधीश ही नहीं थ, ऐसे प्रत्येक आन्दोलन को उनका निश्चित समर्थन मिलता था जिससे भारतीय जनता को शांति और समृद्धि प्राप्त होती हो ।

बदरुद्दीन की मृत्यु पर भारतीय पत्रों न तो शोक प्रकट किया ही इंग्लैंड के पत्रों न भी व्यापक रूप से शोक प्रदर्शन किया । और तो और, सिएटल पोस्ट इंटेलिजेंसर नाम के एक अमरीकी अखबार न भी अपने 12 सितम्बर, 1906 के अंक म सहानुभूतिपूर्ण मृत्युलेख प्रकाशित किया ।

बम्बई म उनकी मृत्यु पर दो सार्वजनिक सभाएं हुईं । एक उस प्रेसिडेंसी एसोसिएशन के तत्वावधान म जिसकी स्थापना में बदरुद्दीन का बड़ा योग

रहा था और दूसरी गवनर लाड लेमिंगटन के सभापतित्व मे टाउन हाल म ।

निश्चय ही 1906 का वप भारत के लिए वडा अशुभ रहा । वदरुद्दीन तैयवजी व्योमकेश वनर्जी और आनन्दमाहन बोस इन तीन कांग्रेस अध्यक्षो का इस वप अवमान हुआ । तीना महापुरुषा की मत्यु पर शोक प्रकट करने के लिए 10 अक्तूबर, 1906 का प्रेसिडेंसी एसोसिएशन की ओर से सावजनिक सभा हुई । उसका सभापतित्व करत हुए सर फीराजशाह मेहता न कहा

'वकालत मे उनके साथ जा घनिष्ठ सम्बन्ध कायम हुए वे अन्त तक कायम रह । उनके साथ काम करत हुए ही हमन जाना कि सभी सावजनिक मामलो पर हमारे विचार लगभग एक से थ । उस समय हमन जा मा यताए बनाई वह हमारे सावजनिक जीवन मे वराबर कायम रही ।

"ईश्वर को मैं इस बात के लिए धन्यवाद देता हू कि उन दिना श्री तैलग जसे हिन्दू बनर्जी जसे ईसाई और वदरुद्दीन तैयबजी जसे मुसलमाना स मेरा सम्पक हुआ क्याकि हिन्द मुसलमान और पारसी के रूप मे हमारे सम्पक ने ही मुझे यह अनुभूति कराई कि पारसी हिन्दू और मुसलमान के रूप मे हम कितन ही अच्छे बनने की काशिश क्या न करें, जीवन मे उसस भी बडी एसी बात है जिसके लिए हम जाति, धम और सम्प्रदाय के अपन सारे भेदभाव भुला देन चाहिए । इस अनुभूति के बाद ही जनहित के लिए हम हिन्दू, मुसलमान और पारसी के बजाय ऐसे सावजनिक सवक के रूप म एक हा कर काम करन लगे जिनके लिए उस देश के हित, कल्याण और विकास से बढ कर और कोई बात नही थी जिसम हम रहते है जो हम सबका है और जिससे हमे बेहद प्रेम है । (करतल ध्वनि)

'1884 मे जब श्री तलग और मैं इस निश्चय पर पहुच कि हमारे प्रान्त के लिए एक सक्रिय राजनीतिक सस्था की आवश्यकता है तो उसकी स्थापना और उसके सगठन म साथ देन के लिए तीसरी

जाति के प्रतिनिधि के रूप म श्री बदरुद्दीन का हमन आमन्त्रित किया। बदरुद्दीन की वकालत उसी समय चमकनी शुरू हुई थी फिर भी उन्हान कोई हिचकिचाहट नही की और सस्था के काय म हमारे साथ हो गये। सच पूछो तो उस सस्था (बाम्बे प्रेसिडेंसी एसोसिएशन) की कौसिल के चेयरमन के रूप म ही उनके राजनीतिक जीवन की शुरुआत हुई थी।

"सभी सावजनिक मामला मे जिनम कुछ तो बहुत ही नाजुक और महत्वपूण थे हम उनकी गम्भीर और सयत सलाह का लाभ मिला उनकी सेवाओ को मैं गिना नही सकता। सज्जनो आप लोग जो यहा उपस्थित है उनमे से बहुता को अब भी याद होगा कि काग्रेस के मद्रास अधिवेशन मे सभापति की हैसियत से देश की समस्याओ को उन्होंने कैसी प्रवाहपूण भाषा मे प्रस्तुत किया था और उनके पक्ष म कसी सुदर दलीलें पेश की थी, जिससे उनकी बात श्रोताओ के दिल और दिमाग म आसानी से बठ गई।

"काग्रेस का सभापति पद ग्रहण करने के लिए जब उनसे कहा गया तो बडी प्रसन्नता तथा सहानुभूति के साथ उन्होने उसे स्वीकार किया था और वह काय उन्होंने कितनी अच्छी तरह निभाया, यह उस काग्रेस की कारवाई पढने का कष्ट उठानेवाले सभी भली भाति जानते है। सभापति पद से उन्होंने जो बुद्धिमत्तापूण बातें कही उन्हे पढ कर आज भी हर एक हिंदू, और मुसलमान और पारसी लाभ उठा सकता है।

'उस अवसर पर बदरुद्दीन ने जो दूरदर्शिता तथा बुद्धिमत्तापूण परामश दिया, सर विचार म लोगो के लिए उसका अनुसरण ही उचित है। जिन विचारो स प्रेरित हो कर उन्होंने और मैंने अपने सावजनिक जीवन की शुरुआत की उन पर वह बराबर कायम रहे। यह इस बात से स्पष्ट है कि काग्रेस के खिलाफ किय गये कुत्सित प्रचार के बावजूद और हाईकोर्ट का न्यायाधीश बन जाने पर भी माहम्मेडन एज्युकेशनल कानफ्रेंस म भाषण करते हुए उन्होंने बडी स्पष्टता और स्वतत्रता के साथ सालभर यह बात कही कि काग्रेस के सम्बन्ध मे उनके जो विचार

पहले थ उनमे काई परिवतन नही हुआ है कि उन पर वह पहले की तरह कायम हैं। (करतलध्वनि) जसा कि मैंने अक्सर कहा है इस महान साम्राज्य का सामान्य नागरिक बनन के लिए अपनी जाति के हिता की उपेक्षा करना या उनके लिए सक्रिय रूप म उपयोगी काय बन्द कर देना आवश्यक नही है। देशहित के साथ-साथ मुसलमाना म शिक्षा प्रसार के काम मे भारी दिलचस्पी ले कर बदरुद्दीन ने इस बात को स्पष्ट कर दिया है।"

श्री चिमनलाल शीतलवाद ने (अभी उन्ह सर का खिताब नही मिला था) इस अवसर पर भाषण करत हुए बताया कि एक बार हम एक सावजनिक प्रश्न पर बातें कर रहे थे। अचानक जस्टिस तैयबजी उठ कर खडे हो गये और पहले की भाति जोश मे आ कर कमरे मे इधर उधर चक्कर ही नही लगाने लगे, छटपटाकर यह भी कहा "आह, उस दिन के लिए मैं कितना तरसता हू जब कि इस पद से अवकाश ग्रहण कर देश के काम मे फिर आपके साथ काम करने का अवसर पाऊगा।'

श्री दिनशा वाचा ने कहा

"श्री बदरुद्दीन ऐसा लगता है जन्मजात राजनीति मर्मज्ञ थे। जितना जितना मैं उन्हे जानता गया और मैंने देश की स्थिति, प्रशासन तथा नागरिक के नाते हमारे कतव्य और अधिकारा के बारे म उनके विचार सुने, मेरी यह धारणा और भी दढ हाती गई है विशिष्ट राजनीतिज्ञ के लिए जिन महान गुणा की आवश्यकता हाती है—ऊँचे दर्जे की योग्यता, राजनीतिक बुद्धिमत्ता, कुशलता निणयशक्ति, व्यवहारपटुता और इन सबम बढ कर उदारतापूण सहानुभूति—वे सब उनमे मौजूद थे।'

श्री वाचा ने अपने भाषण मे बदरुद्दीन के व्यक्तित्व का इतना बढिया चित्राकन किया जसा उससे पहले कभी किसी न नही किया था। उन्हाने कहा

"मुसलमान के नाते अपन धम क प्रति वह बडे निष्ठावान थे और उसके आचार विचार को अच्छी तरह समझत थे, परन्तु उनम

हृदय की विशालता और सहिष्णुता की भावना भी खूब थी। इसके अलावा बाल्यकाल के प्रशिक्षण तथा इंग्लैंड में पाई शिक्षा का भी उनके ऊपर बहुत प्रभाव पड़ा, जिसकी उनके सारे सार्वजनिक जीवन में झलक मिलती है। पाश्चात्य शिक्षा-दीक्षा से प्रभावित मुसलमान होने के कारण वह अपनी जाति के सुधार में निष्क्रिय नहीं रह सकते थे। उनकी यह धारणा ठीक ही थी कि उनके सहधर्मियों में समाज सुधार के लिए शिक्षा-प्रसार की सर्वप्रथम और सर्वाधिक आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में मुसलमानों के पिछड़ेपन को उन्होंने शुरू में ही साफ समझ लिया था। यही कारण है कि अपनी जाति में शिक्षा प्रसार की नींव डालने का वह बराबर प्रयत्न करते रहे और उसमें उन्हें सफलता भी मिली। पहले उन्होंने यह सोचा कि इसके लिए किस रूप में काम करें। वह इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि सुधार की शुरुआत पहले अपने घर से ही करनी चाहिए उसके बाद ही क्रमशः जाति के सुधार की ओर अग्रसर होना ठीक होता है, जिससे प्रतिरोध कम-से-कम हो। इसीलिए सर्वप्रथम अपने कुटुम्ब में ही इन्होंने समाज सुधार की मशाल जलाई और उसके बाद अपने उदाहरण को दूसरों के सामने रखा ताकि चारित्रबल एवं दृढ़निश्चय वाले लोग उनसे प्रभावित हो कर इस श्रेष्ठ और अत्यधिक लाभप्रद कार्य में उनके साथी बनें। यह हम सभी जानते हैं कि अंजुमन-ए इस्लाम की स्थापना के लिए उन्होंने किस उत्साह के साथ काम किया और उसमें उन्हें कैसी सफलता मिली। निश्चय ही वह उनके समाज सुधार के कार्य का अमर स्मारक रहेगी।

'भारत के सारे मुस्लिम समुदाय में उनका व्यक्तित्व अपनी सानी नहीं रखता था और उनके प्रभाव का अच्छा हो असर होता था। लेकिन मुसलमान से भी ज्यादा अपने को भारतीय कहने में वह गर्व अनुभव करते थे। हमारे राष्ट्रीय संगठन के उद्देश्य तथा उसकी आकांक्षाओं से वह पूरे समरस थे और उसकी लक्ष्य सिद्धि के बारे में उनके मन में किसी तरह की कोई दुविधा नहीं थी। अतएव उनकी मृत्यु से भारत ने प्रगति, न्याय, स्वतन्त्रता, सहिष्णुता और परम सहानुभूति के स्तम्भ रूप अपने एक सर्वोत्तम पुत्र को खोया है। मुझे भय है कि देश

का दूसरा तैयबजी शीघ्र प्राप्त नही होगा बल्कि काफी लम्बे समय तक उसकी प्रतीक्षा करनी पडेगी ।

'टाइम्स ग्राफ इडिया (11 ग्रक्तूबर 1906) के ग्रनुसार श्री मुहम्मद ग्रली जिन्ना का भी इस सभा म भाषण हुग्रा था। ग्रौरो की ही तरह उन्होंने भी बदरुद्दीन का श्रद्धाजलि ग्रर्पित की थी ।

इस सभा के तीन मास बाद टाउन हाल म एक ग्रन्य सभा हुई ग्रौर गवनर उसके सभापति थे। उपस्थित जना म सरकारी ग्रफसर ही नही, बल्कि सर फीरोजशाह मेहता सर जमेशद जी जीजीभाई श्री विटठलदास जी० ठाकरसी श्री दिनशा एदल जी वाचा श्री जहागीर बी० पटिट, श्री ग्रहमद रहमतुल्ला सयानी श्री हुमु सजी एदल जी वाडिया ग्रौर श्री मुहम्मद ग्रली जिन्ना जसे विशिष्ट लोकनेता भी उसम उपस्थित थे। श्री हुमु स जी वाडिया ने जो मित्र ग्रौर वकालत के पेशे मे साथी के रूप म बदरुद्दीन को तीस वष से जानते थे हृदय स्पर्शी भाषण दिया। दूसरा सुदर भाषण डा० ए० जी० वीगास का हुग्रा जिन्होने बदरुद्दीन को पूव ग्रार पश्चिम की सयुक्त सस्कृति से उत्पन्न ग्रनोखा ग्रौर दुलभ व्यक्ति बताया। सभा मे स्वर्गीय बदरुद्दीन तयब के सम्मान मे उनके उपयुक्त ग्रौर स्थायी स्मारक बनाने के लिए धन सग्रह का भी निश्चय हुग्रा, जिसके लिए एक समिति बनाई गई ।

भारत के ग्रन्य ग्रनक स्थाना मे भी इसी तरह की सभाए हुइ ग्रौर श्रद्धाजलि दी गई। परन्तु दुर्भाग्यवश कोई-न-कोई ऐसी ग्रडचन ग्राती ही गई जिससे ग्रभी तक कोई स्मारक नही बन पाया है ।

12

उपसंहार

बदरुद्दीन तयबजी उन लोगों में से थे जिन्होंने हमारे राष्ट्रीय जागरण के आरम्भ काल में उसमें महत्वपूर्ण योगदान किया। इलबर्ट बिल और प्रशासनिक सेवा (इण्डियन सिविल सर्विस) में प्रवेश के लिए आयु बढ़ाने पर उनके जो भाषण हुए उन्होंने तथा बाम्बे प्रेसिडेंसी एसोसिएशन और बम्बई लेजस्लेटिव कौंसिल में उनके सक्रिय योगदान ने इस दिशा में बहुत मदद की। कांग्रेस का उन्होंने जिस दृढ़ता और निःसंकोच रूप से बराबर समर्थन किया उससे उसे अपने शैशव काल में बहुत बल मिला।

उनकी सबसे बड़ी सेवा सम्भवतः यह है कि उन्होंने अपने व्यापक एवं सहिष्णु दृष्टिकोण से मुसलमानों को ऐसी राह दिखाई जिससे उनकी प्रिय संस्कृति और मान्यताओं पर आंच न आए और राष्ट्रीय एकता भी सिद्ध हो। इस तरह मुसलमानों का एक विशिष्ट समुदाय के रूप में राष्ट्र के साथ, जिसके कि वे गर्वीले और मूल्यवान अंग हैं, उन्होंने सरल और स्वाभाविक संयोग कर दिया। मुसलमानों में शिक्षा प्रसार, समाज-सुधार, आर्थिक अभ्युत्थान और राष्ट्रीय भावना के लिए अंजुमन ए इस्लाम को उन्होंने साधन बनाया। उनके नेतृत्व में अंजुमन ने कांग्रेस का उत्साहपूर्वक समर्थन किया। अपने जीवन के सन्ध्याकाल में जब उन्होंने मोहम्मेडन एंग्लो ओरियण्टल एज्यूकेशनल कान्फ्रेंस का सभापतित्व किया तो वहां भी वही तान छेड़ी और उन्हीं बातों पर फिर से जोर दिया जिनका कि अपने सारे जीवन में वह प्रतिपादन करते रहे थे।

फीरोजशाह और तलग के साथ उन्होने बम्बई महानगर की सेवा का व्रत लिया और जिन्दगी भर बडी लगन से सेवा काय किया। म्युनिसिपल कारपारेशन मे वह अल्पकाल ही रहे परन्तु जब तक रहे तब तक अपने मित्रो के साथ म्युनिसिपल सुधारो के लिए डटे रहे और अपन जीवन मे ही उसके शुभ परिणाम भी देखे। जिस बाम्बे प्रेसिडेंसी एसोसिएशन की उन्होने स्थापना की थी, उसने नगर और राष्ट्रीय आदोलन के बीच पक्की कडी का काम किया।

प्रमुख वकील तो वह थे ही, परन्तु न्यायाधीश का काम भी जिस शान स उन्होने किया उससे हमेशा महान न्यायाधीशो मे ही उनकी गणना होगी। वकील लोग उनकी न्याय मग्न की कुशलता और निणय की स्वतत्रता के लिए अपने बीच उनकी उपस्थिति को बहुमूल्य मानते थे और उनके भारतीय सहयोगी अपना माग प्रशस्त कर देने के लिए उनके प्रति विशेष रूप से कृतज्ञता का अनुभव करत थे। आज भी जिस रूप मे उन्ह बहुत याद किया जाता है वह तो उनका न्यायाधीश और देशभक्त का ही रूप है—न्याय, निभय और जाति या धम के पर्वाग्रह स सवथा मुक्त। वह अदभुत व्यक्ति थे —ऐसे वकील जो नतिकता मे प्रतिबद्ध थे उत्तरदायित्व की भावना [illegible] वोर और जिस व्यवसाय को बक ने सवश्रेष्ठ व्यवसाय बताया है [illegible] गौरव अनुभव करने वाले।

उन्होन अपने देश, समाज, नगर और व्यवसाय की जो [illegible] वस्तुत एक महान पुरुष के योग्य ही थी।

"काग्रेस, मे" गाधीजी ने (हरिजन, 18 नवम्बर 1933) [illegible] "बदरुद्दीन तैयब जी वर्षो तक निर्णायक व्यक्ति रहे।" [illegible] लदन म हुई गोलमेज कान्फ्रेंस म भी गाधीजी [illegible] का उल्लेख कर उनकी सराहना की थी।[1]

---

1 "बाम्बे क्रानिकल" (19 सितम्बर 1931)। [illegible] इडिया" (8 [illegible] 1921) मे भी अन्य माडरेट नेताओं के [illegible] किया था।

निश्चय ही उनका निधन बहुत असामयिक रहा यद्यपि 'इंडियन सोशल रिफार्मर' के जिस अंक में था मि० नटराजन ने बदरुद्दीन के अन्तिम संस्कार का विवरण दिया था उसी में आगाखां के नेतृत्व में वाइसराय लार्ड मिण्टो से मिले प्रसिद्ध मुस्लिम प्रतिनिधिमंडल का दिया गया वाइसराय का जवाब भी प्रकाशित हुआ।[1] यह कार्रवाई स्पष्ट ही उस कांग्रेस के विरुद्ध थी जिसको बदरुद्दीन ने खून पसीने से सींचा था।

बदरुद्दीन ने आजीवन बंधनों से मुक्ति का प्रयत्न किया। एक समय जब भारतीयों और अंग्रेजों की तो बात ही क्या भारतीयों में परस्पर भी जाति धर्म आदि के कारण सामाजिक संपर्क आम बात नहीं थी, बदरुद्दीन ने मि० चार्ल्स ओलिवंट के साथ मिलकर मिश्र पार्टियों की शुरुआत की जो अपने आप में बहुत बड़ी बात न होते हुए भी उस समय की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण थी। टाइम्स आफ इंडिया (6 जनवरी 1883) ने उस पर लिखा था 'विभिन्न जातिवालों का इस तरह एक जगह मिलना जुलना अब बम्बई के सामाजिक जीवन का अंग बनता जा रहा है जो इससे पहले होनेवाले (नाच पार्टियों) से कहीं अच्छा है। मि० ओलिवंट और तयबजी ने यह एक अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया है, जिसका बम्बई के अन्य भद्र लोग भी अनुसरण करें तो अच्छा ही होगा।' इसमें कोई शक नहीं कि बदरुद्दीन खाई पाटने वाले थे और विभिन्न जातियों तथा विभिन्न विचारों की दूरियां कम करने का ही अविश्रांत प्रयत्न उन्होंने जीवन भर किया।

विभिन्न समूहों या दृष्टिकोणों के बीच पुल बनाकर खाई पाटने का काम ऐसा है जिसमें सामान्यतः रुकावटें और कठिनाइयां ही सामने आती हैं और वे आदमी को तोड़ डालती हैं अतः ऐसा प्रयत्न करने वालों में सामान्य लोगों

---

1 आगाखां के भाषण और वाइसराय के जवाब के लिए डा० बी० आर० अम्बेडकर की पुस्तक 'पाकिस्तान आर पार्टिशन आफ इंडिया'' (प्रकाशक थकर एंड कं० लि०, बम्बई) का परिशिष्ट 12 देखें।

से अधिक साहस और व्यावहारिकता होना बहुत जरूरी है। बदरुद्दीन में ये गुण थे तभी तो हण्टर कमीशन के सामने वह यह कह सके

'सारा दोष मैं सरकार पर नही थोपता बल्कि मेरे ख्याल म उसके लिए अधिकाश रूप मे स्वय मुसलमान ही निस्सदेह दोषी हैं। इस बात का स्वीकार करने म मैं किसी से पीछे नही हू कि मुसलमाना के पिछडेपन के मैंने जो कारण बताए ह उनम से पहले, दूसरे और तीसरे क अलावा जिनके लिए बहुत कुछ वही जिम्मेदार हैं—अकमण्यता और अधविश्वास के वे शिकार न हाते तो उनकी ऐसी बुरी हालत हर्गिज नही होती।'[1]

यह कहने के बाद सरकार स उन्होने शिकायत का इजहार किया

"इस सबके बावजूद मैं यह सोचे बगर नही रह सकता कि अभी हाल तक उनके (मुसलमानो के) साथ महारानी के प्रजाजना की अन्य जाति वाला के समान व्यवहार नही हुआ है, और इसी कारण या किसी अन्य कारणवश देश के प्रशासन से उन्हे करीब-करीब अलग ही रखा गया है।

इस प्रकार एक हा साथ एक ओर उन्होने "अकमण्यता और अधविश्वास' के लिए मुसलमानो की भत्सना की और दूसरी ओर उनके साथ उपयुक्त व्यवहार न करने के लिए अग्रेजा की भी आलोचना की।

मुसलमाना के प्रति अग्रेजो का रुख विद्रोह के बाद खास तौर से कठोर हुआ और उनका खास तौर से दमन किया गया। 'अग्रेजा का आमतौर पर

---

1 मुसलमानों के पिछड़ेपन के उन्होंने जो सात कारण बताए, वे इस पुस्तक मे अन्यत्र दिए गए हैं।

ऐसा ख्याल था कि विद्रोह की जिम्मेदारी मुसलमानों पर है, अतः उनको बदला लेने के लिए ही उन्होंने सन्देह मात्र पर हजारों मुसलमानों को फांसी के तख्ते पर चढ़ा दिया और अन्य अनेक की जागीरें तथा सम्पत्ति को जब्त कर लिया।[1]

देशभक्त के रूप में बदरुद्दीन का सबसे महत्वपूर्ण योगदान धर्मनिरपेक्ष समाज की उनकी कल्पना है जिसका उन्होंने प्रतिपादन किया। जिस युग के वह थे उसमें भारत की राजनीतिक एकता की कल्पना बहुत स्पष्ट था। परन्तु बदरुद्दीन इतने दूरदर्शी थे कि उसी समय उन्होंने राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता का अनुभव कर लिया था। जैसा कि "मद्रास स्टैण्डर्ड" (23 अगस्त 1906) ने लिखा :

'उनके समय भारत की आवश्यकताओं की उनसे अधिक स्पष्ट, सही और गहरी अनुभूति और किसी को नहीं हुई थी और उन्होंने अपने सामने जो लक्ष्य रखा उसकी प्राप्ति के लिए उनसे अधिक साहस और निःस्वार्थ भाव से अन्य किसी ने कार्य नहीं किया। निःसन्देह वह एक प्राचीन मुसलमान परिवार के सदस्य थे जो अपने ऊंचे सामाजिक दर्जे तथा अपने सदस्यों की प्रबुद्ध सार्वजनिक भावना के कारण प्रतिष्ठावान था। परन्तु बदरुद्दीन तैयब जी को अपना रास्ता आप ही निकालना पड़ा। उन्होंने अपने को अज्ञान और पूर्वाग्रह के झाड़ झंखाड़ में ग्रस्त पाया, जिसका सामना करने के लिए उनके सहधर्मियों के पास न तो साधन थे और न उनमें वैसा साहस ही था। उन्होंने अपने को इस कठिन कार्य के लिए तैयार किया और मुसलमानों की प्रगति के लिए ऐसी बहादुरी, सूझबूझ और उत्साह से जुट गए जिससे कोई उनका मुकाबला नहीं कर सकता था। बम्बई हाईकोर्ट में न्यायाधीश बन जाने के बाद जब वह सक्रिय राजनीति

---

1 "डेस्टिनी आफ दि इंडियन मुस्लिम" लेखक डा० एस० आबिद हुसन। एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई। पृष्ठ 22।

म हट गए तो अपना सारा ध्यान उन्होंने अपने सहधर्मियों की शिक्षा और उनके सामाजिक उत्थान पर ही केन्द्रित किया और, यह एक दुखद तथ्य है कि अपने अंतिम सार्वजनिक भाषण में भी उन्होंने मुसलमानों से शिक्षा तथा परदे की प्रथा जैसे सामाजिक प्रश्नों पर ही ध्यान देने का आग्रह किया।

मुसलमानों की बौद्धिक और सामाजिक उन्नति के लिए उन्होंने अथक प्रयत्न किए जिससे कि वे सामान्य लक्ष्यों की सिद्धि के लिए अधिक उन्नत जाति वालों के साथ अच्छी तरह सहयोग कर सकें। भारत की एकता यानी संयुक्त भारत ही उनका उद्देश्य था। अपनी विलक्षण बुद्धि द्वारा उन्होंने भारत के उज्ज्वल भविष्य की कल्पना की और देश-भक्ति की भावना से प्रेरित हो पूरी शक्ति और पूर्ण उत्साह के साथ वह उसके लिए प्रयत्नशील हुए। अपने समय के सभी वैध जन आन्दोलनों के प्रति उनकी सहानुभूति रही और बहुत बार उन्होंने उनका सक्रिय समर्थन भी किया क्योंकि वह समझते थे कि ये सब उसी उज्ज्वल भविष्य की ओर हमें ले जाने की मानसिक और नैतिक उथल पुथल के प्रदर्शन हैं जिसमें हम अधिक सुखी और समृद्धिशाली जीवन बिताएंगे। उनका मानसिक क्षितिज इतना व्यापक था कि अधिक स्वस्थ जीवन के लिए मानव संघर्ष की गतिविधियों को ऐसे उच्च दृष्टिकोण से देख सकते थे जैसा दृष्टिकोण उनके अधिकांश देशवासियों का नहीं था।

पत्र ने यह भी लिखा था कि उन्होंने हाईकोर्ट के न्यायाधीश रहते हुए भी दो बार जिस तरह कांग्रेस का समर्थन किया, एक तो न्यायपीठ से ही और दूसरे मोहम्मेडन एंग्लो ओरियण्टल कान्फ्रेंस के मंच से उससे स्पष्ट है कि अन्य निष्ठाओं से अधिक उनकी निष्ठा सर्वोपरि अपने देश के प्रति थी।"

दूसरी सराहना भी दक्षिण से ही सामने आई। श्री सी० करुणाकर मेनन (इंडियन पैट्रियट 12 सितम्बर 1906) लिखा था

"भारतीय जनता ने एक स्वर से उन्हें अपना सर्वोच्च सम्मान दिया

किया और उन्होंने नेता के रूप में अपने को किसी विशेष वर्ग या जाति तक सीमित न रखकर वह एक सिद्धांत विशेष के समर्थक के रूप में सामने आए। महारानी और सरकार के प्रति समान निष्ठा पर आधारित भारतीय राष्ट्रीयता ही वह सिद्धांत था। इस सिद्धांत का समर्थन करते हुए उन्होंने इस बात का अनुभव किया कि उस राष्ट्रीयता का निर्माण करने वाले प्रत्येक वर्ग का उन्नत करना आवश्यक है। मुसलमान होने के नाते अपने सहधर्मियों के सामाजिक उत्थान उनकी शैक्षणिक प्रगति तथा भौतिक समृद्धि के लिए उन्होंने पूरा प्रयत्न किया, इसी तरह एक भारतीय के रूप में उन्होंने अपने देशवासियों की चहुँमुखी प्रगति के लिए काम किया। सर्वोच्च संस्कृति से सम्पन्न और व्यापक सहानुभूतिशील होने के कारण उस रूढ़वादिता के अंधानुसरण को उन्होंने आवश्यक नहीं माना जो किसी भी धर्म या सामाजिक व्यवस्था में कालान्तर में घर कर लेती है और जिससे प्रगति में किसी हद तक रुकावट ही पड़ती है। इसीलिए कुछ मामलों में वह अपने कट्टर सहधर्मियों से कहीं प्रगतिशील थे, परन्तु इस बात का उन्होंने ध्यान रखा कि उनके दूसरे सहधर्मी उनसे विमुख न हो जाएं बल्कि साथ-साथ आगे बढ़ें। इन्हीं कारणों से वह अत्यधिक प्रभावशाली बन गए थे। दूर-दूर तक व्यापक रूप में उनका प्रभाव था और उनके उदाहरण से बहुतेरे मुसलमानों की भावनाओं, आकांक्षाओं और उनके सामाजिक आदर्शों को प्रेरणा मिली। मुसलमानों के तो वह बड़े नेता थे ही, पर वह भारतीयों के निस्सन्देह उससे भी बड़े नेता थे।"

उनकी यह सराहना ठीक ही थी, क्योंकि कोई बुद्धिमान और साहसी नेता ही यह कह सकता है कि हमारी एकता राष्ट्र का निर्माण करने वाले विविध तत्वों पर निर्भर है और वे यदि इस बात को भुला दें कि राष्ट्र रूपी बड़े समुदाय के वे अभिन्न अंग हैं तो वह छिन्न भिन्न भी हो सकती है। अब तक जो हुआ वह इसी बात की पुष्टि करता है। अतः भविष्य में तो दलगत विभिन्नताओं, धर्मोन्माद और प्रदेश भक्ति से ऊपर उठकर राष्ट्रीय एकता पर

हम प्रार भी जार ्ना पडगा। एमा करव ही प्रपन देग म, जिसन वरस। सव दु ख प्रौर गघष ही दगा है हम एस समाज की स्थापना कर सकते हैं जा स्वतन्त्र, सतुष्ट प्रौर समद्ध हा प्रौर ्न क महान प्रतीत एव उज्ज्वल भविष्य के प्रनुरूप।

परिशिष्ट 1

मुस्लिम शिक्षा के सम्बन्ध मे हण्टर कमीशन को दिए ज्ञापन के अ श

"उच्च शिक्षा मे इस प्रात के मुसलमान समुदाय की इस समय कैसी दयनीय स्थिति है, यह बताने के लिए हम शिक्षा निदेशक (डाइरेक्टर आफ पब्लिक इस्ट्रक्शन) की 1880 1881 की रिपोर्ट से नीचे दिए हुए चौकानेवाले आकडो की ओर आपका ध्यान आकर्षित करते है

डेक्कन कालेज म विद्यार्थिया की सख्या 175 है, परन्तु उनम मुसलमान एक भी नही है। एलफिन्स्टन कालेज म 24 विद्यार्थी, है परन्तु मुसलमान एक भी नही। सेण्ट जवियस कालेज म 71 विद्यार्थिया म केवल एक मुसलमान है।

"निम्न तथ्यो से मालूम पडेगा कि विशेष या वतानिक शिक्षा म भी मुसलमाना की यही दयनीय स्थिति है

गवनमेंट ला स्कूल म 152 छात्र है, जिनमे सिफ 3 मुसलमान है। ग्राण्ट मेडिकल कालेज मे 282 म कवल 3 मुसलमान ह। पूना के इजीनियरिंग कालेज के 159 छात्रो म भी कुल मिलाकर सिफ 5 मुसलमान है।

"नीचे दिये तथ्या से पता चलगा कि इस प्रात के हाई स्कूला से मुसलमानो को आमतौर से कोई लाभ नही पहुचा है

पूना के हाइ स्कूला म 574 विद्यार्थी है, जिनम मुसलमाना की सख्या केवल 12 है। शोलापुर हाई स्कूल म 110 विद्यार्थिया म केवल 2 मुसलमान है। रत्नागिरी हाई स्कूल मे 179 मे केवल 10 मुसलमान विद्यार्थी हैं। एलफिन्स्टन हाई स्कूल के 795 विद्यार्थिया मे मुसलमान केवल 17 है। सण्ट जेवियम हाई स्कूल मे 675 विद्यार्थिया म मुसलमानो की सख्या

केवल 19 है। विश्वविद्यालय के विवरण से मालूम पडता है कि पिछले 23 वर्षो (1859 81) मे जबकि अन्य जातियो के 15 247 विद्यार्थियो न मट्रिक की परीक्षा पास की, मुसलमानो मे सिफ 48 को ही उसम उत्तीण होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

"माध्यमिक शिक्षा मे भी उनकी यही दयनीय स्थिति है, जसा कि निम्न तथ्या से नात होगा

बम्बई शहर म 6 735 विद्यार्थी अग्रेजी पढ रहे हैं, जिनमे मुसलमान कुल मिलाकर सिफ 220 हैं। सेण्ट्रल डिवीजन मे ऐसे विद्यार्थियो की सख्या 9,586 है जिनम मुसलमान केवल 307 हैं। नाथ डिवीजन मे 977 मे मुसलमान केवल 39 हैं। नारदन डिवीजन मे 4 459 मे मुसलमाना की सख्या 182 है। सदन डिवीजन म 2 801 म 62 मुसलमान हैं। सिंध मे 19, 965 म 795 मुसलमान हैं।

"प्राथमिक शिक्षा म भी मुसलमाना की इससे अच्छी हालत नही, क्याकि प्रात के वर्नाक्युलर स्कूला म पढने वाले 2 75 000 विद्यार्थियो म मुसलमानो की सख्या केवल 33,568 है जबकि हिन्दुओ की 2,35 077 से कम नही है।

"ज्ञापनदाताओ के लिए इस दुखद बात को सिद्ध करन के लिए और तथ्य या आकडे प्रस्तुत करन की आवश्यकता नही कि विभिन्न कारणो और परिस्थितिया से, जिनम से कुछ की जिम्मेदारी निश्चित रूप से शिक्षाधिकारियों की ही है, इस प्रात के मुसलमाना की अज्ञानता, निधनता और मुसीबत बढती ही जा रही है।

ज्ञापन म यह भी कहा गया

"ज्ञापनदाता कृषि तथा तकनीकी शिक्षा क लिए स्कूल खोलन के प्रश्न पर भी आपका ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं, जिनम जनसमुदाय कृषि के वज्ञानिक उपायो और अन्य व्यावहारिक कार्यों, विज्ञान तथा उद्योगधधो की शिक्षा प्राप्त कर। इसस उन्ह अपन जीवन निर्वाह के साधन ही उपलब्ध नही होगे बल्कि वह देश की भौतिक और बौद्धिक समृद्धि मे भी सहायक होग।

ज्ञापनदाता इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि 'यह बहुत कठिन और जटिल प्रश्न है परन्तु वे समझते हैं कि अब ऐसा समय आ गया है जब लोगो को उनकी अकमण्यता एव उदासीनता के दुष्परिणामो से बचाने के लिए सरकार को यह प्रयत्न करना ही चाहिए।

"देश की भूमि की उत्पादन क्षमता क्रमश घट रही है और सदियो मे पनपने वाले हमारे कला कौशल तथा उद्योग धन्धे यूरोप तथा अमरीका मे हुई आधुनिक खोजो के कारण लगभग नष्ट हो चुके है क्योकि नए तरीको का हमे कोई ज्ञान नही और पुराने साधनो से उनके उत्पादन का हम मुकाबला नही कर सकते। ऐसी स्थिति म सरकार केवल हाई स्कूल और कालेज खोल कर ही सतोष कर ले और लोगो को कृषि के सशोधित तरीको तथा कला, विज्ञान और उद्योग के व्यावहारिक ज्ञान की जो नई खोजे हुई है उनका लाभ उठाने की शिक्षा देने का प्रयत्न न करे—जिनका उपयोग करने से इस सदी म यूरोप और अमरीका की शक्ल ही बदल गई है—तो यही कहा जाएगा कि उसने अपने कर्तव्य का पूरी तरह पालन नही किया।

'एक अन्य आवश्यक विषय की ओर भी ज्ञापनदाता आपका ध्यान आकर्षित करना चाहते है। वह यह कि कुछ स्कूल ऐसे भी खोले जाए जो अधिक व्यावहारिक किस्म के हो, जिनमे जो लोग विश्वविद्यालय के स्नातक होने या कोई बौद्धिक व्यवसाय अपनाने के बजाय व्यापार व्यवसाय या खेती-बाडी का अथवा ऐसा ही कोई व्यावहारिक काम धधा करना चाहे, उन्हे दिखावटी के बजाय व्यावहारिक ज्ञान की शिक्षा अधिक दी जाए। ज्ञापनदाताओ के मतानुसार बम्बई जैसे प्रात मे जहा व्यापारिक और व्यावहारिक ज्ञान की अधिक आवश्यकता है, यदि इस तरह की व्यावहारिक शिक्षा के उपयुक्त स्कूल खोले जाए तो शिक्षा का आम लोगो मे अधिक प्रसार होगा तथा धनी और समृद्ध व्यवसायी समुदाय से उनके लिए बहुत कुछ आर्थिक सहायता भी मिल सकेगी। अभी तो जैसी हालत है उसमे सभी व्यावसायिक जातियो के लोग सरकारी स्कूलो से उदासीन ही बने हुए हैं फिर वे चाहे भाटिये, लोहानी और बनिये जैसी जातियों के हिन्दू हो या मोमिन और खोजे जैसे मुसलमान।"

इस सम्बध मे बदरुद्दीन ने निम्न सुभाव दिए

1 प्रात भर मे जो भी मुस्लिम आबादी के प्रमुख केन्द्र हैं उन सभी मे मुसलमानो के लिए प्राथमिक माध्यमिक और हाई स्कूल खोले जाए ।

2 मुसलमानो के सभी स्कूलो म शिक्षा का माध्यम हिन्दुस्तानी हो।

3 हिन्दुस्तानी, फारसी और अरबी की पढाई के साथ-साथ अन्य शिक्षा भी दी जाए।

4 मुस्लिम समाज की भारी गरीबी को हुए देखते गरीब मुसलमान बच्चो से शिक्षा का कोई शुल्क न लिया जाए।

परिशिष्ट 2

मद्रास से कांग्रेस (1887) के तीसरे अधिवेशन मे सभापति-पद से दिया गया बदरुद्दीन का भाषण

सर टी० माधवराव और सज्जनो, इस महान् राष्ट्रीय सम्मेलन का सभापति निर्वाचित कर आपने मेरी जो इज्जत की है उसके लिए मैं आपको हार्दिक धन्यवाद देता हू (करतल ध्वनि)। सज्जनो, आपने जो सम्मान मुझे प्रदान किया है, वह सबसे बडा सम्मान जो कि आप अपने किसी देशवासी को दे सकते है, उसके लिए गर्व अनुभव न करना सभव नही है। (जोरदार और लगातार करतल ध्वनि) सज्जनो, बम्बई म तथा अन्यत्र भी मुझे बडी-बडी सभाए देखने का सम्मान प्राप्त हुआ है, परतु इस तरह की सभा म उपस्थित होने का मेरे लिए यह नया और अदभुत अनुभव है—जिसमे न केवल किसी एक नगर या प्रात विशेष के प्रतिनिधि हैं बल्कि समग्र भारतीय उप महाद्वीप के ऐसे प्रतिनिधि है जो किसी एक वर्ग या हित के बजाय भारत के लगभग सभी विभिन्न वर्गों और हितो का प्रतिनिधित्व करते हैं। (करतल ध्वनि)

सज्जनो, 1885 म बबई म कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन मे उपस्थित होने का सौभाग्य मुझे प्राप्त नही हुआ, न उससे अगले वर्ष कलकत्ता म हुए कांग्रेस अधिवेशन म परतु, सज्जनो, उन दोनो ही अधिवेशनो की कारवाई मैंने सावधानी के साथ पढी है और यह कहने मे मुझे कोई सकोच नही है कि उनमे जसी कुशलता, बुद्धिमत्ता और वाकपटुता प्रदर्शित की गई उस पर हम पूरी तरह गर्व कर सकते हैं। (करतल ध्वनि)

शिक्षितों की संख्या

सज्जनो, हमारी राजभक्ति पर लांछन लगाने के लिए कहा जाता है कि कांग्रेस तो देश के पढ़े लिखे लोगों की संख्या है। ऐसा कहने वालों का यदि यह अभिप्राय हो कि इसमें केवल ऐसे लोगों की भीड़ है जिनके पास अपनी शिक्षा के सिवा और कुछ नहीं है, या ऐसा अभिप्राय हो कि देश के उच्च वर्ग धनी-मानी और अभिजात्य वर्ग के लोगों ने अपने को इससे अलग रखा है तो उसका जवाब मैं बिल्कुल सीधे और साफ इनकार के रूप में ही दे सकता हूँ। (करतल ध्वनि) जो भी कोई ऐसा कहे उससे मैं यही कहूँगा मेरे साथ इस सभाभवन में आओ (करतल ध्वनि) और अपने आसपास देख कर (करतल ध्वनि) मुझे बताओ कि इस सभाभवन की चहारदीवारी में अभिजात्य वर्ग का, और केवल जन्म और धन से उच्च वर्ग के हैं, बल्कि बुद्धि, शिक्षा और ... स्थिति में भी उच्च वर्गीय हैं ऐसे लोगों का जैसा प्रतिनिधित्व है ... और कहाँ मिलेगा ? (करतल ध्वनि) परन्तु सज्जनो लांछन ... ऐसा न कहा जाय, तो मैं इस बात पर खुश ही हो सकता हूँ कि ... शिक्षित आत्माओं की संख्या है।

स प्र
मिल
समस्त मैं

बार म ही ऐसा कहा जा सकता है तथा बहुत कुछ कहा व कुछ विशेष रूप से स्थानीय एव अस्थायी कारणो म ही ऐसा हुआ (करतल ध्वनि), दूसरे, मैं समझता हू कि न्यायोचित रूप म कांग्रेस के इस अधिवेशन क बारे म ऐसा कुछ नही कहा जा सकता। और सज्जनो यह बात ईमानदारी से मुझे आपके सामने मजूर करनी ही चाहिए कि बीमारी की हालत म भी कांग्रेस के सभापतित्व का भारी दायित्व जो मैंने वहन किया है वह अपनी इस इच्छा क ही कारण कि कम से कम मैं तो अपनी नीति भर यह साबित कर ही दू कि न केवल व्यक्तिगत रूप म बल्कि बम्बई की अजुमन ए इस्लाम के प्रतिनिधि की हैसियत से भी मैं ऐसा नही मानता कि भारत का विभिन्न जातियो की स्थिति ,या उनके सबधो म- फिर व हिन्दू हो या मुसलमान, पारसी या ईसाई—कोई ऐसी बात है जिसस किसी भी समुदाय क नेता दूसरो से अलग रह कर ऐसे सुधारो या अधिकारो के लिए प्रयत्न कर जिनकी सभी के लिए समान आवश्यकता है और मेरा पक्का विश्वास ह कि सरकार पर मिलजुल कर दबाव डाल कर ही उन्ह प्राप्त किया जा सकता है। (करतल ध्वनि)

सज्जनो, यह निस्सदेह सत्य है कि भारत के सभी महान समुदायो मे प्रत्येक की अपनी अपनी विशेष सामाजिक, नैतिक, शैक्षणिक, यहा तक कि राजनीतिक समस्याए भी हैं। लेकिन जहा तक सारे भारत स सम्बन्धित सामान्य राजनीतिक प्रश्नो की बात है—जिन पर ही सिर्फ यह कांग्रेस विचार करती है—कम-से-कम मेरी समझ म यह बात नही आती कि मुसलमान अन्य समुदायो या धर्मो अथवा दूसरे देशवासियो के साथ कन्धे-से-कन्धा मिला कर सभी के सामान्य हित के लिए क्या न काम करें? (करतल ध्वनि) सज्जनो, बम्बई प्रान्त मे तो इसी सिद्धान्त पर हमने हमेशा काम किया है और बगाल तथा मद्रास प्रान्त से ही नही बल्कि पश्चिमोत्तर प्रान्त (अब उत्तर प्रदेश) तथा पजाब से भी यहा जो मुसलमान प्रतिनिधि आये है उनकी सख्या, स्थिति और उपलब्धियो को देखते हुए मुझे इस बात म जरा भी सन्देह नही कि देश भर के मुस्लिम नेताओ का भी—कुछ महत्वपूर्ण अपवाद को छोड कर—यही मत है। (करतल ध्वनि)

बारे में ही ऐसा कहा जा सकता है तथा बहुत कुछ कहा के कुछ विशेष रूप से स्थानीय एवं अस्थायी कारणों से ही ऐसा हुआ (करतल ध्वनि), दूसरे, मैं समझता हूं कि न्यायोचित रूप में कांग्रेस के इस अधिवेशन के बारे में ऐसा कुछ नहीं कहा जा सकता। और सज्जनो यह बात इमानदारी से मुझे आपके सामने मंजूर करनी ही चाहिए कि बीमारी की हालत में भी कांग्रेस के सभापतित्व का भारी दायित्व जो मैंने वहन किया है वह अपनी इस इच्छा के ही कारण कि कम से कम मैं ता अपनी शक्ति भर यह साबित कर दी कि न केवल व्यक्तिगत रूप में बल्कि बम्बई की अंजुमन ए इस्लाम के प्रतिनिधि की हैसियत से भी मैं ऐसा नहीं मानता कि भारत की विभिन्न जातियों की स्थिति या उनके संबंध में— फिर वे हिन्दू हो या मुसलमान पारसी या ईसाई— कोई ऐसी बात है जिससे किसी भी समुदाय के नेता दूसरों से अलग रह कर ऐसे सुधारों या अधिकारों के लिए प्रयत्न करें जिनकी सभी के लिए समान आवश्यकता है और मेरा पक्का विश्वास है कि सरकार पर मिलजुल कर दबाव डाल कर ही उन्हें प्राप्त किया जा सकता है। (करतल ध्वनि)

सज्जनो, यह निस्सदेह सत्य है कि भारत के सभी महान समुदायों में प्रत्येक की अपनी अपनी विशेष सामाजिक नैतिक, शैक्षणिक यहां तक कि राजनीतिक समस्याएं भी है। लेकिन जहां तक सारे भारत से सम्बन्धित सामान्य राजनीतिक प्रश्नों की बात है—जिन पर ही सिर्फ यह कांग्रेस विचार करती है— कम से कम मेरी समझ में यह बात नहीं आती कि मुसलमान अन्य समुदायों या धर्मों अथवा दूसरे देशवासियों के साथ कन्धे-से-कन्धा मिला कर सभी के सामान्य हित के लिए क्यों न काम करें? (करतल ध्वनि) सज्जनो, बम्बई प्रान्त में तो इसी सिद्धान्त पर हमने हमेशा काम किया है और बंगाल तथा मद्रास प्रान्त से ही नहीं बल्कि पश्चिमोत्तर प्रान्त (अब उत्तर प्रदेश) तथा पंजाब से भी यहां जो मुसलमान प्रतिनिधि आये हैं उनकी संख्या, स्थिति और उपलब्धियों को देखते हुए मुझे इस बात में जरा भी सन्देह नहीं कि देश भर के मुस्लिम नेताओं का भी—कुछ महत्वपूर्ण अपवादों को छोड़ कर—यही मत है। (करतल ध्वनि)

शिक्षितो की संस्था

बद्रुद्दीन तैयब

सज्जनो, हमारी राजभक्ति पर लाछन लगाने के लिए कहा जाता है कि कांग्रेस तो देश के पढे लिखे लोगो की संस्था है। ऐसा कहने वालो का यदि यह अभिप्राय हो कि इसमे केवल ऐसे लोगो की भीड है जिनके पास अपनी शिक्षा के सिवा और कुछ नही है, या ऐसा अभिप्राय हो कि देश के उच्च वर्ग धनी मानी और अभिजात्य वर्ग के लोगो ने अपने को इससे अलग रखा है तो उसका जवाब मैं बिल्कुल सीधे और साफ इन्कार के रूप मे ही दे सकता हू। (करतल ध्वनि) जो भी कोई ऐसा कहे उससे मैं यही कहूगा मेरे साथ इस सभाभवन मे आओ (करतल ध्वनि) और अपने आसपास देख कर (करतल ध्वनि) मुझे बताओ कि इस सभाभवन की चहारदीवारी मे अभिजात्य वर्ग का जो न केवल जन्म और धन से उच्च वर्ग के हैं बल्कि बुद्धि शिक्षा और सामाजिक स्थिति मे भी उच्च वर्गीय है ऐसे लोगो का जैसा प्रतिनिधित्व है उससे बढ कर और कहा मिलेगा ? (करतल ध्वनि) परन्तु सज्जनो लाछन के लिए ही ऐसा न कहा जाये तो मैं इस बात पर खुश ही हो सकता हू कि कांग्रेस शिक्षित भारतीयो की संस्था है।

सज्जनो कम-से कम मुझे तो इस बात मे गर्व अनुभव होता है कि मैं न केवल शिक्षित हू बल्कि इस देश का निवासी भी हू। (करतल ध्वनि) और सज्जनो मैं जानना चाहूगा कि महारानी के लाखो भारतीय प्रजाजनो मे शिक्षित लोगो से बढ कर ब्रिटिश साम्राज्य के सच्चे वफादार और राज्यभक्त मित्र और कौन मिलेंगे ? (जोरदार और लगातार करतल ध्वनि) सज्जनो, ब्रिटिश सरकार के सच्चे और वफादार मित्र होने के लिए सरकार ने हमे जो वरदान दिये है उनके महत्व को समझना आवश्यक है और मैं जानना चाहता हू कि उनके महत्व को भला कौन ज्यादा अच्छी तरह समझ सकता है ?— शिक्षा प्राप्त देशवासी लोग या दस के अनपढ अनजान किसान ? (करतल ध्वनि) और सज्जनो, ईश्वर न करे कि कभी रूस और ब्रिटेन के बीच इस देश पर आधिपत्य के लिए महायुद्ध हो परन्तु ऐसा हो तो इस बात का निर्णय ज्यादा अच्छी तरह कौन कर सकेगा कि दोनो साम्राज्यो मे कौन अच्छा है ? सज्जनो

इस बात को मैं फिर से दोहराता हू कि ऐसे विषया मे ठीक निणय देश के शिक्षा प्राप्त लोग ही कर सकते हैं, क्योंकि हम शिक्षित लोग ही यह जानने और समझने की क्षमता रखते हैं कि ब्रिटेन के राज्य मे तो हम सावजनिक सभा के अधिकार, वाक और भाषण की स्वतन्त्रता तथा उच्च शिक्षा का उपयोग करते हैं, पर रूस के अतगत सम्भवत हम ऐसी दुराग्रही और स्वेच्छाचारी सरकार से पाला पडेगा जो विशाल सैन्य सगठन, पडोसिया पर आक्रमण और बडे-बडे सैनिक अभियाना पर ही गव अनुभव करेगी। (करतल ध्वनि)

शिक्षित भारतवासी क्या राजद्रोही हैं ?

नहीं, सज्जनो, हमारे विरोधी कुछ भी क्या न कहें, हम शिक्षित भारतवासी ही शिक्षा से प्राप्त अपने ज्ञान के द्वारा सभ्य और प्रबुद्ध सरकार से नागरिको का प्राप्त होने वाले लाभ का सर्वोत्तम मूल्याकन कर सकते है और इसलिए हमारा देश मे ब्रिटिश सरकार का समथक होना स्वय हमारे अपने हित मे आवश्यक है। (करतल ध्वनि) परन्तु सज्जनो, जो लोग हम पर राजद्रोह का दोषारोपण करते हैं, एक क्षण के लिए उन्होने कभी यह भी सोचा है कि उनके तक का पूरा अथ क्या है ? जो बात व कहते हैं उसके पूरे अथ और महत्व को भी वे समझते हैं या नही ? इस बात का वे जानते है या नही कि हम पर राजद्रोह का दोषारोपण कर वस्तुत वे उस सरकार की ही निन्दा और भत्सना करते है जिसका कि वे समथन करना चाहते हैं ? (जोरदार और लगातार करतल ध्वनि) क्योकि, सज्जनो जब वे यह कहते है कि शिक्षित भारतवासी राजद्रोही हैं तो उसका क्या अथ होता है ? उसका अथ है कि शिक्षित भारतवासियो की राय मे अर्थात् जिन्होने मस्तिष्क को प्रशस्त स्वतन्त्र और प्रबुद्ध बनाने की शिक्षा पाई है जो देश के इतिहास का जानते हैं और पुरानी सरकारो से वतमान सरकार मे क्या अन्तर है इस को समझ सकते हैं, ऐसे सभी पढे लिखे और समझदार भारतवासियो की राय म अग्रेजी सरकार इतनी बुरी है कि देश के विचारशील लोगो का विश्वास उसने खो दिया है और राजभक्ति के बजाय राजद्रोह की भावना पैदा कर दी है। (करतल ध्वनि) शिक्षित भारतवासियो पर राजद्रोह के इस दोषारोपण म ब्रिटिश सरकार की

जैसी निन्दा समाविष्ट है सज्जनो, उससे भयानक और अनुचित निन्दा उसकी और क्या हो सकती है ? सज्जनो, ऐसा दोषारोपण ग्रेट ब्रिटेन के किसी कट्टर दुश्मन उदाहरण के लिए रूस द्वारा किया जाता तो बात समझ में आ सकती थी। परन्तु यह बात मेरी समझ में नहीं आती कि दुश्मनों के बजाय जिन्हें ब्रिटिश सरकार के मित्र समझा जाता है ऐसे लोगों ने (जोर की हंसी और करतल ध्वनि) यह दोषारोपण किया है। रूसियों के बजाय उन अंग्रेजों ने इस तरह की बात कही है जो अपनी सरकार को नष्ट करने के बजाय शायद उसका समर्थन ही करना चाहते हैं। इसे समझना निश्चय ही मेरी समझ से बाहर की बात है। (जोरदार करतल ध्वनि) सज्जनो, जरा यह तो सोचिए कि इस अंधाधुंध दोषारोपण का इस देश के उन लाखों निवासियों पर जो अशिक्षित हैं साथ ही उत्तर में छाये झुंड के झुंड रूसियों पर, और यूरोप के प्रबुद्ध राष्ट्रों पर क्या असर पड़ेगा ? इसीलिए मैं कहता हूं कि जो लोग इस तरह हमारे ऊपर राजद्रोह का अंधाधुंध दोषारोपण करते हैं उनके आचरण को देख कर मुझे उस मूर्ख लकड़हारे की याद आये बगैर नहीं रहती जो पेड़ की जिस डाल पर खड़ा था उसी को अंधाधुंध काटे जा रहा था और इस बात का उसे कोई ख्याल नहीं था कि उस डाल के साथ ही वह स्वयं भी नष्ट हुए बिना नहीं रहेगा। (करतल ध्वनि और हंसी)

परन्तु सज्जनो आपको यह जान कर खुशी होगी कि यह दोषारोपण असंगत ही नहीं निराधार भी है। हमारे प्रति तो यह अन्यायपूर्ण है ही सरकार पर इससे जो दोषारोपण होता है वह भी अन्यायपूर्ण है। परन्तु, सज्जनो यद्यपि इस बात का मैं दावा करता हूं कि देश के पढ़े लिखे लोग पूरे [illegible] राजभक्त हैं फिर भी मुझे मानना पड़ेगा कि हमारे देशवासियों में कुछ लोग जरूर हैं जो भाषा में संयम नहीं रखते और कब क्या कहना चाहिए इसकी पूरी सावधानी नहीं बरतते। मुझे मानना होगा कि उनमें से कुछ कभी-कभी ऐसा कार्य कर बैठते हैं जिससे निन्दा करने वालों को अवसर मिलता है। यह भी मैं कहूंगा कि कुछ भारतीय समाचारपत्रों में और सार्वजनिक वक्ताओं के भाषणों में स्पष्ट ही ऐसी बात [illegible] है, जिससे यह

निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि स्वतन्त्रता और स्वच्छन्दता में जो अन्तर है उन्होंने पूरी तरह नही समझा है। यह बात उन्होंने हृदयगम नही की है कि स्वतन्त्रता में सुविधाओं के साथ-साथ दायित्व भी कम नही होते। अतएव सज्जनो, मैं विश्वास करता हू कि काग्रेस के इस अधिवेशन मे होने वाले विचार विनिमय मे ही नही बल्कि हमेशा हम इस बात का ध्यान रखेंगे और अपने देशवासियो पर भी यही असर डालने की कोशिश करेंगे कि सार्वजनिक विचार विनमय, भाषण-स्वातन्त्र्य और अखबारी आजादी के हकों का यदि हम उपयोग करना चाहते है तो हमे अपना आचरण ऐसा रखना बहुत जरूरी है कि अपने व्यवहार, अपनी विनम्रता तथा न्यायपूर्ण आलोचना से पूरी तरह सिद्ध कर कि कोई भी प्रबुद्ध सरकार अपने प्रजाजनों को जो सर्वोत्तम वरदान (सुविधाए या अधिकार) दे सकती है उसके हम पूरी तरह योग्य है। (करतल ध्वनि)

भारतीय आकांक्षाए और अग्रेज

सज्जनो, कभी कभी ऐसा कहा जाता है कि भारतवासियो की न्यायोचित आकाक्षाओ के प्रति इस देश मे रहने वाले अग्रेज पूरी सहानुभूति नही रखते। प्रथम तो यह बात पूरी तरह सच नही है, क्योंकि अनेक ऐसे अग्रेजो को जानने का मुझे सौभाग्य प्राप्त है जिनसे बढ कर सच्चे या वफादार भारत के मित्र इस भूमण्डल पर नही मिलेंगे। (करतल ध्वनि) दूसरे अपने अग्रेज सहप्रजाजनो की इस विशिष्ट स्थिति को हमे ध्यान मे रखना होगा कि इस देश मे उनके लिए कई कठिन और जटिल समस्याए है जो न केवल राजनीतिक बल्कि सामाजिक भी है और उनके कारण भारतीय नेताओ के समान ही अग्रेज नेताओ के भी सर्वोत्तम प्रयत्नो के बावजूद दोनो जातियो को एक-दूसरे से दूर ही रहना पडता है। सज्जनो, जब तक हमारे अग्रेज मित्र इस देश म अस्थायी रूप से रहने के लिए ही आयेंगे, जब तक वे यहा केवल व्यापार वाणिज्य या किसी काम धन्धे के लिए ही आते रहेंगे, जब तक वे भारत को ऐसा देश नही मानेंगे जिसके कल्याण मे उनकी स्थायी रूप से दिलचस्पी हो तब तक हमारे

काग्रेस किसी एक वग या जाति का अथवा भारत के किसी एक ही प्रात का प्रतिनिधित्व नही करती बल्कि भारत के सभी भागा के और सभी विभिन्न वर्गों एव जातिया के प्रतिनिधि इसमे हैं जबकि समाज सुधार की कोई भी बात निश्चय ही देश के किसी खास भाग या देश के किसी खास समुदाय स ही सम्बन्ध रखन वाली हागी। इसलिए, सज्जनो, हमारे हिन्दू ग्रार पारसी मित्रा की ही तरह यद्यपि हम मुसलमाना की भी अपनी सामाजिक समस्याए हैं जिन्हे हमे हल करना है फिर भी मुझे लगता है एसे प्रश्ना पर सम्बन्धित समुदाया के नेताग्रा का ही विचार करना ठीक होगा। (करतलध्वनि) इसलिए, सज्जना, मेरे ख्याल म इसके लिए यही तरीका ठीक ग्रार सम्भव है कि अपने वादविवाद को हम एसे प्रश्ना तक ही सीमित रखें जिनका सारे देश पर असर पडता है, यानी जा अखिल भारतीय महत्व के ह, और उन प्रश्ना पर विचार न करें जिनका सम्बन्ध देश के किसी एक भाग या किसी समुदाय विशेप स हो। (जोरदार करतलध्वनि)

विचारणीय विषय

सज्जनो, आपके सम्मुख विचाराथ जा विविध समस्याए प्रस्तुत हागी उनके बारे मे कम-स-कम अभी मैं कुछ नही कहना चाहता। मुझे इसमे कोई सन्देह नही है कि सभी प्रश्नो पर इस तरह और ऐसी भावना से विचार किया जायेगा जिससे हम सबकी सराहना हो। मैं ता सिफ यही कहूगा कि हमारी मागें बहुत बढी चढी न हा, हमारा आलोचना अनुचित न हो हमारे तथ्य सही हो, तो विश्वास रखिए कि हम अपने शासको के समक्ष जो भी प्रस्ताव रखेंगे उन पर वसी ही अनुकूलता से विचार किया जायेगा जसा करना किसी भी सुदढ और प्रवुद्ध सरकार की विशेपता हाती है। (करतल ध्वनि) और अब सज्जनो, मुझे भय है मैं आपका बहुत अधिक समय ले चुका हू ('नही नही' की आवाजें), फिर भी आपन मुझे जो महान सम्मान प्रदान किया ह उसके लिए, बठन से पहले एक बार फिर आपको धन्यवाद दिए बिना म नही रह सकता। ईश्वर स मेरी यही प्राथना है कि वह और नही ता अल्प मात्रा म ही आपक अनुग्रह का पात्र बनने और आपन जो विश्वास मुझ म प्रदर्शित

लिए यह आशा करना असम्भव ही रहेगा कि अंग्रेजों का बहुमत सभी महत्वपूर्ण सार्वजनिक प्रश्नों पर हमारे साथ भ्रातवत काम करेगा। इसीलिए मुझे हमेशा ऐसा लगा है कि जिन समस्याओं का हम समाधान करना है उनमें सबसे बड़ी, सबसे कठिन सबसे जटिल और साथ ही सबसे महत्वपूर्ण एक समस्या यह है कि अपने अंग्रेज मित्रों में ऐसी भावना हम कैसे पैदा करें जिससे भारत को वे किसी न किसी रूप में—चाहे अंगीकृत रूप में ही क्यों न हो—अपना ही देश मानें। क्योंकि सज्जनो, सेवानिवृत्त अंग्रेज व्यापारियों, इंजीनियरों डाक्टरों बैरिस्टरों जजों और प्रशासनिक सरकारी अधिकारियों को यदि हम इस बात के लिए प्रेरित कर सकें कि वे भारत को अपना स्थायी घर बना लें तो उनकी प्रतिभा उनकी योग्यता, उनके राजनीतिक अनुभव तथा उनकी परिपक्व निर्णय शक्ति के भारत में ही रहने से क्या हम सभी को लाभ नहीं होगा? (करतल ध्वनि) उस हालत में भारत के आर्थिक शोषण सम्बन्धी सभी बड़े प्रश्न और जातिगत ईर्ष्या तथा सरकारी नौकरियों की स्पर्धा से उत्पन्न होने वाले प्रश्न निश्चय ही तत्काल खत्म हो जायेंगे। अतः जब हम भारत से इंग्लैण्ड जाने वाली विपुल धन राशि के कारण भारत की जनता के शोषण से गरीब होने की शिकायत करते हैं तब यह बात मुझे हमेशा बड़ी अजीब मालूम देती है कि हर साल हमारे देश से सेवा निवृत्त अंग्रेजों के रूप में इतने अधिक सार्वजनिक राजनीतिक तथा बौद्धिक प्रतिभा वाले लोगों के जाते रहने से हमारे यहां साधनों की जो गरीबी पैदा होती है उस पर ज्यादा ध्यान क्यों नहीं दिया जाता। (करतलध्वनि)

कांग्रेस और समाज सुधार

सज्जनो अब कुछ शब्द हमारी कार्य विधि और वादविवाद के क्षेत्र के बारे में। यह कहा गया है और हमारी कार्रवाई पर आपत्ति के रूप में गम्भीरता से शिकायत की गई है—कि कांग्रेस समाज सुधार के प्रश्न पर विचार क्यों नहीं करती? परन्तु सज्जनो इस विषय पर मेरे मित्र डा० दादाभाई नौरोजी, जो गत वर्ष आपके सभापति थे, विस्तार से बता चुके हैं। मैं यह स्वीकार करता हूं कि यह आपत्ति मुझे आश्चर्यजनक लगती है, क्योंकि

कांग्रेस किसी एक वर्ग या जाति का अथवा भारत के किसी एक ही प्रांत का प्रतिनिधित्व नहीं करती बल्कि भारत के सभी भागों के और सभी विभिन्न वर्गों एवं जातियों के प्रतिनिधि इसमें हैं जबकि समाज सुधार की कोई भी बात निश्चय ही देश के किसी खास भाग या देश के किसी खास समुदाय से ही सम्बन्ध रखने वाली होगी। इसलिए, सज्जनो, हमारे हिन्दू और पारसी मित्रों की ही तरह यद्यपि हम मुसलमानों की भी अपनी सामाजिक समस्याएं हैं जिन्हें हम हल करना है फिर भी, मुझे लगता है ऐसे प्रश्नों पर सम्बन्धित समुदायों के नेताओं का ही विचार करना ठीक होगा। (करतलध्वनि) इसलिए, सज्जनो, मेरे ख्याल में इसके लिए यही तरीका ठीक और सम्भव है कि अपने वादविवाद को हम ऐसे प्रश्नों तक ही सीमित रखें जिनका सारे देश पर असर पड़ता है, यानी जो अखिल भारतीय महत्व के हैं और उन प्रश्नों पर विचार न करें जिनका सम्बन्ध देश के किसी एक भाग या किसी समुदाय विशेष से हो। (जोरदार करतलध्वनि)

विचारणीय विषय

सज्जनो, आपके सम्मुख विचारार्थ जो विविध समस्याएं प्रस्तुत होंगी उनके बारे में कम-से-कम अभी मैं कुछ नहीं कहना चाहता। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि सभी प्रश्नों पर इस तरह और ऐसी भावना से विचार किया जायेगा जिससे हम सबकी सराहना हो। मैं तो सिर्फ यही कहूंगा कि हमारी मांगें बहुत बढ़ी चढ़ी न हों, हमारी आलोचना अनुचित न हो, हमारे तथ्य सही हों, तो विश्वास रखिए कि हम अपने शासकों के समक्ष जो भी प्रस्ताव रखेंगे उन पर वैसी ही अनुकूलता से विचार किया जायेगा जैसा करना किसी भी सुदृढ़ और प्रबुद्ध सरकार की विशेषता होती है। (करतल ध्वनि) और अब, सज्जनो मुझे भय है, मैं आपका बहुत अधिक समय ले चुका हूं ('नहीं नहीं' की आवाजें), फिर भी आपने मुझे जो महान सम्मान प्रदान किया है उसके लिए, बैठने से पहले एक बार फिर आपको धन्यवाद दिए बिना मैं नहीं रह सकता। ईश्वर से मेरी यही प्रार्थना है कि वह और नहीं तो अल्प मात्रा में ही आपके अनुग्रह का पात्र बनने और आपने जो विश्वास मुझ में प्रदर्शित

किया है उसके उपयुक्त होने की सामर्थ्य मुझे प्रदान करे। (जोरदार करतल ध्वनि) सज्जनो, कांग्रेस के इस अधिवेशन तथा इसके बाद होने वाले सभी अधिवेशनों की सफलता की मैं कामना करता हूँ। (करतल ध्वनि)

श्रद्धांजलि

भारत के विभिन्न भागों और उसके विभिन्न समुदायों के प्रतिनिधियों को आज अपने सम्मुख एकत्र देख कर मुझे कितनी ज्यादा खुशी हो रही है, यह कहा नहीं जा सकता। भारत के विभिन्न भागों के प्रतिनिधियों का एक *जगह मिलना और सभी से सम्बन्ध रखनेवाली विभिन्न समस्याओं पर मिल* जुल कर विचार करने का जो अवसर हम पाते हैं सज्जनो, यह स्वयं महत्वपूर्ण सुविधा है। (करतल ध्वनि) सज्जनो, अब और समय मैं आपका नहीं लूंगा। स्वागताध्यक्ष सर टी० माधवराव की तरह मैं यही कहता हूँ कि आप सब का यहां मैं स्वागत करता हूँ। परन्तु साथ ही, इस बात पर गहरा खेद प्रकट किये बिना भी मैं नहीं रह सकता—और मैं जानता हूँ, इस विषय में आप सब भी मेरे साथ हैं—कि इस अवसर पर उनमें से कुछ महानुभावों की सलाह और सहायता से हम वंचित हैं जो कि पिछले अधिवेशनों में न केवल हमारे बीच उपस्थित थे बल्कि जिन्होंने उनकी सफलता के लिए निष्ठापूर्वक श्रम भी किया था परन्तु देश के दुर्भाग्य से अब इस लोक में नहीं *रहे। ऐसे जिन मित्रों को हमने खोया है उनमें बम्बई और मद्रास के डा०* आठवले हैं जिन्होंने 1885 में बम्बई में हुए कांग्रेस के सर्वप्रथम अधिवेशन को सफल बनाने के लिए बड़े उत्साहपूर्वक काम किया। श्री गिरिजाभूषण मुकर्जी को तो आप सभी जानते हैं जिन्हें उनके सभी परिचित बहुत स्नेह करते थे और जो उन परम सक्रिय कार्यकर्ताओं में से थे जिन्होंने गत वर्ष कलकत्ता में हुए कांग्रेस अधिवेशन की सफलता में प्रमुख योगदान किया था। इनके अलावा सिंध में नेशनल पार्टी के संस्थापक श्री दयाराम जेठामल और इस प्रांत के सुप्रसिद्ध महानुभाव (यद्यपि मुझे भय है कि मैं उनके नाम का शुद्ध उच्चारण नहीं कर पा रहा हूँ) मछलीपट्टम के श्री सिंगराज वेंकट सुब्बारायुद के निधन पर भी हम शोक प्रकट किये बिना नहीं रह सकते। इन

सभी महानुभावों के, जिनकी सहायता और मार्गदर्शन से हम वंचित हो गये हैं, हम हमेशा के लिए कृतज्ञ हैं। इन्होंने अपने यशस्वी जीवन में कांग्रेस को—चाहे उसका अधिवेशन बम्बई में हुआ या कलकत्ता में—सफल बनाने में अपनी शक्ति भर कोई कसर नहीं रखी थी। अब हमारा कर्तव्य है कि इनकी पुण्यस्मृति को सजोते हुए इनके उदाहरण का हम अनुसरण करें। (जोरदार और लगातार करतल-ध्वनि)

उपसंहार

सज्जनो, आप जो महानुभाव मद्रास आ पाए हैं उनके अलावा, भारत के विभिन्न भागों का प्रतिनिधित्व करनेवाले बहुसंख्यक ऐसे महानुभावों तथा विभिन्न प्रकार की संस्थाओं के पत्र और तार हमें प्राप्त हुए हैं जो इच्छा होते हुए भी किसी कारणवश कांग्रेस में सम्मिलित होने में असमर्थ हैं। हैदराबाद, मद्रास प्रांत के सभी तरह के स्थानों (जिनके नामोच्चार का मैं दुस्साहस नहीं करूंगा) कराची, कलकत्ता, देहरादून, माभर, बंगलौर, ढाका, दरभंगा नरेश, सर्वश्री लालमोहन, मनमोहन घोष, नलग तथा अन्य बहुसंख्यक स्थानों और व्यक्तियों के तार भी हमें मिले हैं जिन सबके नाम गिनाना मेरे लिए दुस्साध्य कार्य है। परन्तु सज्जनो, इनमें एक को मैं खास तौर पर आपके सामने उल्लेख करूंगा। वह है हमारे पुराने और प्रसिद्ध मित्र मि० एटकिंस, जिनके बारे में मुझे इस बात का जरा भी सन्देह नहीं कि कम-से-कम नाम से तो यहां उपस्थित हममें से हर एक उनसे परिचित है ही। (करतल ध्वनि) सज्जनो, अपनी शुभकामना के तार में उन्होंने कांग्रेस के इस अधिवेशन तथा आगे होने वाले सभी अधिवेशनों की पूर्ण सफलता की कामना की है (करतल ध्वनि)। विभिन्न समुदायों की एकता बढ़ाई जाये और जो उद्देश्य हमने अपने सामने रखे हैं उन्हें हम प्राप्त करें, ऐसी उनकी शुभकामना है। (करतल ध्वनि) मेरे ख्याल में आप सब इस बात में सहमत होंगे कि यह बहुत शुभ शकुन है। हम अपने काम में न केवल भारत के विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधियों की बल्कि अंग्रेजों की भी मदद चाहते हैं। (करतल ध्वनि) सज्जनो, जब कि हम अभी स्वागासन को कला के कुछ पाठ

ही पढने का प्रयत्न कर रहे हैं, हमारे अग्रेज मित्रो का यह कला उनके पूर्वजो के सदियो के अनुभव से विरासत म मिली है और इसमे कोई शक नही कि विभिन्न राजनीतिक मामलो म —जिनसे वस्तुत उनका भी हम से कम सम्बन्ध नही है यदि हम अपने अग्रेज मित्रो को अपने साथ सहयोग के लिए प्रेरित कर सकें तो उससे न केवल हमें बल्कि अग्रेज समाज को भी लाभ ही होगा। (तुमुल करतल ध्वनि)।

परिशिष्ट 3

काग्रेस के महामत्री ए० ओ० ह्यूम द्वारा स्थायी काग्रेस समितियो के मन्त्रियो को लिखा गया 5 जनवरी, 1888 का पत्र

(सर्वथा निजी और गोपनीय)

प्रिय महाशय

हमारे भूतपूर्व सभापति महोदय की अनेक मुसलमान महानुभावो से जो बातचीत हुई उससे उन्हे पता चला कि जो मुसलमान काग्रेस की हलचल से अपने को अलग रखे हुए है उनमे से अनेक के मन म यह आशका घर किए हुए है कि हिन्दुओ की सख्या अधिक होने से वे काग्रेस म किसी भी समय ऐसा कोई प्रस्ताव पास करा सकते है जो मुस्लिम हितो के विरुद्ध हो।

यह कहने की तो जरूरत ही नही कि मेरी ही तरह वह (भूतपूर्व सभापति) भी निश्चित रूप स मानते है कि एशिया के अन्य देशो और यूरोप के निवासियो की तो बात ही क्या हिन्दू भी कभी ऐसा कुछ नही करेंगे, क्योकि वे मुसलमानो को भी अपने ही समान इसी देश के निवासी मानते ह और उनके हित, सुख और सतोष को अपना ही हित, सुख और सतोष समझते हैं। परन्तु अज्ञानी मनुष्यो की किसी भी समुदाय म कमी नही। आपको उन भले आदमियो की याद होगी जिन्होने एक बार काग्रेस मे गोहत्या को दडनीय अपराध करार देने का प्रस्ताव पास कराना चाहा था। उस मामले म भी, मुझे भय है कुछ मुसलमान यही महसूस करते हैं कि उस समय काग्रेस के सभापति मुसलमान न होते तो उसे पेश करने से रोका नही जा सकता था।

ऐसी हालत में यह वाछनीय है कि इसके लिए कोई निश्चित नियम ही बना दिया जाए, जिससे ऐसी गलतफहमी की सभावना ही न रहे। अतएव मैंने इस सबध में एक नियम का प्रारूप बनाकर भूतपूर्व सभापति महोदय को पेश किया था, जिनसे हम निस्संदेह यह आशा करते हैं कि अलग रहने वाले मुसलमानों को आगामी वर्ष में पूरी तरह कांग्रेस का साथ देने को राजी कर सकेंगे। उन्होंने (बदरुद्दीन तैयबजी ने) उसे पसद किया और यहा के अनेक मुसलमानों को भी उसके बारे में बताया, जिन्होंने यही कहा कि ऐसा नियम बन जाए तो इस आन्दोलन से हार्दिक सहयोग करने में उन्हें कोई दिक्कत नहीं रहेगी।

यह नियम अब मैं आपके पास भेज रहा हू। मुझे आशा है कि आप मुझे आश्वासन दे सकेंगे कि अगली कांग्रेस में आपकी समिति ऐसा नियम बनाने का समर्थन करेगी। जहा तक उसकी भाषा का सबध है, अन्य नियमों का विधिवत स्वीकार करते समय उसमें भी हेर फेर कर उसे उपयुक्त रूप दिया जा सकता है। यदि सभी स्थायी कांग्रेस समितियों की ओर से हमारे भूतपूर्व सभापति महोदय को मैं ऐसा आश्वासन दे सकू तो उससे उनकी कठिनाइया बहुत हद तक दूर हो जाएगी। निश्चय ही आप इस बात से सहमत होंगे कि यह नियम उचित और आवश्यक ही नहीं है बल्कि मुसलमानों को सचमुच हम अपने भाई मानते हैं तो उनके चाहने पर इसे स्वीकार करने में हमें कोई सकोच नहीं होना चाहिए।

हमारे भूतपूर्व सभापति महोदय अपने सभी सहधर्मियों को अधिकृत रूप से और अखिल हिन्दुओं की भ्रातभावना का जो कि मैं जानता हूं कि उनमें है आश्वासन दे सकें, यह बहुत जरूरी है। अत मेरा अनुरोध है कि आप यथासभव जल्दी से जल्दी उत्तर भेजने की कृपा करें।

आपका
ए० ओ० ह्यूम
महामंत्री

परिशिष्ट 4 अ

'पायनीयर' (इलाहाबाद) मे प्रकाशित बदरुद्दीन का पत्र

महाशय,

कांग्रेस के पिछले अधिवेशन के बारे म, जिसके सभापतित्व का सम्मान मुझे प्राप्त हुआ अपने अनेक सहधर्मियो से बात करने पर मुझे पता लगा कि उनम ऐसे लोग कम नही जो सिद्धातत कांग्रेस का समथन करते ह। फिर भी, मुझे लगा कि उन्ह इस बात की कुछ चिन्ता अवश्य है कि भविष्य म ऐसे प्रस्ताव पेश किए जा सकते है जो कुल मिलाकर मुसलमानो को पसद न हो और हिंदुओ की सख्या अधिक होने के कारण उनके स्वीकृत हो जाने की सभावना है। उस हालत म कांग्रेस के सदस्य होने के कारण, न चाहते हुए भी वह उन प्रस्तावो के लिए जिम्मेदार माने जाएंगे जिन्हे वे पसद नही कर सकते।

बबई के सावजनिक जीवन म मैंने बरसो हिंदुओ के साथ मिलजुल कर काम किया है और कांग्रेस के पिछले अधिवेशन म मन यह भी देखा कि सभी धर्मो और समुदायो के प्रतिनिधियो म मुसलमानो के लिए भाईचारे की भावना ह। इससे मरा निश्चित विश्वास है कि हमारे मित्रो की आशका सवथा निराधार है। परतु उन्ह तथा अन्य ऐसे लोगो को जिनके मन म ऐसी आशका है इस बात का विश्वास कराने के लिए कांग्रेस के महामत्री महोदय से मैंने सभी स्थायी कांग्रेस समितियो स इस बात का पता लगाने की प्राथना की कि कांग्रेस से ऐसा नियम स्वीकृत कराने को वे सहमत है या नही कि जिस विषय या प्रस्ताव पर मुसलमान प्रतिनिधि सवसम्मति या लगभग सव सम्मति से आपत्ति करें उस पर कांग्रेस मे विचार न किया जाए।

परिशिष्ट 5

अमीर अली द्वारा 5 जनवरी, 1888 को अपनी संस्था की ओर से बदरुद्दीन तयबजी को भेजा गया पत्र

प्रेषक

अमीरअली
आनरेरी सेक्रेटरी,
सेंट्रल नेशनल माहम्मेडन एसासियशन।

सेवा म

माननीय बदरुद्दीन तयबजी
बम्बई।

महोदय,

अपने पत्र सख्या 456 दिनाक 28 नवबर, 1887 के सिलसिले म मैं सादर आपको सूचित करता हू कि मुसलमानो के प्रस्तावित सम्मेलन के सबध मे कुछ क्षेत्रो म जो भ्रात धारणाए फली हुई हैं उनके कारण सेंट्रल एसासियशन की कमेटी ने आप तथा मुस्लिम समुदाय के अन्य शुभ चिंतको की सेवा मे निम्न तथ्य प्रस्तुत करने का निश्चय किया है।

पिछली अर्द्ध शताब्दी मे भारत का मुस्लिम समाज जिस तरह पूणत विघटित हो गया है उससे आप अनभिज्ञ नही हो सकते, न इसके दुष्परिणामो

और मुसलमानों की आम गरीबी से ही आप अनभिज्ञ होंगे। सार्वजनिक विषयों पर अपनाई जाने वाली नीति से सम्बन्धित सामान्य प्रश्नों पर मतैक्य और पारस्परिक सहयोग के अभाव में तथा स्वावलंबन के विचारमात्र की सर्वथा उपेक्षा से स्थिति और भी बिगड़ रही है। प्रस्तावित सम्मेलन में राजनीति की बड़ी बड़ी बातों पर विचार करने का कोई इरादा नहीं है। जो कार्यक्रम हमने अपने सामने रखा है वह बहुत बढ़ा चढ़ा नहीं है और हमारी प्रगति के अनुरूप ही है। आशा है कि पूरे भारत के मुसलमानों के लिए इस सम्मेलन के सामाजिक और नैतिक परिणाम बहुत लाभदायक होंगे। स्मरण रहे कि हम लोगों की वास्तविक उन्नति भविष्य पर ही निर्भर है। नींव पड़े बिना कुछ नहीं बन सकता और हमें आशा है कि इस सम्मेलन से हमारी आकांक्षाओं को मूर्त रूप मिलेगा और हमारे भावी कल्याण की आधारशिला रखी जाएगी।

सम्मेलन का आयोजन हम अपने हिन्दू देशवासियों के प्रति शत्रुता की भावना से प्रेरित होकर नहीं कर रहे हैं बल्कि सरकार तथा साम्राज्य के सभी प्रजाजनों की सहानुभूति के साथ काम करने के हम इच्छुक हैं। हमारा मुख्य उद्देश्य है मुस्लिम समाज के विघटित तत्वों में एकता लाना, मुसलमानों के विभिन्न समुदायों में, जिनके उद्देश्य और आदर्श अलग अलग ही नहीं बल्कि परस्पर विरोधी भी हैं तालमेल बैठाना, शिक्षित मुस्लिम वर्ग में मतभेद और ईर्ष्या-द्वेष कम कर मेल पैदा करना मुसलमानों की उन्नति के लिए सरकार की कृपा पर ही निर्भर रहने के बजाय स्वावलंबन के उपाय ढूंढना, हमारे समुदाय में अपनी प्रगति की जो प्रक्रिया दृष्टिगोचर हो रही है उसे ठोस प्रोत्साहन देना, ब्रिटिश सरकार के अन्तर्गत अपने उचित और वैध हितों का संरक्षण करना, भारत के शिक्षित मुसलमानों के विचारों तथा उनकी आकांक्षाओं का प्रतिपादन और अपने हिन्दू देशवासियों तथा मुसलमानों के बीच पुनर्मिलन का साधन बनना।

हमें लगता है कि इस विनम्र कार्यक्रम पर सही दिमाग वाले कोई भी मुसलमान या हिन्दू आपत्ति नहीं कर सकते। यह भी हमारा ख्याल है कि

इस दिशा में हुए थोड़े-से प्रयत्न का भी परिणाम नगण्य नहीं होगा, बल्कि मुसरहत मुसलमानों के आपस में मिलने मात्र का मुस्लिम भारत पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ेगा और उससे आगे की प्रगति की पृष्ठभूमि तैयार होगी।

आपका आज्ञाकारी,
अमीरअली

पुनश्च —सूचनार्थ निवेदन है कि कतिपय अपरिहार्य कारणों से सम्मेलन फरवरी 1889 तक स्थगित कर दिया गया है।

परिशिष्ट 6

कांग्रेस सभापति की हेसियत से अमीरअली को भेजा गया 13 जनवरी, 1888 का बदरुद्दीन का पत्र

महादय

पत्र सख्या 456 दिनाक 28 नवबर क सिलसिले मे, 5 ता० का आपका कृपा पत्र मिला।

उत्तर म निवेदन है कि प्रस्तावित मुस्लिम सम्मेलन के जो लक्ष्य और उद्देश्य आपने बनाए उन सबसे नही तो उनम मे अधिकाश मे मेरी पूण सहानुभूति है। निस्सदह मुसलमान जिम गरीबी और अज्ञान म डूब हुए हैं उससे उन्ह निकालकर ऊचा उठान के लिए अपन भरसक प्रयत्न करना भारत के विभिन्न भागो म रहन वाले सभी सुशिक्षित मुसलमाना का कत्तव्य है। इसलिए हमारी जाति के नेताओ की ओर से उनके नतिक, सामाजिक शैक्षणिक और राजनीतिक स्तर को ऊचा उठाने क लिए कोई सयुक्त काय हा ता उसका हमारे सब मित्रा एव शुभाचिन्तका का स्वागत करना ही चाहिए और मुझे यह कहन की जरूरत नही कि इस उद्देश्य से आयोजित सम्मेलन मे शामिल हो कर उसकी कारवाई म भाग लेने स अधिक प्रसन्नता की बात मेरे लिए और काई नही हा सकती।

जहा तक मेरे अपने विचारा की बात ह मैं समझता हू, समूच भारत पर असर डालने वाले सामान्य राजनीतिक प्रश्ना के लिए सभी सुशिक्षित और सावजनिक भावना वाल नागरिका का वग, वण या धम-सम्प्रदाय का भेद त्याग कर सयुक्त रूप स काम करना चाहिए।

परतु जिन याता का हमार समुदाय विशप पर पथक या विशेप रूप से असर पडता हो उनके वारे म मेर मतानुसार व्यक्तिगत और संयुक्त रूप मे हम लागो की दशा सुधारने के लिए जो कुछ किया जा सकता हो वह करना सभी सुसस्कृत मुसलमाना का कतव्य है ।

इसी सिद्धात के अनुसार मैंन काग्रस के मद्रास मे हुए अधिवेशन मे भाग लिया और इसी सिद्धात के अनसार प्रस्तावित मुस्लिम सम्मेलन म भाग लेन मे मझे और भी खुशी होगी यदि अनपेक्षित परिस्थितियावश मर ऐसा करन मे काई रुकावट पैदा न हा । वात यह है कि ववई हाई काट म सवधित सभी व्यक्तिया के लिए फरवरी का महीना वहुत असुविधाजनक है अत सम्मेलन की तिथिया म ऐसा परिवतन हा जाए जिसस मरी उपस्थिति अधिक सभव हो सके तो निजी तौर पर मुझ निश्चय हो प्रसन्नता होगी । फिर यह भी ध्यान रखने की बात है कि कलकत्ता बहुत सुविधाजनक स्थान नही है । मेर ख्याल मे इलाहावाद ऐसी जगह है जो अधिकाश लोगा के लिए अन्य किसी स्थान स कही अधिक सुविधाजनक रहगी ।

आपन मुझे जा पत्र भेजा है वह अजुमन ए इस्लाम ववई, क मत्री की हैसियत से मेरे पास भजने के वजाय निजी हैसियत से भेजा है । अतएव मैंन जो जवाव दिया वह मेरे निजी विचारा का सूचक ही माना जाना चाहिए, यद्यपि ऐसा विश्वास करने के पूरे कारण है कि जा विचार मैंने व्यक्त किए उनसे इस प्रात के सभी मुसलमान सहमत है, वल्कि मैं कहूगा कि मद्रास प्रात के मुसलमाना के भी यही विचार है ।

भवदीय
वदरुद्दीन तयबजी

परिशिष्ट 7

अमीरअली को बदरुद्दीन का निजी पत्र (13 जनवरी, 1888)

प्रिय सय्यद अमीरअली

सेंट्रल नेशनल मोहम्मेडन एसोसियेशन के मंत्री की हैसियत से भेजे गए आपके पत्र के जवाब में अलग से मैंने आपको पत्र भेजा है और मैं विश्वास करता हूं कि निजी तौर पर भी जो यह पत्र मैं आपको लिख रहा हूं उसके लिए आप मुझे क्षमा करेंगे।

निस्सदेह आपको पता होगा कि मद्रास में हुए कांग्रेस के पिछले अधिवेशन में मैंने प्रमुख भाग लिया था और आप सय्यद अहमदखां तथा नवाब अब्दुललतीफ जैसे श्रद्धेय मित्रों के कांग्रेस से अलग रहने पर दुःख और खेद व्यक्त किया था। इस अनुपस्थिति के औचित्य का कोई आधार मेरी समझ में नहीं आया परंतु यह बात मुझे बड़ी दयनीय मालूम पड़ती है कि समूचे भारत पर व्यापक रूप से असर डालने वाले मामलों में मुस्लिम समुदाय का कोई भाग हिंदुओं से अलग-थलग रहकर सारे भारत की राष्ट्रीय प्रगति में रुकावट डाले। आपकी इस आपत्ति को मैं समझता हूं कि हिंदू हमारी अपेक्षा अधिक उन्नत होने के कारण सरकार द्वारा शिक्षित भारतीयों को दी गई किसी भी रिआयत का अधिक लाभ उठायेंगे परन्तु दूसरों को उन अधिकारों का उपभोग करने से रोकने के बजाय, जिनके कि वे योग्य हैं, निश्चय ही हमारा यह कर्तव्य है कि सभी संभव उपायों से अपनी उन्नति कर अपने को योग्य बनाएं। फिर भी ऐसी कोई योजना सामने आए जिससे मुसलमान हिंदुओं की मनमानी के शिकार बनते हों या जिससे हिंदुओं को ऐसे प्रशासनिक अधिकार मिलते हों जो मुसलमानों के लिए हानिकर हों तो उसका मैं अपनी पूरी शक्ति से विरोध करूंगा। परंतु कांग्रेस ऐसा कुछ नहीं करना चाहती। वह तो सभी समुदायों के लिए समानरूप से लाभदायक होने का

दावा करती है और ऐसे ही उसके उद्देश्य हैं। इसलिए ऐसी किसी बात पर उसमे विचार नही हो सकता जिस पर सामूहिक रूप से मुसलमानो को आपत्ति हो। कांग्रेस के पिछले अधिवेशन मे इस सिद्धान्त पर मैंने सख्ती से अमल किया और एसी कोई बात बिलकुल नही होने दी गई जिस पर सामूहिक रूप से हमे कोई आपत्ति हो सकती हो। निस्सदेह इस सबंध मे एक नियम भी इस आशय का मैं बनवा चुका हू कि जिस प्रस्ताव पर मुसलमानो को सामान्य रूप मे आपत्ति होगी उस पर कांग्रेस मे विचार नही हो सकेगा। यह नियम विधिवत कांग्रेस के विधान मे शामिल किया जाएगा। मेरे खयाल मे आप की सभावित आपत्ति को दूर करने के लिए ही यह नियम बनाया गया है। कृपया सूचित करें कि उसके बारे मे आपके क्या विचार हैं और यह भी लिखें कि आपको कांग्रेस मात्र पर आपत्ति है फिर उसका रूप कुछ भी क्यो न हो या केवल एसी कांग्रेस से ही आपका विरोध है जिससे हमारी जाति को हानि पहुचने की सभावना हो ? दूसरी बात हो तो मैं समझता हू हम ऐसे नियम और प्रतिबध बना सकते है जिससे आपकी कठिनाई दूर हो जाएगी। मुझे तो इस बात मे जरा भी सदेह नही कि उपयुक्त सिद्धान्तो और हमारे समुदाय के अधिकारो की रक्षा के लिए आवश्यक प्रतिबधो एव उचित सरक्षणो के साथ कांग्रेस हमारे देश का बहुत हित कर सकती है इसलिए हम सबको मिलकर एसे उपाय करने का प्रयत्न करना चाहिए जिससे अपने विशेष हितो पर सावधानी से ध्यान रखते हुए सभी देशवासी मिलजुल कर काम कर सकें।

कृपया इन सुझावो पर सावधानी से विचार कर इनके बारे मे अपने विचारो से मुझे सूचित करें। हमारा यही दुर्भाग्य क्या कम है कि हम अपने ही देशवासी हिंदुओ से अलग-थलग पड गए हैं। कम-से-कम आपस मे तो हम विभाजित न हो।

भवदीय

बदरुद्दीन तैयबजी

(इसी तरह के पत्र सर सयदअहमद खा और नवाब अब्दुललतीफ को भी लिखे गए।)

परिशिष्ट 8

बदरुद्दीनतैयब जी को सर सैयद अहमद खा का पत्र (24 जनवरी, 1888)

प्रिय बन्रुद्दीन तयबजी

कृपापत्र के लिए धयवाद। महारानी न मुझे जो खिताब देकर सम्मानित किया है उस पर आपकी कृपापूण बधाइ के लिए आभारी हू । आशा है मेरा विनम्र धयवाद आप स्वीकार करेंगे।

काग्रेस के मद्रास अधिवेशन म आपन प्रमुख भाग लिया इससे हमारे दशवासी हिदुआ का निस्सदह प्रसन्नता हुई है परन्तु जहा तक हमारा सवाल है, हम उससे बहुत दुख हुआ है।

काग्रेस के सम्बध मे हमारे विचार और उससे अलग रहने के कारण बताना तब तो ठीक हाता जबकि आपन काग्रेस म प्रमुख भाग लेने से पहले हम एसा करन का मौका दिया होता। परन्तु अब, जब सब कुछ हो चुका है उसका काई लाभ मैं नही देखता।

हम 'भारत की राष्ट्रीय प्रगति म रुकावट नही डालना चाहत, न दूसरा का उन अधिकारो के उपयोग से रोकना चाहत है जिनके कि वे योग्य है।' हम ऐसा करन की कोशिश भी करें ता उसम सफलता की आशा नही कर सकत। परन्तु उन लोगा के साथ दौडना भी हमारे लिए अनिवाय नही है जिनके मुकाबले सफलता की हम कोई आशा नही कर सकते।

आपका यह कहना कि 'सभी सम्भव उपाया से अपनी उन्नति कर अपन का योग्य बनाना हमारा कतव्य है,' बिलकुल ठीक है, परन्तु आपको हमारे प्राचीन तत्ववत्ता के इस कथन को नही भूलना चाहिए कि 'ईराक से जब तक सपदश की दवा आएगी तब तक तो साप का काटा हुआ व्यक्ति चल बसेगा।'

नेशनल कांग्रेस शब्द का क्या अर्थ है यह मेरी समझ मे नही आया। क्या इसका यह अर्थ है कि भारत मे रहनेवाले विविध जातियो और धर्मों के लोग एक ही राष्ट्र के अंग है, या राष्ट्र बन सकते हैं, और सब के उद्देश्य तथा आकाक्षाएँ एक समान हो सकती हैं? मेरे खयाल मे तो यह बिल्कुल असम्भव है और जब ऐसा सम्भव ही नही तो नेशनल कांग्रेस जैसी कोई बात नही हो सकती, न वह सभी लोगो के लिए समान रूप से हितकर हो सकती है।

नेशनल कांग्रेस का गलत नाम धारण करने वाली सस्था के कार्यों का आप भारत के लिए हितकर मानते है, परन्तु मैं खेद के साथ कहूगा कि मैं उसे न केवल मुसलमानो के लिए बल्कि कुल मिलाकर भारत के लिए भी हानिकारक मानता हू।

ऐसी किसी भी कांग्रेस के मैं विरुद्ध हू—चाहे उसका रूप और सगठन कैसा भी क्यो न हो—जो भारत को एक राष्ट्र मानती हो क्योकि उसका आधारभूत यह सिद्धात ही गलत है कि वह सारे भारत को एक राष्ट्र मानती है। सम्भवत आप मेरे विचारो को पसद नही करेंगे अत यह सब लिखने का साहस करने के लिए आप मुझे क्षमा करेंगे।

भवदीय,
सयद अहमद

परिशिष्ट 9

सर सयद अहमद खां को बदरुद्दीन तैयब जी का पत्र (17फरवरी 1888)

हाई कोर्ट, बम्बई
18 फरवरी, 1888

प्रिय सर सैयद अहमद खा,

भारत के विभिन्न भागो म रहनेवाले अन्य प्रमुख मुसलमान महानुभावो को भी मैंने पत्र भेजे थे। उनके उत्तर की प्रतीक्षा म ही आपको जवाब देने मे विलम्ब हुआ, नहीं तो आपके 24 जनवरी के पत्र का इससे पहले ही मैं जवाब देता।

यह मैं जानता हू कि कुछ महत्वपूर्ण विषयो पर हमारे बीच ठोस मतभेद है, फिर भी मैंने आपको जो पत्र भेजा उसका उद्देश्य यही पता लगाना था कि इस महान देश के मुस्लिम समुदाय के सयुक्त हित के लिए क्या हम परस्पर मिलकर काम नही कर सकते ? और, यदि ऐसा सम्भव है तो उसके लिए आपके खयाल म हम क्या करना चाहिए ?

बडे-बडे मसलो पर जब अलग अलग दिमाग काम करते हैं तो मतभेद की सम्भावना रहती ही है, परन्तु मैं यह समझे बिना भी नहीं रह सकता कि सयुक्त कायक्रम पर पहुचने के लिए एक दूसरे के प्रति सदभाव रखना, उनकी नीयत पर शक न कर एक दूसरे के उद्देश्य एव दृष्टिकोण को समझने की कोशिश करना और दोनो ही पक्षो द्वारा एक-दूसरे को रिआयतें देना

आवश्यक है। इसी दृष्टि से और भारत मे इस समय जो क्षोभ है उसे दूर करने के उद्देश्य से मैं पुन आपको लिख रहा हू। मुझे ऐसा लगता है कि काग्रेस के प्रति मेरे और आपके दृष्टिकोण मे मौलिक अन्तर है। मेरे विचार मे काग्रेस ऐसे शिक्षित वर्ग के सम्मेलन के सिवा और कुछ नही जिसमे भारत के सभी भागो से सभी जातियो और धर्म-सम्प्रदायो के शिक्षित व्यक्ति परस्पर मिल कर केवल ऐसे प्रश्नो पर विचार करते है जिनका कुल मिलाकर समस्त भारत से सम्बध हो। तब प्रश्न यह उठता है, इस तरह के लोगो का सम्मेलन वाछनीय है या नही ? निस्सदेह ऐसे प्रश्न भी है जो किसी एक जाति, समुदाय या प्रात विशेष के ही हित मे हो। ऐसे प्रश्नो पर काग्रेस म निश्चय ही विचार नही होना चाहिए। मुझे लगता है कि इस तरह की काग्रेस पर कोई भी आपत्ति नही कर सकता, जब तक कि उसका ऐसा मत न हो कि ऐसे कोई प्रश्न हो ही नही सकते जिनका सभी भारतवासियो से सम्बध हो। काग्रेस से आपका विरोध इसलिए है कि 'वह भारत को एक राष्ट्र मानती है'। परन्तु मैं ऐसे किसी व्यक्ति को नहीं जानता जो सारे भारत को एक राष्ट्र मानता हो। आप यदि काग्रेस मे दिया गया मेरा उदघाटन भाषण पढें तो आप उसमे इस बात का स्पष्ट उल्लेख पाएगे कि भारत म विभिन्न जातिया या राष्ट्र है जिनकी अपनी अपनी समस्याए है परन्तु कुछ प्रश्न ऐसे भी हैं जो सभी कौमो से सम्बध रखते है और ऐसे प्रश्नो पर विचार के लिए ही काग्रेस कायम की गई है।

मैंने आपको पत्र लिखा तब तक लखनऊ का आपका भाषण मैंने नहा पढा था। उसके बाद उसको पढने का मुझे अवसर मिला। उससे स्पष्ट है कि भाषण देते समय आपका यही खयाल था कि काग्रेस केवल बगाली बाबुओ की जमात है। आपका ऐसा खयाल कैसे बना, यह मेरी कल्पना के बाहर की बात है, क्योकि बम्बई और मद्रास प्रातो के शिक्षित मुसलमानो का काग्रेस के प्रति जो रुख रहा उससे आप अनभिज्ञ हो तो भी ऐसा आप निश्चय ही नही सोच सकते थे कि इन प्रातो के हिदुओ ने भी उसमे सक्रिय भाग नही लिया। जो भी हो, सत्य यह है कि जहा तक हिन्दुओ का सम्बध है, वे सर्वसम्मति से

सामूहिक रूप म कांग्रेस का समर्थन करते हैं फिर वे किसी भी प्रांत के क्यों न हों, और मुसलमानों का जहां तक सम्बन्ध है बम्बई और मद्रास प्रांतों के मुसलमान दृढ़ता से उसका समर्थन करते हैं जबकि बंगाल और पश्चिमोत्तर प्रांत (अब उत्तर प्रदेश) म—आपके भाषण के अनुसार—काफी विरोध है। ऐसी परिस्थिति म क्या सभी विचारशील मुसलमानों का यह कर्त्तव्य नहीं है कि मतभेद के कारणों को दूर करने की चेष्टा करें ?

कांग्रेस की प्रगति म हम उसी तरह कोई रुकावट नहीं डाल सकते जिस तरह कि शिक्षा की प्रगति को रोक नहीं सकते। परन्तु दृढ़ और निश्चित कार्य द्वारा कांग्रेस को अनुकूल मोड़ देना हमारे बस की बात है। मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि मुसलमान संयुक्त रूप से काम करके कांग्रेस को ऐसे प्रश्नों तक ही सीमित कर सकते हैं जिन पर विचार करना वे वांछनीय और निरापद समझें। उदाहरण के लिए लेजिस्लेटिव कौंसिलों का ही प्रश्न लीजिए। मुसलमान सामूहिक रूप से यह न चाहते हों कि उनके सदस्यों का 'चुनाव' हो तो तत्सम्बन्धी प्रस्ताव को अपने हितों के अनुसार संशोधित करा सकते हैं। अतः मेरी नीति तो यही होगी कि कांग्रेस से बाहर रहने के बजाय उसमें रहते हुए ही मुस्लिम हितों के लिए काम किया जाए। सभी मुसलमानों से मैं यही कहूंगा कि 'जिन मामलों में आप सहमत हों उन सब में अपने हिन्दू देशवासियों के साथ मिलकर काम करें परन्तु यदि वे कोई ऐसा प्रस्ताव पेश करें जो आपको हानिकारक मालूम दे तो उसका अपने बलभर जोरदार विरोध करें। इस तरह अपने हितों का संरक्षण करते हुए हमें भारत की सामान्य प्रगति में योगदान करना चाहिए।

आप समझें कि इस तरह का कोई कार्यक्रम हो सकता है तो कृपया मुझे सूचित करेंगे, क्योंकि उस भारी क्षोभ पर मैं निश्चिन्त नहीं रह सकता जो न केवल हिन्दुओं में व्याप्त है बल्कि शिक्षित मुसलमानों के एक बड़े भाग को भी जिसने प्रभावित कर रखा है।

बदरुद्दीन तैयबजी

परिशिष्ट 10

सेण्ट्रल मोहम्मेडन एसोसिएशन की एलोर शाखा के मंत्री के पत्र (9 सितम्बर, 1888) के उत्तर में भेजा गया बदरुद्दीन का पत्र (22 सितम्बर, 1888)

प्रिय महाशय

9 ता० का आपका पत्र पाकर खुशी हुई। यह जान कर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई है कि एलोर के मुसलमान कांग्रेस में दिलचस्पी रखते हैं और उसके बारे में कुछ जानना चाहते हैं। आपने पूछा है कि कांग्रेस में शामिल होने से मुसलमानों को क्या लाभ होगा।

सबसे पहले तो आपको यह बात हृदयगम करना चाहिए कि कांग्रेस भारत के विभिन्न समुदायों के अत्यन्त प्रतिभाशाली नेताओं की संस्था है। वे भारत के विभिन्न भागों से समूचे देश से सबंधित प्रश्नों पर विचार करने के लिए जमा होते हैं और भारतीय प्रशासन में आवश्यक सुधारों के लिए जरूरत पड़ने पर सरकार से सादर उपयुक्त निवदन करते हैं।

कांग्रेस हिन्दुओं का आन्दोलन नहीं है बल्कि भारत के विभिन्न समुदायों के अत्यन्त प्रतिभाशाली प्रतिनिधियों के संयुक्त कार्यकलाप का परिणाम है। साधारण राजनीतिक संस्था या अंजुमन से इसके सिवा इसमें कोई अंतर नहीं है कि इसका क्षेत्र व्यापक है और किसी खास प्रांत के बजाय समग्र भारतीय समुदाय की इच्छा आकांक्षाओं का यह प्रतिनिधित्व करना चाहती है। धर्म का इससे कोई संबंध नहीं है। सुशासन प्रशासन में सुधार, वित्तीय मामला

की लाभप्रद व्यवस्था, करो मे कमी, शिक्षाप्रसार, न्याय-प्रणाली की अपेक्षाकृत अच्छी व्यवस्था तथा सरकारी नौकरियो मे इस देश के निवासियो की अधिक भर्ती इत्यादि ऐसे प्रश्न है जिनका सबध किसी खास जाति के बजाय हम सभी से है, फिर हममे से कोई चाहे हिंदू हो या मुसलमान अथवा ईसाई या पारसी यही काग्रेस के उद्देश्य है और आप देख सकते हैं कि इसके विरोधियो का यह कहना कितना गलत और भ्रामक है कि यह बाबुओ या हिंदुओ की ही सस्था है और इसका उद्देश्य भारत सरकार का भयभीत करके प्रतिनिधियो द्वारा शासन की प्रणाली लागू करना है। यह बचकानी और अनगल बात है और यह देख कर मुझे हैरत होती है कि जो लोग शिक्षित होने का दावा करते है वे ऐसी भाषा से भ्रमित कैसे हो जाते है।

आपने मुझसे पूछा है कि काग्रेस म शामिल होने से मुसलमानो को लाभ क्या होगा? मेरा जवाब यह है कि इससे उन्हे भी वही लाभ होगे जो हिंदुओ पारसियो या ईसाइयो को हो सकते है। अत जो लोग भारत को अपनी मातभूमि मानते हैं उन सभी का यह कत्तव्य है कि जाति वण या धम सम्प्रदाय के भेदभाव को भुलाकर सभी के सयुक्त लाभ के लिए वे इसमे शामिल हो। काग्रेस के मच से सयुक्त रूप मे राजभक्तिपूवक तथा सम्मान के साथ हम अपने विचार सरकार के सामने रखगे तभी सरकार को पता चलेगा कि लोग क्या चाहते हैं और अगर वह ठीक समझेगी तो हमारी प्राथना को स्वीकार भी कर सकती है। यह तो आप जानते ही है कि हमारे शासक अक्सर गलतिया कर डालते हैं, जानबूझ कर तो नहीं, परतु अनजाने और लोग क्या चाहते है इसकी जानकारी के अभाव मे ही शायद वे ऐसा करते है। काग्रेस मे यदि सचमुच अच्छे राजभक्त और प्रतिभाशाली व्यक्ति हो, जैसी कि इसके सस्थापन कर्ताओ की इच्छा है तो वह सरकार को यह जानकारी देगी।

काग्रेस के विरोधियो का कहना है कि सरकार इसके खिलाफ है और जो इसमे शामिल होते हैं उन सबको बुरी नजर से देखती है। परतु यह बात झूठी ही नहीं शरारत से भरी हुई भी है। मैं जोर दकर कह सकता हू कि इसमे

रत्तीभर भी सचाई नहीं है। गत वर्ष जब मैं मद्रास में था और कांग्रेस के सभापतित्व का सम्मान मुझे प्राप्त हुआ था, मद्रास के गवर्नर लार्ड कार्नेमेरा तथा मद्रास-सरकार के प्रमुख अधिकारियों से मैं मिला था। बंबई लौटने के बाद न केवल गवर्नर लार्ड रे से बल्कि सरकारी-गैरसरकारी प्रमुख अंग्रेजों से भी बराबर मेरा संपर्क बना हुआ है। स्वयं लार्ड रे के द्वारा लिखित पत्र के आधार पर मैं कह सकता हूं कि गवर्नर महोदय कांग्रेस के विरुद्ध तो हैं नहीं, उन्होंने यह भी घोषित किया है कि सरकार की सार्वजनिक आलोचना का वह स्वागत करेंगे और जो लोग कांग्रेस में शामिल होना चाहें उन्हें यदि किसी ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कोई धमकी दी तो उसे बर्दाश्त नहीं किया जाएगा। कांग्रेस के शत्रुओं द्वारा फैलाई गई वाहियात गप्पों और अफवाहों को हास्यास्पद बताते हुए उन्होंने कहा है कि वे इतनी घृणास्पद हैं कि उनका खंडन करने की कोई आवश्यकता नहीं।

एक झूठी अफवाह यह फैल गई है कि बंबई की अंजुमन-ए-इस्लाम कांग्रेस में शामिल होने से सरकार उससे नाराज है। जिस पत्र का ऊपर मैंने उल्लेख किया उसमें इस बात का खंडन करते हुए लार्ड रे ने बताया है कि इसके बजाय अंजुमन को 38,000 रु० के अनुदान के साथ-साथ एक लाख रुपये मूल्य की जमीन देकर सरकार ने उसके द्वारा होने वाले सुंदर कार्य की सराहना ही की है। अब मुझे आशा है कि ऊपर जो कुछ मैंने कहा है उससे आपको विश्वास हो जाएगा कि यह कहना बिल्कुल गलत है कि सरकार कांग्रेस के खिलाफ है।

यह बात निस्सन्देह सत्य है कि यहां वहां कुछ छोटे सरकारी अधिकारी जरूर ऐसे मिल जाते हैं जो कांग्रेस और उसके काम को पसंद नहीं करते। परन्तु इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं, क्योंकि भारत में निश्चय ही अनेक ऐसे अंग्रेज मौजूद हैं जो इस देश के प्रशासन में राजनीतिक सुधार पसन्द नहीं करते। उनके खयाल में सार्वजनिक सभा करना या राजनीति में किसी तरह का कोई योगदान करना हमारा काम नहीं है। उनके मतानुसार भारतीयों को सिवा इसके कुछ नहीं करना चाहिए कि उनके आगे हाथ जोड़ते रहें और

कृपा करके जो भी छोटा मोटा अनुग्रह कर दें उसी पर खुश रहें मुझे इसमें कोई संदेह नहीं कि इसी वर्ग के अंग्रेज ऐसे है जो या तो इस देश के निवासियों के प्रति सीधी शत्रुता का भाव रखते है या यह समझते हैं कि हमारे कोई राजनीतिक अधिकार है ही नहीं। यही लोग कांग्रेस के प्रति शत्रुता रखते है और लोगो को हर तरह उसमे शामिल होने से रोकते है।

ऐसे बहादुर मुसलमान भी इस देश म कम नहीं जिनकी बहादुरी इसी म है कि बंगालियों का तो उनकी कायरता के लिए उपहास करते रहे परंतु खुद किसी भी 'साहब' की घुडकी की दहशत से भी काप उठें और जिनकी राजनीतिक आचार-सहिता किसी भी अंग्रेज की हर बात पर 'जी हुजूर' से आगे जाने की इजाजत नहीं देती। बहुत से आदमी जो कांग्रेस म शामिल नहीं हुए उसका यही कारण है। उन्हें भय है कि वे अंग्रेजो के अनुग्रह से वंचित हो जाएगे परंतु उनम खुले आम यह सही कारण बताने की हिम्मत नहीं इसलिए वे यह दिखाने का ढोंग करते है कि कांग्रेस के उनके विरोध का कारण यह है कि उनके खयाल म "वह अच्छी नहीं है।"

आपने मुझे यह स्पष्ट करने के लिए कहा है कि कुछ मुसलमानो ने कांग्रेस का विरोध क्यो किया है ? मैं कहता हू कि कुछ तो इसके विरुद्ध है कुछ धर्मांधता और हठधर्मी के कारण, कुछ हिंदुओ के प्रति धार्मिक घृणा के शिकार है, कुछ अंग्रेज अधिकारियो की कृपादृष्टि के इच्छुक है कुछ को भय है कि ऐसा करने से कही उनकी राजभक्ति पर आच न आजाए, कुछ इसलिए डरते है कि सरकारी नौकरी मे पदोन्नति या सरकारी खिताब और सम्मान की सभावना खत्म न हो जाए, कुछ को इस बात का क्षोभ है कि कांग्रेस की स्थापना के समय उसके बारे मे उनसे परामर्श क्यो नहीं लिया गया कुछ को उन नेताओ से ईर्ष्या है जो कांग्रेस म प्रमुख योगदान कर रहे है और अत मे कुछ परंतु बहुत ही कम ऐसे भी है जो सचमुच यह मानते है कि संख्या मे और बौद्धिक दृष्टि से हिंदुओ से कमजोर होने के कारण मुसलमान या तो कांग्रेस मे उपयुक्त योगदान नहीं कर सकेंगे या हिंदू अपने बहुमत के कारण उन पर हावी हो जाएगे।

यह अन्तिम कारण ही ऐसा है जिसकी, मैं समझता हू, हमे इज्जत करनी चाहिए अन्य सब कारण तो ऐसे हैं जिनके लिए मेरे मन में कोई अच्छी भावना नहीं और इन्हें मैं सर्वथा उपेक्षणीय मानता हूं । परतु मुसलमानों के हितो का जहा तक सबध है, उन्हें कांग्रेस के किसी संभावित प्रस्ताव से नुकसान न पहुचे, इसी के लिए तो मैंने स्पष्ट रूप से ऐसा नियम कांग्रेस से स्वीकृत कराया है जिसके अतर्गत कांग्रेस मे एसे किसी प्रस्ताव पर विचार नही हो सकता जिसका मुसलमान प्रतिनिधि सामूहिक रूप मे सर्वसम्मति या लगभग सर्वसम्मति से विरोध करें ।

अतएव मुसलमान ऐसे पूर्ण विश्वास के साथ कांग्रेस मे शामिल हो सकते हैं कि स्वीकृति की तो बात ही क्या, विचार के लिए भी ऐसा कोई प्रस्ताव कांग्रेस म कभी पेश नही हो सकता जिसके वे सामूहिक रूप म विरुद्ध हो ।

मैं समझता हूं कि कांग्रेस से सबधित विविध विषयो पर मैं प्रकाश डाल चुका हूं । अत अन्त मे मैं आपको यह और बता दू कि बबई की अजुमन-ए-इस्लाम म बबई नगर के सभी सुसस्कृत मुसलमान शामिल हैं और उसने कांग्रेस-विरोधियो की सभी आपत्तियो को सुन कर तथा उन पर पूरी तरह विचार विनिमय करके ही कांग्रेस से सहयोग करने का निश्चय किया है ।

इस विषय पर जिस तरह विचार हुआ है उससे काफी दुर्भावना फैली है इसलिए मैं आपसे प्रार्थना करूंगा कि इस सबध मे कोई निर्णय करते समय इस बात का पूरा ध्यान रखें कि 'सयुक्त रह कर ही हम खडे रह सकेंगे' नही तो विभक्त होकर धराशायी हो जाएगे । इस बात को ध्यान मे रखते हुए ऐसे सब मामलो में निस्सदेह अन्य जातियो और धर्म-सम्प्रदायो के अपने देशवासियो के साथ मिल जुलकर ही हमे काम करना चाहिए जिनसे धर्म का किसी तरह कोई सबध नही है ।

बदरुद्दीन तैयबजी

परिशिष्ट 11

ए० ओ० ह्यूम को बदरुद्दीन का पत्र (27 अक्तूबर, 1888)

प्रिय ह्यूम,

आपका 20 तारीख का पत्र प्राप्त हुआ और साथ म जबलपुर से आपके पास आया पत्र भी। मैंने जवाब देन म इसलिए देरी की, क्योंकि जिस विषय पर आपको लिखना था वह महत्वपूर्ण है और यद्यपि लम्बे समय म मैं उस पर विचार करता रहा हू, फिर भी मैंने सोचा कि आपको अपने विचारो से अवगत करने से पहले मुझे उसके बारे मे और चिन्तन करना चाहिए। निस्सदेह काग्रेस के एसे उत्साही मित्र के रूप मे ही मैं आपको यह पत्र लिख रहा हू जिसके मन म उसकी सफलता का विचार ही सर्वोपरि है। मुसलमानो की हलचल पर आपकी नजर तो निस्सदेह बराबर रही है परन्तु फिर भी उनकी भावनाओ की जितनी जानकारी मुझे है उतनी शायद आपको नही है। फिर इस सम्बन्ध मे मैं विभिन्न जातियो के ऐस विचारशील व्यक्तियो से भी विचार विनिमय करता रहा हू जो सभी काग्रेस के पक्षपाती है। इसलिए इस समय जो कुछ मैं लिख रहा हू, उसम मेरे और बम्बई के अन्य प्रमुख मुसलमानो के ही विचारो की प्रतिध्वनि नही है, बल्कि मेहता, तैलग जसे अन्य व्यक्तियो का भी ऐसा ही विचार है। हम सभी का मत है कि मुसलमानो के विरोधी रुख को देखत हुए, जो नित्य प्रति अधिक से अधिक उग्र और स्पष्ट होता जा रहा है, काग्रेस के मित्रो, प्रवतको और समथको को सारी स्थिति पर पुर्नविचार करके सोचना चाहिए कि वतमान परिस्थितियो म हर साल काग्रेस के अधिवेशन करते रहना उचित है या नही। मरा अपना विचार तो यह है कि ऐसा करन से जो लाभ होता है, वह हर साल उससे पदा होन वाला फूट और कटुता के मुकाबले कम ही है। भारत के सभी समुदाय एकमत हो तो,

मेरे खयाल मे, काग्रेस की कल्पना बहुत अच्छी है और भारतवासियों का वह बहुत भला कर सकती है। काग्रेस का मुख्य उद्देश्य ही यह था कि विभिन्न समुदायो और प्रातो म एकता लाकर उनम मेलमिलाप बढाया जाए परन्तु स्थिति यह है कि न केवल हिन्दू और मुसलमान ही एक दूसरे से ऐसे अलग होते जा रहे है जैसे पहले कभी नही हुए बल्कि स्वय मुसलमान भी दलबन्दी के शिकार हो कर विभक्त हो गये है और उनके बीच की खाई दिनादिन बढती जाती है। निजाम और सरकारी सम्मान प्राप्त करने वाले सालारजग, मुनीरुलमुल्क, फतह नवाज जग जैसे सभी प्रमुख व्यक्ति, यहा तक कि सैयद हुसेन बिलग्रामी तक उस विरोधी गुट मे शामिल हो गये हैं जिसका नेतृत्व सैयद अहमद अमीरअली और अब्दुललतीफ जैसे सुप्रसिद्ध व्यक्ति कर रहे हैं। अपने वर्तमान तर्क के लिए मैं मान लेता हू कि ये सभी गलती पर है और हम सही रास्ते पर है। फिर भी सच्चाई तो सच्चाई ही रहेगी, और हम पसद करें या नही अपना कार्यकलाप निश्चित करते हुए इस तथ्य की हम उपेक्षा नही कर सकते कि मुसलमानो का भारी बहुमत काग्रेस के विरुद्ध है। इस व्यूह रचना के विरुद्ध यह कहना कोई अर्थ नही रखता कि समझदार और शिक्षित मुसलमान तो काग्रेस के पक्ष मे है। जब मुसलमान समुदाय कुल मिला कर काग्रेस के विरुद्ध है—ऐसा करके वह गलत कर रहा हो या ठीक, इससे मतलब नही— तो उसका यही अर्थ हुआ कि यह हलचल अपने राष्ट्रीय अथवा सर्वदलीय रूप को खो देती है और नेशनल काग्रेस की हकदार नही रहती। ऐसी हालत म लोगो का फायदा करने की अपनी क्षमता से भी यह बहुत हद तक वचित हो जाती है। कुछ लोगो के आग्रह और दृढ निश्चय से यह चालू तो अवश्य रह सकती है, परन्तु इसका वही रूप नही रह सकता जो मुसलमानो के सामूहिक रूप म शामिल होने से होता। मैं देख रहा हू कि हिन्दू मुसलमानो मे कटुता बढ रही है। यह भी मैं देख रहा हू कि मुस्लिम नेताओ के बीच मतभेद से भी फूट और कटुता पैदा हो रही है और उसके बहुत बुरे परिणाम सामने आ रहे हैं। मुस्लिम समाज की जैसी स्थिति है, उसको देखते हुए यह आवश्यक है कि सभी राजनीतिक मामलो मे हम एक हो कर काम करें परन्तु हमारी दलबन्दी उसम रुकावट डालती है।

अभी भी मैं देख रहा हूं कि बंबई तक में अब हम उस तरह काम नहीं कर पा रहे हैं जैसे कि पहले करते थे। इन परिस्थितियों में बुराई भलाई की नापतौल कर के सावधानी से विचार के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि कांग्रेस का अधिवेशन हर साल करना बन्द कर देना चाहिए। प्रयाग में होनेवाले कांग्रेस के अधिवेशन को तो मैं चाहूंगा कि यथासंभव खूब सफल बनाया जाए और उसमें अधिक से अधिक मुसलमान प्रतिनिधि आएं परन्तु उसके बाद कम से कम चार वर्ष के लिए कांग्रेस के अधिवेशन स्थगित कर दिए जाएं। इससे हम सारी स्थिति पर पुनर्विचार का अवसर मिलेगा और कांग्रेस को खत्म करना चाहें तो सम्मान से ऐसा कर सकेंगे। साथ ही अपने उस कार्यक्रम को अमल में लाने का काफी समय भी मिलेगा जो पहले ही बहुत व्यापक हो चुका है। पांच वर्ष के बाद परिस्थिति में सुधार हो तो अपनी कांग्रेस का हम फिर से शुरू कर सकेंगे। और ऐसा न हुआ तो, यह सोच कर कि भारत की उन्नति और विभिन्न जातियों को संयुक्त करने के लिए हमने अपना भरसक पूरा प्रयत्न किया, सम्मान से उसका अन्त कर देंगे।

बदरुद्दीन तैयबजी

परिशिष्ट 12

डा० मुकुन्दराव जयकर के संस्मरण

(जो 21 फरवरी, 1944 को उन्होंने हुसेन तैयबजी के लिए लेखबद्ध किए)

बदरुद्दीन तैयबजी से मेरा प्रथम सम्पर्क वर्षों पूर्व समुद्र यात्रा में उस समय हुआ था जबकि बैरिस्टर बनने के लिए मैं इंग्लैंड जा रहा था। संयोगवश हम दोनों एक ही जहाज में यात्रा कर रहे थे। उस समय वेश-भूषा और खान-पान में मैं पूरी तरह अंग्रेजी तौर तरीकों का अनुसरण करता था। वेश भूषा, आचरण या अन्य बातों में उचित व्यवहार के लिए जब कभी मुझे कोई परेशानी होती, हमेशा बदरुद्दीन तैयबजी तत्काल मेरी मदद करते थे। दो सप्ताह हम साथ साथ रहे। इस बीच उनके उन हार्दिक और बौद्धिक गुणों का मुझे पूरा परिचय मिला जिनके कारण उन्होंने ख्याति पाई। उनकी दयालु मुखमुद्रा तेजस्वी आखें, दृढ़ आकृति, विनोदप्रियता और इन सबसे बढ़कर उनकी स्वतंत्र निश्चय की प्रवृति तथा शिष्टता ने मुझे प्रभावित किया। किसी भारतीय में ऐसे गुणों का होना बहुत बड़ी बात थी, परंतु अपने इन्हीं गुणों के कारण वकील और न्यायाधीश के रूप में कार्य करते हुए उन्होंने बहुत प्रतिष्ठा प्राप्त की। मेरे लिए उनसे परिचय की यह शुरूआत ही थी। लन्दन में मैं अवसर उनसे मिलता रहता था और रीजेण्ट पार्क के पास जिस शानदार मकान में वह रहते थे उसका मुझे अच्छी तरह स्मरण है। ऐसा लगता था मानो वह जन्म सिद्ध नेता थे और चाहे किसी पद पर और किसी स्थिति में रहे उन्होंने सदा ही अपने मित्रों और परिचितों का नेतृत्व ही किया। हर कोई आदर और श्रद्धा के साथ उनके आगे सिर झुकाता था और इंग्लैंड के उस मकान में जिन अनेक कुटुम्बियों के साथ वह रहते थे उन सबके वह श्रद्धा के पात्र थे। लन्दन में वह ऐसे सहज भाव से रहते थे मानो वह उनका घर ही हो। अपने समय के अंग्रेजी के

सर्वोत्तम वक्ताओं में उनकी गिनती थी। ऐसे बहुत कम लोग मैंने देखे जो उनकी तरह सरलता से इतनी अच्छी अंग्रेजी बोल और लिख सकते थे। इंग्लैंड में उनके अनेक मित्र थे और जब-जब मैं उनसे मिलता वह मुझे इस बारे में उपयोगी सूचनाएं देते थे कि विद्यार्थी के रूप में इंग्लैंड में मेरा व्यवहार कैसा होना चाहिए। भारतीय स्वतंत्रता के बारे में बदरुद्दीन की जो धारणा थी उससे मुझे बहुत प्रेरणा मिली। ब्रिटिश राष्ट्रमंडल में सम्मानपूर्ण भागीदार के रूप में भारत के भविष्य का वह जिस आशीर्वादिता के साथ चित्रांकन करते थे उसमें वह अकेले ही नहीं थे बल्कि बंबई के अन्य सम्माननीय नेता भी इन्हीं विचारों के थे, जिनमें काशीनाथ त्र्यम्बक तैलंग और फीरोजशाह मेहता विशेष उल्लेखनीय हैं। हमारी युवावस्था में यह त्रिमूर्ति ही भारत के उस भविष्य का सूक्ष्म रूप मानी जाती थी जिसमें सभी जातियां और धर्म-सम्प्रदाय के लोग मित्रतापूर्वक परस्पर सहयोग में रहने की आशा कर सकते हैं। दो राष्ट्र के जिस सिद्धांत का आज कुछ सम्प्रदायवादियों ने प्रचार कर रखा है वह बदरुद्दीन के सामने आया होता तो वह घृणा और उपेक्षा के साथ उसे ठुकराए बिना न रहते। उनका तो यह दृढ़ विश्वास था कि धीरे-धीरे आगे बढ़ते हुए अंत में हम संयुक्त भारतीय राष्ट्रीयता के लक्ष्य पर पहुंचकर ही रहेंगे। उनका यह दृढ़ विश्वास हम नौजवानों को सही रास्ते लाने में बड़ा सहायक हुआ।

भारत वापस लौटने पर जब मैं बैरिस्टरी करने लगा तो उनकी गतिविधियां को देखने के मुझे अवसर अवसर मिले। न्यायाधीश के रूप में वह जितने अनुग्रहपूर्ण थे उतने ही कठोर भी थे। कठोर यह उन बड़े वकीलों के प्रति थे जो अपनी इस गलत धारणा के कारण अवसर अनजाने उनके इजलास में बेहूदगी कर बैठते थे कि बड़े अंग्रेज वकील को टोकने की कोई भारतीय न्यायाधीश हिम्मत नहीं कर सकता। मुझे ऐसे कई प्रसंग याद हैं जबकि गलती करने वाले वकील के निंदनीय व्यवहार पर उनकी सख्ती का तत्काल असर पड़ा। न्यायपीठ पर भारतीय न्यायाधीश को आसीन देखना तब तक ही काफी आम बात हो चुकी थी। परन्तु उनके समय यह ऐसी सुविधा थी जिसका उपयोग कुछ प्रमुख भारतीय ही कर सकते थे और वे अंग्रेज वकीलों के प्रति

व्यवहार मे हमेशा काफी आत्मसम्मान और स्वतन्त्रता नही दिखा पाते थे। वकील समुदाय म तयबजी इस बात के लिए प्रसिद्ध थे कि अपन प्रतिद्वन्द्वी अग्रेज वरिस्टरो के मुकाबले, फिर वे कितन ही मशहूर क्या न हो, हमशा दढता और आत्मसम्मान के साथ पैरवी करत थे। पहले पहल जब मैंने हाई कोट मे वकालत शुरू की, उनकी स्वतत्र भावना की बात मैं अक्सर सुना करता था। एसा एक उदाहरण तो मुझे अच्छी तरह याद है, क्योकि उसमे पुनरावृत्ति की बात थी और उन दिना का देखत हुए बदरुद्दीन का रुख मुझे विलक्षण लगा। उनकी भिडन्त एक अधीर आई0 सी0 एस0 जज से हुई जिनके इजलास मे गुजरात के एक प्रशासनिक अधिकारी के विरुद्ध एक धनी और सुविख्यात मुसलमान सज्जन के फौजदारी मुकदमे की अपील मे वह पैरवी कर रहे थे। एसी भिडन्त उन दिना एक असाधारण घटना थी। बदरुद्दीन तैयबजी उन मुसलमान सज्जन के वकील थे। जज न, जसा कि उन दिना सामान्यत हाता था, अधीरता से काम लिया और बदरुद्दीन को बार-बार टोकन लगे। साक्षिया मे जो कुछ कहा गया था उसे जब बदरुद्दीन पढकर सुनान लगे तो जज ने उन्ह ऐसा करने से रोका और कहा, साक्षिया मैं घर पर पढ चुका हूँ और उनम जो कुछ कहा गया है वह विस्तार से जानता हू तब बदरुद्दीन भी गरम हो गए और सख्ती से उनसे कहा साक्षिया को वकील की टीका टिप्पणी के बिना पहले ही पढ लेना अपील कोट के जज के लिए उचित नही है। यह गलत धारणा बना सकता है। "श्रीमान को साक्षिया पर घर मे नहीं बल्कि मेरी टीका टिप्पणी के साथ विचार करना चाहिए। जज के रूप मे यही आपका कतव्य है और वकील के रूप म मुझे अपना फज अदा करना ही पडेगा, चाहे वह श्रीमान को कितना ही अप्रिय क्यो न लगे।' इसके बाद बदरुद्दीन ने साक्षिया पढत हुए उन पर टीका टिप्पणी की और अन्त म मुकदमे मे उन्ही के पक्ष की जीत हुई।

नए वकीलो को तो उनसे बहुत मदद मिलती थी। बम्बई के वकील समुदाय मे उन दिना बडे बडे वकील-बैरिस्टर थे जिनम इनवेरिरिटी मुख्य था। वह हमारी हमेशा मदद करत थ और अपन ऊपर उनकी कृपा के अनेक उदाहरण मुझे याद हैं। लेकिन कुछ और भी वकील थे और वह स्वय जितने

नगण्य होते उतने ही नए भारतीय वकीलो के प्रति ईर्ष्यालु होते थे। ऐसे एक के बारे म मैं अच्छी तरह जानता हू जो अपनी त्रुटियो का जानता था और इसी कारण वकालत म आगे वढने के लिए सघषशील नए भारतीय वकीलो को आगे वढने से रोकने को उत्सुक रहता। वदरुद्दीन तयबजी के इजलास मे जब कभी ऐसी बात हाती वह हमेशा नए वकीलो का बचाव करते थे। उन नए वकीलो की कठिनाइया को वह बखूवी जानते थे जिह वह सुविधा उपलब्ध नही थी जा उन दिनो वकालत शुरू करने वाले कुछ लोगो को सयोगवश अग्रेज फर्मो से प्राप्त हा जाती थी।

उनका इजलास उन वकीलो के लिए आतकपूण था जो तैयारी करके नही आते थे,खास कर उन सीनियर वकीलो के लिए जा कभी कभी अपनी वरिष्ठता के अभिमान मे धृष्टता कर बैठत थे। दूसरी आर सकोचशील नए वकील के लिए वह सहायता के भडार थ। उहे उत्तेजित करने का सबसे बढिया तरीका ऐसी भावना पदा करना था कि वकील लापरवाह है या घृष्टता से पेश आता है। एक वार की बात है कि एक वकील महादय न जा अपने क्रोध के लिए मशहूर थे और जिह उत्तजित होने पर गुस्से मे होठ चबाने की आदत थी, लापरवाही मे एक भारतीय नाम का गलत उच्चारण किया। नाम स्त्री का था जिसका अत 'बाइ' से होता था, परन्तु वकील महोदय न 'वाई' की जगह 'भाई' कहा। इस पर न्यायालय मे मौजूद लोगा को हसी आ गई, परन्तु वकील महोदय ने उस पर भी ध्यान नही दिया और फिर भी बाई का 'भाई' ही कहते रहे। तव तयवजी से नही रहा गया और उनकी तीव्र भत्सना की "मि० , आपका इस देश मे रहते कई वप हा चुके है। इस बीच भारतीया के आपसी भगडो से आपने काफी कमाई की है, जिसके लिए उनकी कानूनी पद्धति और उत्तराधिकार के उनके कानूनो का आपने अध्यापन किया है। ऐसी हालत मे निश्चय ही आपके लिए उनके नामा पर ज्यादा ध्यान देना असम्भव नही है। अब तक आपको जान लेना चाहिए था कि भाई' पुरुषवाची है और स्त्री के लिए 'बाई' का प्रयोग होता है। इग्लण्ड के किसी न्यायालय मे वहा कई साल वकालत करने के बाद, यदि मैं ऐसी गलती करू और किसी पक्ष को मेरी डिक्सन या मौड

टम्पलटन वह कर सबोधन करे तो मुझ पर क्या नही बीतगी ? अग्रेज जज उसे किस रूप मे लेगा ? क्या उसे सदमा नही पहुचेगा ? मेरी भी वैसी ही भावनाए हैं, जिनकी वकील महोदय का इज्जत करनी चाहिए ।" उस दिन के बाद से ता, यह देखन याग्य बात थी कि जब उन अग्रेज वकील महादय को तैयबजी के इजलास म पैरवी करनी हानी तो बडी जल्दी लाइब्रेरी म जा कर भारतीय नामा का ठीक तरह उच्चारण करन के लिए नए भारतीय वकीला की मदद लेत थे ।

भारतीय आत्मसम्मान और प्रतिष्ठा के समय म बदरुद्दीन का दृष्टिकोण सराहनीय था। उनके इजलास म बबई के एक काग्रेस-समर्थक अग्रेजी अखबार के सपादक पर मानहानि का मुकद्दमा था । उसम वादी की ओर से पैरवी करत हुए एक प्रमुख अग्रेज वकील न सपादक की जिरह म काग्रेस के सम्बध मे कुछ आक्षेपयुक्त बातें कही । तयबजी कुछ समय तक ता सुनत रहे, उसके बाद उनका धीरज छूटा और वह अपनी पगडी का ऊपर नीचे करते तथा धूप के काले चश्मे का (जा न्यायाधीश-काल के अन्तिम दिना म वह अक्सर लगाया करत थ ।) आखा पर फिट करत हुए स नजर आए । हम जानते थे कि यह इस बात की निशानी है कि बस अब विस्फोट हाने ही वाला है । 'अपने समय", महान न्यायाधीश ने कठारतम स्वर म कहा, "मैं इडियन नेशनल काग्रेस का सभापति रह चुका हू । उसे मैंने अपना सबसे बडा सम्मान माना है, यहा तक कि इस न्यायालय का न्यायाधीश हान से भी अधिक । काग्रेस और उससे सबधित भारतीय देशभक्ता को मैं बहुत इज्जत की नजर से देखता हू । वकील महोदय का मैं यह स्पष्ट बता देना चाहता हू कि मेरे इजलास म उसके बारे म कोई भी अपमानजनक बात बर्दाश्त नही की जाएगी । कहने की जरूरत नही कि इस फटकार स वकील महादय के ऊपर मानो वज्रपात ही हुआ, उनके हौसले पस्त हो गए और उसके बाद मुकद्दमे की सारी कारवाई ठीक ढग से ही चली ।

जब भी मुझे फुरसत हाती, उनके इजलास मे जा बठना मुझे बहुत

मच्छा लाता था। उससे मुझे बहुत कुछ सीखने को मिला, कानून और अदालती कार्य विधि के बारे में ही नहीं बल्कि वह सब भी जिससे उन जैसे एक विशिष्ट भारतीय का जीवन इतना रुचिदायक बना। जब भी मुझे फुरसत होती, मैं ऐसे अवसर को कभी न खोता। वकालत में ये शुरूआत के ही दिन थे इसलिए फुरसत भी उन दिनों अक्सर मिल ही जाती थी और उसका मेरे लिए इससे अच्छा कोई उपयोग भी नहीं हो सकता था।

शिष्ट के साथ वह भी वैसी ही शिष्टता बरतते परन्तु अशिष्ट और अभिमानी को बुरी तरह झिड़कने में भी उन्हें संकोच नहीं होता। मेरे समय कुछ ऐसे अयोग्य वकील भी थे जो अपनी योग्यता के बजाय अपनी चमड़ी के रंग की बदौलत पनप रहे थे। ऐसे वकीलों के उनके इजलास में बिना तैयारी के आने पर उनकी अयोग्यता का भण्डाफोड़ हुए बिना न रहता, जिस पर गुस्से से तमतमाते उनके चेहरा को देखना भी एक ही दृश्य था। ऐसे ही एक वकील जिन्होंने बाद में प्रतिष्ठा भी पाई गवाही में वही एक बात पर बहस कर रहे थे। उन्होंने कुछ गलती की जिसे न्यायाधीश ने बताया परन्तु वह अपनी बात पर अड़े रहे और गलती को स्वीकार करने से धृष्टतापूर्वक इंकार किया तब उन पर सख्त लताड़ पड़ी। 'मि० , यहां से कुछ गज की ही दूरी पर एक संस्था है जिसे बंबई यूनिवर्सिटी कहते हैं। उसमें कानून के विद्यार्थियों की भी समय समय परीक्षा होती है। उसके पाठ्यक्रम में एक प्रश्न पत्र गवाही के कानून (साक्ष्यविधि) पर भी रहता है। आप यदि उस परीक्षा में बैठें तो वकील समुदाय में आपका कोई स्थान क्यों न हो, मुझे पूर्ण विश्वास है कि आप पास नहीं हो सकेंगे।"

भारतीयों के मान-सम्मान आत्मसम्मान और गौरव को वह कितना ऊंचा स्थान देते थे, यह बताने के लिए मैंने कुछ उदाहरण यहां दिए हैं। उन दिनों वकील बैरिस्टरों और सालिसिटरों में कुछ ऐसे थे जिनमें भारतीयों के विरुद्ध तीव्र भावना थी। बदरुद्दीन उनके दुश्मन जैसे थे। बदरुद्दीन वकील समुदाय में भाईचारे के हिमायती थे और अंग्रेज तथा भारतीय दोनों के साथ एक सद्भाव से उन्होंने सिद्ध किया कि जैसा वह कहते हैं वैसा

आचरण भी होता है। वाडन रोड स्थित उनके शानदार मकान मे उन दिनो अक्सर ऐसी पार्टिया हुआ करती थी। उनमे निमत्रित होने की दृष्टि से मैं तो उस समय नया था, परतु अपने पितामह तथा अन्य से इस बारे म बहुत कुछ सुनने को मिला कि विभिन्न जातियो और धर्मसप्रदायो के बीच वह किस तरह मेल मिलाप के केन्द्र बन गए थे। वकील समुदाय के उन वरिष्ठ अग्रेज सदस्यो से उनके सम्बन्ध बहुत सौहार्दपूर्ण थे जो बुरी प्रवृत्ति के नही थे। उनके इजलास मे उनके साथ वैसा ही शिष्टता तथा प्रतिष्ठा का व्यवहार होता था जैसा कि मने इगलैंड के न्यायालयो म वकील समुदाय के नेताओ के साथ होते पाया। अग्रेज और भारतीय वकीलो मे वह कोई भेद नही करते थे, जो कि उन कुछ भारतीय न्यायाधीशो के आचरण से बिल्कुल उलटी बात थी जिनसे अपने समय मुझे काम पडा। इसी कारण सभी उनकी बडी इज्जत करते थे। वकील बरिस्टर ही नही बबई की जनता भी उनमे बडी श्रद्धा रखती थी। उनकी शव यात्रा से, जिसमे म भी शरीक था, यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो गई। उनकी शव-यात्रा मे जनाजे के साथ, अग्रिम पक्ति म उनके घरवालो के साथ साथ बबई के कुछ प्रमुख अग्रेज वकील भी पैदल चल रहे थे। घर से कब्रिस्तान तक की लबी दूरी उनके प्रति श्रद्धा और आदर का भाव रख कर ही उन्होंने पैदल तय की। बाद के अपने जीवन मे मुझे अक्सर उनकी याद आई है, खासकर कुछ ऐसे न्यायाधीशो के इजलास म पैरवी करते हुए जिन्हें अग्रेज वकीलो की चापलूसी का मैंने बुरी तरह अभ्यस्त पाया। ऐसे न्यायाधीशो से वह बिल्कुल भिन्न थे। वह तो अब नही रहे परतु उनका नाम अभी भी हाई कोर्ट की बहुमूल्य स्मृति है। यह सचमुच बडे खेद की बात है कि न्यायालय के जिस कमरे म उनका इजलास था उसमे उनका कोई चिन्ह शोभायमान नही है। अब भी समय है कि पुराने दिनो मे जिसने वकील समुदाय की परम्पराए कायम की उसकी स्मृति मे कम-से कम इतना तो किया ही जाए।

वह एक ऐसे परिवार के आदर-सम्मान के केन्द्र थे जिसके सभी सदस्य बाद मे अपनी विशाल हृदयता तथा उदार भावनाओ के लिए प्रसिद्ध हुए। इसी लिए भारतीयो की यह सामान्य धारणा बन जाना स्वाभाविक ही है कि

उनके परिवार का कोई भी व्यक्ति हो, वह असाम्प्रदायिक ही होगा और भारतीय राष्ट्रीयता के विकास में उसका मित्रतापूर्ण योगदान रहेगा। बाद के वर्षों में उनके भतीजे और दामाद अब्बास तैयब जी ने भी सार्वजनिक जीवन में ऐसा ही दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। मुझे अपने सामाजिक और राजनीतिक जीवन में उनके कई सदस्यों से मिलने का अवसर मिला है। उन सबको हमेशा मैंने व्यापक राष्ट्रीय दृष्टिकोण वाला और राष्ट्रीय भावनाओं के प्रति पूर्ण सहानुभूतिशील ही पाया। ऐसी महान परम्परा अपने पीछे वह छोड़ गए हैं। आज हमारे सामने उन्मत्त सम्प्रदायवादियों के प्रभाव में आकर उसे खो देने का खतरा तो नहीं है? समय ही यह बताएगा।

मुकुन्दराव जयकर

सन्दर्भ-ग्रन्थ

1 इवाल्युशन आफ पाकिस्तान (1963) सय्यद शरीफुद्दीन पीरजादा। दि आल पाकिस्तान लीगल डिसीजन, लाहौर।

2 एलन ओक्टेवियन ह्यूम (1913) सर विलियम वेडर बर्न। टी० फिशर अनविन, लन्दन।

3 एमिनंट इंडियंस ग्रान इंडियन पालिटिक्स (1892) सी० एल० पारख, बम्बई।

4 डेस्टिनी आफ दि इंडियन मुस्लिम (1965) डा० एस० आबिद हुसेन। एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई।

5 दि आटोबायग्राफी आफ तैयब जी भाई मियां (तैयब अली), आसफ ए० फ़ैज़ी द्वारा सम्पादित और बम्बई की एशियाटिक सोसायटी के जरनल के भाग 36 37 परिशिष्ट 1961 62 में अप्रैल 1964 में प्रकाशित।

6 प्रोसीडिंग्स आफ दि लेजिस्लेटिव कौंसिल आफ दि गवर्नर आफ बाम्बे, भाग 12 (1883) और भाग 23 (1884)। बम्बई सरकार का प्रकाशन।

7 बदरुद्दीन तैयब जी ए बायग्राफी (1952) हुसैन बी० तयबजी। थाकर एंड क०, बम्बई।

8 बदरुद्दीन तयब जी जी० ए० नटेसन। जी० ए० नटेसन एण्ड क० मद्रास।

9 रिक्लेक्शन्स एंड रिफ्लेक्शन्स (1946) सर चिमन लाल शीतलवाद। पद्मा पब्लिकेशन्स लि० बम्बई।

10 स्पीचेज एंड राइटिंग्स आफ दि आनरेबल सर फीरोजशाह मेहता - (1905) सी० वाई चिन्तामणि। इंडियन प्रेस, प्रयाग।

11 स्टोरी ग्राफ माई एक्सपेरिमेटज विद ट्रुथ (गाधीजी की ग्रात्मकथा, भाग 1 (1927) ग्रौर भाग 2 (1928) नवजीवन ट्रस्ट, ग्रहमदाबाद।

12 सोस मेटीरियल फार ए हिस्टरी ग्राफ दि फ्रीडम मूवमट इन इडिया, भाग 2 (1885 1902) बम्बई सरकार का प्रकाशन।

13 सम ग्रनपब्लिश्ड एण्ड लेटेस्ट स्पीचेज एण्ड राइटिंग्स ग्राफ सर फीरोजशाह मेहता (1918) सम्पादक जे० ग्रार० वी० जीवक भाई, बम्बई।

14 सर सैयद ग्रहमद खा के लक्चरो का मजमुग्रा (1890) उर्दू मे मुशी सिराजुद्दीन द्वारा सम्पादित।